विषय-सूची

संपादन-सामग्री

इस ग्रंथावली के संकलन तथा संपादन में जिन पुस्तकों से सहायता ली गई है उनकी सूची नीचे दी जाती है और उनके संपादकों तथा लेखकों के प्रति इस ग्रंथ का संपादक अपना हार्दिक धन्यवाद प्रकट करता है।

१—भूषण ग्रंथावली—पं० श्यामविहारी मिश्र।

२—भूषण ग्रंथावली—पं० रामनरेश त्रिपाठी।

३—प्रभा।

४—माधुरी व० ४ खं० २ सं० ४, व० ३ खं० १ सं० २, व० २ खं० २ सं० ६।

५—समालोचक भा० १, २, ३, ४।

६—मनोरमा व० ३ खं० १-२, व० ४ खं० १।

७—किनकेड पारसनीस कृत 'मराठों का इतिहास' भाग १-३।

८—शिवाजी, प्रो० यदुनाथ सर्कार-कृत नया संस्करण।

९—औरंगज़ेब " भा० १-३।

१०—इलिअट डाउसन कृत 'हिस्टरी ऑव इंडिया एज़ टोल्ड बाई इट्स ओन हिस्टोरिअन्स' जि० ६-८।

११—मूतानेणसी की ख्यात।

१२—काशी नागरी प्रचारिणी पत्रिका भा० ६ सं० १९८२।

१३—टॉड्स राजस्थान भा० २।

१४—मआसिरुल् उमरा-हिन्दी अनुवाद।

१५—मआसिरे-आलमगीरी।

१६—भारत के प्राचीन राजवंश भा० ३।

१७—इपीग्रेफिया इण्डिका जि० १-१४।

१८—दी [illegible], [illegible]।

१९—मतिराम ग्रंथावली सं० पं० कृष्णबिहारी मिश्र बी० ए० एल
एल० बी०, सं० गंगा पुस्तक माला लखनऊ।

२०—हिन्दी-साहित्य का इतिहास ले० पं० रामचन्द्र शुक्ल।

२१—भूषण ग्रंथावली सं० पं० [illegible] शास्त्री।

२२—सम्पूर्ण भूषण सं० प्रो० रामचंद्र गोविंद काटे।

छत्रपति शिवाजी

भूमिका

हिन्दी-साहित्य का इतिहास देखने से यह ज्ञात हो जाता है कि उस पर राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक तथा सांप्रदायिक परिस्थितियों का कितना प्रभाव पड़ा है। यद्यपि हिंदी भाषा कहीं अधिक प्राचीन है, पर हिन्दी-साहित्य का आरंभ विक्रमाब्द ग्यारहवीं शताब्दि से माना जाता है। यह समय भारत के इतिहास में वह था जब कि एक ओर इस देश पर मुसलमानों के आक्रमण पर आक्रमण हो रहे थे और दूसरी ओर भारतीय नरेशगण उन्हें रोकने तथा अपने अपने देश को अन्यदेशीय शत्रुओं से पददलित न होने देने के प्रयत्नों में सतत लगे हुये थे। यही कारण है कि इस काल के कविगण ऐसे ही भारतीय आदर्श वीरों को सामने रखकर अपनी कवित्व-शक्ति दिखला गये हैं। चित्तौड़ के रावल खुम्माण ने चौबीस युद्ध कर म्लेच्छ आक्रमणकारियों को परास्त कर भगा दिया था, जिस पर खुम्माण रासो रचा गया था। भारत के अंतिम सम्राट् प्रातःस्मरणीय महाराज पृथ्वीराज की वीरता, युद्ध-नैपुण्य, साहस, शील आदि के वर्णन में पृथ्वीराज रासो सा बृहत् ग्रंथ लिखा गया है। विजयपाल रासो, वीसलदेव रासो आदि भी इसी प्रकार के अनेक ग्रंथ इस काल में प्रणीत हुये थे। तीन शताब्दियों के भीतर भीतर मुसलमानों का आधिपत्य भारत भर में अच्छी प्रकार जम गया तथा वे अन्यधर्मीय विजेतागण भी इस देश में दूर दूर तक आबसे जिससे यहाँ की राजनैतिक तथा सामाजिक

परिस्थिति बहुत कुछ बदल गई। अब राजाओं तथा सम्राटों से नवाब, सुलतान तथा बादशाह बड़े समझे जाने लगे। देश के प्रबंध तथा रक्षा का भार प्रायः विदेशियों के हाथ में चला गया और यहाँ के छोटे छोटे बचे खुचे राजे इन बादशाहों के मांडलिक और सामंत बनकर रहने ही में अपना मान समझने लगे थे। साथ ही एक बिलकुल नये धर्म के आजाने से सांप्रदायिक मत मतांतर के सिवा एक नया धार्मिक द्वन्द्व भी मच गया था। विजेतागण यहाँ के देशीय धर्मों को शस्त्र के जोर पर उखाड़कर अपना धर्म फैलाना चाहते थे जो भारतीय रुचि के अनुकूल न था। इस कारण 'निर्धन के धन राम' तथा 'निर्बल के बल श्याम' के अनुसार यहाँ वाले अपनी सांत्वना के लिए ईश्वर की शक्ति तथा दया के भिखारी होने लगे। देव-मंदिरों के गिराये जाने तथा देवमूर्तियों के खंडन से उनके हृदय निराकार उपासना की ओर भी झुक पड़े। हिंदू तथा मुसलमानों के सहवास से राम रहीम की एकता दिखलाना भी आवश्यक हो चला। इसलिये प्रायः सत्रहवीं शताब्दि विक्रमाब्द तक हिंदी कविता देवी मीरा बाई बनकर भजनानन्द ही में मग्न रही। इसके अनंतर सहज सुलभ मानवी प्रकृति के अनुसार कवितादेवी कामिनी रूप के शृंगार में भी लग गई और यह इसी कार्य में लगी हुई थी कि देश में कुछ विशेष राजनैतिक विप्लव होने के कारण इन्हें पुनः चंडिका का रूप भी धारण करना पड़ा था।

यह वह काल था जब कई विशिष्ट कारणों से मुसलमानों के हाथ से भारतीय आधिपत्य निकलकर पुनः इसी देश के राजाओं के हाथ में आ रहा था और 'अब तक जानत हे बड़े होत पातसाह अब पातसाहन से राजा बड़े होत हैं'। दक्षिण में मराठों का उत्कर्ष-सूर्य शिवाजी के रूप में पश्चिमी घाटों पर

हो चुका था। बुंदेलखंड में महाराज छत्रसाल स्वातंत्र्यसुधा-को उद्दीयमान कर प्रत्येक बुंदेले वीर के मृत हृदय में उत्साह रहे थे। राजस्थान में महाराणा राजसिंह राठोड़ वीर आदि की सहायता कर राजपूतों की सुप्त राज्यलक्ष्मी अरावली पर्वत के प्रत्येक शृंग से रणभेरियाँ बजाकर जगा रहे थे। उसी काल के इन्हीं प्रचंड तथा यशस्वी वीरों के रक्त का फल है कि आज भी भारत के मानचित्र में इतने राजवंशों के राज्य अंकित हैं। अस्तु, इसी काल का प्रभाव था कि शृंगारिक काव्यों तथा रीति ग्रंथों के बीच में वीरगाथा काल के से दो चार ग्रंथ दिखला जाते हैं। शिवराजभूषण, छत्रप्रकाश, राजविलास आदि रचनाएँ अपने समय की परिस्थिति की द्योतिका हैं। यदि ये वीरगण न हुये होते तो वीर रस के ये कविगण भी शृंगारिक कविता करते और स्यात् अपनी उद्दंडता का परिचय उसी में दे डालते।

भूषण का समय हिंदी साहित्य के इतिहास के रीति काल के अंतर्गत है और इनका प्राप्य प्रधान ग्रंथ भी अलंकार ग्रंथ है, पर ऊपर जैसा कहा जा चुका है उसके उदाहरण शृंगार रस के न होकर आदर्श के अनुरूप वीर रस से ओत प्रोत हैं। भूषण स्वयं कहते हैं कि—

भूषन यों कलि के कविराजन राजन के गुन पाय नसानी।
पुन्य चरित्र सिवा सरजे सर न्हाय पवित्र भई पुनि बानी॥

वास्तव में इन कविराजों पर अपने समय के आश्रय देने वाले राजों का प्रभाव पड़ता ही था और ये उन्हें प्रसन्न करना ही चाहते थे, इसीलिये उन्हींके रुचि के अनुकूल कविता करते थे। भूषण जी ने एक प्रकार वैसा ही किया है और उसी से उन्हें बहुत संपत्ति भी प्राप्त हुई थी, पर जिसे वह प्रसन्न करना

चाहते थे वह भारत के सच्चे मुखोज्ज्वलकारी सुपुत्र थे। जिन्हें प्रशंसा अवश्य प्रिय थी पर चाटुकारी नहीं। सच्ची स्तुति से तो ईश्वर भी प्रसन्न होता है। ऐसे ही सुकवि का अब परिचय दिया जाता है जो प्रस्तुत साधनों से उपलब्ध हो सका है।

१—कवि-परिचय

शिवराजभूषण के छंद २६ तथा २७ में कवि के वंश तथा जन्मस्थान का परिचय इस प्रकार दिया है कि 'भूषण जी रत्नाकर के पुत्र थे तथा काश्यपगोत्रीय त्रिपाठी कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे। इनका जन्मस्थान यमुना नदी के तटस्थ त्रिविक्रमपुर ग्राम था जहाँ इनके पिता सदा से रहते थे। इसी स्थान में राजा बीरबल से सुकवि हुए और विश्वेश्वर के समान जहाँ बिहारीश्वर का मन्दिर है।' यह त्रिविक्रमपुर घाटमपुर तहसील के एक मौज़ा अकबरपुर-बीरबल के पास है, जो यमुना नदी के बाएँ किनारे पर कानपुर से ३१ मील दक्षिण है। यह कानपुर ज़िले ही के अंतर्गत है। कानपुर से हम्मीरपुर जाने वाली सड़क पर घाटमपुर से लगभग ६ मील पर त्रिविक्रमपुर अर्थात् वर्तमान तिकवाँपुर गाँव बसा है। यह अकबरपुर-बीरबल भूषण कवि के अनुसार सम्राट अकबर के अंतरंग मित्र राजा बीरबल का जन्म-स्थान था और उन्होंने अपने आश्रयदाता तथा अपने नाम पर इस मौज़े का नया नामकरण किया है। इसके पहिले इसका क्या नाम था इसका कुछ पता नहीं चला। इस मौज़े में राधाकृष्ण का एक प्राचीन मन्दिर भी वर्तमान है जिसे ही भूषण ने बिहारीश्वर लिखा है।*

---

* आर्कियोलौजिकल सर्वे ऑव इण्डिया द्वारा प्रकाशित 'पाश्चिमोत्तर

इस प्रकार ऐसे स्थान में रत्नाकर जी के पुत्ररत्न होकर भूषण जी ने अपना बाल्यकाल समाप्त किया तथा पठन पाठन से निवृत्त होकर यह राज्याश्रय की खोज में बाहर निकले। यह पहिले पहिल पास ही के एक राजा के पास गए, जो शिवराज-भूषण के पद २८ के अनुसार बड़े ही साहसी तथा शीलवान थे। इनका नाम हृदयराम तथा रुद्रराम दोनों हो सकता है: पर इन दोनों नाम में पिता पुत्र का सम्बन्ध अवश्य है अर्थात् हृदयराम-सुत रुद्र या हृदयराम, सुत रुद्र। यह सोलंकी क्षत्रिय थे तथा चित्रकूटपति इनकी पदवी थी। भूषण के इन्हीं आश्रयदाता ने इन्हें इनकी कवित्व-शक्ति पर प्रसन्न होकर 'भूषण' की पदवी दी, जो इतनी प्रसिद्ध हुई कि उसने इनके नाम का निशान तक न छोड़ा। उक्त ग्रन्थ के पद २५ से ऐसा स्पष्ट ज्ञात होता है कि इस प्रकार भूषण की पदवी प्राप्त करने के अनन्तर तथा पद २४ के अनुसार शिवाजी के रायगढ़ राजधानी बनाने के उपरान्त भूषण कवि भी वहाँ शिवा जी के दरबार में अन्य गुणियों के साथ पहुँचे। सन् १६६२ ई० में शाह जी की सम्मति पर शिवाजी ने रैरी शृंग पर रायगढ़ दुर्ग बनने की आज्ञा दी थी और उसके पूर्ण होने पर उसमें कोष आदि भेजे थे। सन् १६६४ ई० में शाह जी की मृत्यु होने पर इन्होंने अहमदनगर द्वारा प्राप्त पैतृक राजा की उपाधि धारण कर रायगढ़ में टकसाल खोली थी। इससे यह कहा जा सकता है कि सन् १६६४ ई० के बाद ही भूषण शिवा-जी के दरबार में गए। परिशिष्ट ङ कालचक्र देखने से भी यह ज्ञात हो जाएगा कि उस समय तक शिवाजी की ख्याति भारतवर्ष भर में इतनी फैल गई थी तथा उनका स्व-अर्जित राज्य भी इतना

प्रांत और अवध के प्राचीन इमारत और लेख', सम्पादक डा० फुरेर भा० २ पृ० १६५

विस्तृत और समृद्धिशाली हो गया था कि दूर दूर से गुणी लोग उनका यश सुन कर आश्रय लेने आने लगे थे।

शिवाजी के दरबार में प्रवेश हो जाने पर और वहाँ से धन वृत्ति आदि मिलने पर अपने ऐसे उदार आश्रयदाता की प्रशंसा में भूषण ने कुछ रचना करने का विचार किया। उन्हीं दिनों—

शिवचरित्र लखि यों भयो कवि भूषन के चित्त।
भाँति भाँति भूषननि सों भूषित करौं कवित्त॥

शिवा जी के चरित्र, स्वभाव आदि का अच्छी प्रकार निरीक्षण कर कविराज ने शिवराजभूषण नामक अलङ्कार ग्रंथ की रचना की और उदाहरणों में अपने उस वीररसावतार आश्रयदाता के चरित्र के अनुरूप ही वीररस पूर्ण गुणानुवाद किया जिसने—

बीजापुर गोलकुण्डा जीत्यो लरिकाई ही में
ज्वानी आए जीत्यो दिलीपति पातसाह को।

यह ग्रंथ ज्येष्ठ कृष्ण १३ सं० १७३० वि० रविवार को समाप्त हुआ और तब भूषण ने इसे अपने आश्रयदाता को भेंट कर इसके उपलक्ष में बहुत कुछ पुरस्कार प्राप्त किया होगा। इस प्रकार कई वर्ष तक शिवाजी के राजदरबार में रहने तथा एक ग्रंथ पूर्ण कर प्रचुर पुरस्कार पाने पर यह अपने घर अवश्य गए होंगे। यद्यपि सं० १७३१ वि० का शिवाजी का राज्याभिषेकोत्सव अत्यन्त महत्वपूर्ण घटना थी; पर इतने ही समय के बीच भूषण का घर से लौट कर आ जाना सम्भव नहीं था। ग्रंथ-समाप्ति तथा अभिषेकोत्सव के बीच केवल एक वर्ष का समय मिलता है जिसमें बहुत सा समय आते जाते ही व्यतीत हो जाता और

इसी से भूषण इस उत्सव में सम्मिलित नहीं हो सके। भूषण की प्राप्त कविता में सं० १७३० वि० तक की घटनाओं का जितनी प्रचुरता से वर्णन मिलता है उससे कहीं कम, नहीं के समान, बाद की घटनाओं का उल्लेख है। इस अभिषेकोत्सव के विषय में तो कुछ भी नहीं कहा गया है। केवल शिवा बावनी के पद सं० ३२ में कहते हैं कि—

राजन के राज सब साहन के सिरताज,
आज शिवराज पातसाही चित धरी है।
बलख बुखारे कसमीर लौं परी पुकार,
धाम धाम धूम धाम रूम साम परी है॥

सं० १७३७ वि० में शिवाजी की मृत्यु होने पर शम्भा जी गद्दी पर बैठे। अपने राजत्व के आरम्भ में चार पाँच वर्ष तक इन्होंने युद्ध-प्रियता दिखलाई, जो क्रमशः मन्द पड़ते पड़ते सं० १७४३ वि० में विषयवासना के अंधकार में लुप्त हो गई। शम्भा जी के विषय में जो कवित्त कहा गया है, उसका मुख्य अंश यों है—

भूपन जू खेलत सितारे में सिकार शम्भा,
शिवा कौ सुवन जाते दुवन सँचै नहीं।
बाजी सब बाज से चपेटैं चंग चहूँ ओर,
तीतर तुरुक दिल्ली भीतर वचैं नहीं॥

इससे यह स्पष्टतः नहीं कहा जा सकता कि भूषण ने शम्भा जी के दरबार में पहुँच कर यह पद उनकी प्रशंसा में बनाया हो। शम्भा जी के दरबार में कलश कवि की प्रधानता थी, जिसे स्यात् भूषणजी से उदण्डप्रकृति के कवि सहन न कर सके हों और इसलिए इस दरबार में न गए हों। सं० १७४६ वि० में शम्भा जी मारे भी

गए और इसी कारण इनके बुर्हानपुर, भड़ोच आदि लूटने तथा पुर्तगीज़ों पर प्राप्त विजयों का कुछ भी वर्णन नहीं किया गया है। शम्भा जी के अल्पवयस्क पुत्र शिवाजी द्वितीय सं० १७४६ वि० में गद्दी पर बैठे और उसी वर्ष के अंत में मुग़लों के हाथ क़ैद हुए। औरंगज़ेब ने इनका नाम बदल कर साहू रखा। इनके विषय में कहे गए दोनों पद इसके बाद ही के हो सकते हैं क्योंकि दोनों में साहू जी नाम दिया है। इनके विषय में कहे गए पदों के कुछ अंश इस प्रकार हैं—

> साहू जी की साहिबी दिखात कछु होनहार,
> जाके रजपूत भरे जोम बमकत हैं।
> दच्छिन के आमिल भो सामिल ही चहूँ ओर,
> चम्बल के आर पार नेज़ा चमकत हैं॥
> रूम रूँदि डारै खुरासान खूँदि मारै खाक,
> खादर लौं झारै ऐसी साहू की बहार है।

ऐसी प्रशंसा कारागारस्थित साहू की कोई भी कवि नहीं कर सकता। उस हालत में किसी की साहिबी को होनहार कहना प्रशंसा नहीं प्रत्युत् अभिशाप कहलायगा। इससे यही निश्चय है कि सं० १७६४ वि० में कारागार से छूटने और सितारा की गद्दी पर बैठने के बाद ये दोनों पद बने होंगे। साथ ही यह भी निश्चय पूर्वक कहा जा सकता है कि होनहार शब्द उसकी रचना का साहू के राजत्वकाल के बिलकुल आरम्भ में होना बतला रहा है। इन विचारों से यह स्पष्ट है कि भूषण द्वितीय बार सं० १७६४-५ वि० में दक्षिण गए थे।

एक पद और है जिसमें 'साहू को सराहौं कै सराहौं छत्रसाल को' लिखा गया है। यह पद भी पूर्वोक्त विचारों से सं० १७६४ वि०

के बाद ही रचित हो सकता है। इसका कुछ लोग यों पाठ भेद मानते हैं—'शिवा को सराहौं कै सराहौं छत्रसाल को', पर यह ठीक नहीं जँचता। शिवाजी की मृत्यु के समय तत्कालीन इतिहास में छत्रसाल का स्थान क्या था? उस समय तक यह एक साधारण विद्रोही राजा के रूप में मिलते हैं, जिन पर सं० १७३७ वि० में तहव्वर खां आदि सर्दारों को औरंगज़ेब ने भेजना उचित समझा था। इसके पहिले वे उसी देश के छोटे मोटे ज़मींदार आदि को परास्त कर करद बनाने में लगे हुए थे। इसलिए दूसरा पाठ तो शुद्ध नहीं है, पहिला पाठ ही ठीक है। अब देखना है कि सं० १७६४ वि० में इन्हीं महाराज छत्रसाल का भारत-साम्राज्य में क्या स्थान था। उस समय इनकी अवस्था छप्पन वर्ष की थी और इन्होंने मुग़ल साम्राज्य के बड़े बड़े अनेक सर्दारों को परास्त कर अपना राज्य दृढ़ कर लिया था। इसी वर्ष बहादुर शाह ने भी इनको इनके अर्जित राज्य की सनद दे दी थी। तात्पर्य यह कि उस समय महाराज छत्रसाल इस योग्य हो गए थे कि मराठा साम्राज्य के अधिपति साहू जी से उनकी समुचित तुलना की जा सकती थी। इस तर्कावली से यह सिद्ध हो जाता है कि भूषण जो सं० १७६४-६५ वि० में साहू के दरबार में गए थे और वहां से अच्छी प्रकार पुरस्कृत होकर यह स्वदेश लौटते हुए महाराज छत्रसाल के दरबार में भी गए होंगे। यहीं इनका अभूतपूर्व आदर हुआ था।

किंवदंती है कि भूषण जी की बिदाई करते समय महाराज छत्रसाल ने उनकी पालकी में स्वयं कंधा लगा दिया था, जिससे कविराज जी बड़े प्रसन्न हुए और उसी समय एक दशक रच डाला। इसके समर्थन में कुछ लोग विचित्र विचित्र तर्क करते हैं। एक तर्क यों है कि ऐसा आदर करना विशेषतः युवकों ही के योग्य है, जो समय पर कोई विचार उठते ही उसे चट

कर डालते हैं, इस लिए भूषण छत्रसाल के दरबार में शिवराज-भूषण की समाप्ति के बाद ही देश लौटने पर गए थे। वे यह नहीं सोचते कि छत्रसाल दशक की ऐतिहासिक घटनाएँ घटित होने के पहले ही उसका उल्लेख कैसे हो गया। साहू जी प्रशंसायोग्य कब हुए, यह भी आवश्यक विचार है। अस्तु, इस किंवदंती में जो कुछ सार हो, तात्पर्य इतना ही है कि भूषण जी का महाराज छत्रसाल ने अवश्य ही बहुत कुछ आदर किया होगा। वे स्वयं कवि थे और कवियों के आश्रयदाता थे। भूषण जी महाराज शिवाजी के राजकवि थे और उनकी कविता की चारों ओर धूम थी। इधर छत्रसाल भी भूषण के मनोनुकूल चरितनायक थे। पाँच सवार तथा कुछ पैदल लेकर मुग़ल सम्राज्य के हृदय में एक स्वतंत्र राज्य का संस्थापन करने वाला वीर असाधारण पुरुष था। यदि भूषण ने ऐसे सर्वमान्य भारतमुखोज्ज्वलकारी वीरश्रेष्ठ की प्रशंसा में दश बारह पद बना दिए तो उसके लिए इस दंतकथा मात्र को कारण मानना निर्मूल है।

खाए मलिच्छन के छोकरा पै तबौ डोकरा को डकार न आई।

एक छंद का अन्तिम पद है जिसमें भूषण उपनाम नहीं आया है। इस पद को लेकर एक सज्जन कहते हैं कि इसे भूषण ने, जो उस समय 'छोकरे' थे, छत्रसाल के लिए, जो उस समय प्रायः चौहत्तर वर्ष के डोकरे थे, यह छंद बनाया था; पर यह बिलकुल भ्रांत कल्पना है।

अब यह देखना है कि सं० १७३१ वि० और सं० १७६४ वि० के बीच चौंतीस वर्ष तक भूषण घर ही पर रहे या अन्य राजाओं के यहाँ जाते आते रहते थे। रुद्रशाह ने तो इन्हें उस समय भूषण की पदवी दी थी जब इन्होंने कविता बनाना आरंभ किया था और इसलिये उनकी प्रशंसा में एक दोहा और एक कवित्त रचा गया था।

शिवाजी तथा उनके पुत्र और पौत्र का ऊपर उल्लेख हो चुका है। छत्रसाल जी की दरबारदारी का भी वर्णन हो जाने पर छ सात राजे बच जाते हैं, जिनकी प्रशंसा में भूषण के एक-एक या दो-दो छंद मिलते हैं। एक आध सज्जन ने इनके चार पांच अन्य आश्रयदाताओं को भी खोज निकाला है। महाकवि मुरारि के अनर्घ्यराघव नाटक में एक स्थान पर कहा गया है कि —

स्थितिः कवीनामिव कुंजराणां स्वमंदिरे वा नृपमंदिरे वा।
गृहे गृहे किं मशका इवैते भवंति भूपालविभूषितांगाः॥

इस श्लोक में कवि तथा कुंजर की तुलना की गई है कि वे दोनों ही राजाओं की सभाओं (गजशाला) में या अपने ही गृहों (जंगल) में रहते हैं और मशकों के समान घर घर नहीं घूमते फिरते। महाकवि भूषण महागजेंद्र के समान थे, जिन्हें हर एक साधारण राजा बाबू न प्रसन्न ही कर सकता था और न इन्हें ही भारत के मुग़ल सम्राट औरंगज़ेब से प्रतापी शत्रु का सफलता-पूर्वक सामना करने वाले प्रतिद्वंद्वी छत्रपति महाराज शिवाजी तथा उनके वंशजों का आश्रय प्राप्त करने पर अन्य छोटे छोटे राजाओं का सभासदी करना शोभा देता था। पंडितराज जगन्नाथ ने सत्य ही कहा है कि—

दिल्लीश्वरो वा जगदीश्वरो वा मनोरथान् पूरयितुं समर्थः।
अन्ये नृपाः यद्ददतीहि काले शाकाय वा स्यात् लवणाय वा स्यात्॥

उस पर किंवदंती के अनुसार शिवाजी से भूषण जी को इतना अधिक धन प्राप्त हुआ था कि उन्होंने एक साथ एक लाख रुपये का लवण अपने गृह पर भेजा था। भूषणजी ने अपनी कविता में शिवाजी को बराबर जगदीश्वर का अवतार माना है। ऐसी अवस्था में भूषण जी का एक आध दर्जन छोटे छोटे रजवाड़ों तथा

बबुआनों में जाना और वहाँ भी उन लोगों की एक एक दो दो छंद में कुछ प्रशंसा कर उन से लाख दो लाख रुपये न लेकर कुछ व्यंग्य-बाण छोड़ कर लौट आना उनके उपयुक्त नहीं समझ पड़ता। यदि कहा जाय कि उनमें धनतृष्णा अधिक थी तो 'कमायूँ नरनाह' के यहाँ कुछ रुपये के पुरस्कार का त्याग देना कोरी दंत-कथा मात्र रह जाती है।

भूषण के जिन आश्रयदाताओं का नाम लिया जाता है उनमें मुख्य मुख्य का ऊपर उल्लेख हो चुका है। बचे हुओं में प्रायः आधे अज्ञात हैं और जो ज्ञात हैं उनके लिए भी जो एक दो छंद कहे गये हैं उनमें किसी में भी ऐसी ऐतिहासिक घटना का उल्लेख नहीं है जिससे उन छंदों के निर्माण का समय निश्चित किया जा सके। अस्तु, यही निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि सं० १७३१ वि० तथा सं० १७६४ वि० के बीच का समय, जिस काल में मराठा राज्य पर औरंगज़ेब के दक्षिण में रहने से विशेष आपत्ति आपड़ी थी और उनके राज्य के दक्षिणी सीमांत के जिंजी आदि दुर्ग तक मुग़लों के हाथ में चले गए थे, भूषण जी उत्तरी भारत में पर्यटन करते रहे हों और अपने भाई बंधु आदि के आग्रह से उनके आश्रयदाताओं के दरबार में भी गए हों। वे सं० १७६४ वि० के बाद ही कहते भी हैं कि 'और राव राजा एक मन में न ल्याऊँ अब साहू को सराहौं कि सराहौं छत्रसाल को।' अर्थात् उस समय तक जिन दरबारों में वे जा चुके थे उनसे वे इतने असंतुष्ट थे कि अब वे ऐसे स्थानों को मन में भी स्थान नहीं देना चाहते थे। इस कथन के बाद उनका कहीं अन्यत्र जाना और वह भी साधारण ज़मीदारों के यहाँ जाना किसी बहुत ही असाधारण कारण ही से हो सकता था, जो अभी तक नहीं ज्ञात हुआ है।

इस प्रकार महाकवि भूषण की जीवनी की पर्यालोचना

करने पर मेरा अनुमान है कि इनका जन्मकाल सं० १७०० वि० के लगभग हुआ होगा। बीस बाईस वर्ष की अवस्था में यह आश्रय की खोज में घर से बाहर निकले और 'कुल सुलंक चितकूटपति हृदय राम सुत रुद्र' के यहाँ कुछ दिन ठहर कर 'भूषण' पदवी प्राप्त की। इसके अनंतर शिवाजी की उदारता तथा वीरता की ख्याति सुन कर सं० १७२४ वि० के लगभग उनके दरबार में गए। यहीं शिवराज भूषण नामक ग्रन्थ की रचना की, जो ज्येष्ठ कृष्ण १३ भानुवार सं १७३० वि० को समाप्त हुआ। इसके कुछ दिन अनंतर यह अपने घर लौटे और अपना समय सुख से उत्तरी भारत में पर्यटन में व्यतीत करने लगे। इनके गृह लौटने के छ वर्ष बाद शिवाजी की मृत्यु हुई, मुग़ल सम्राट औरंगजेब दक्षिण पहुँचे, शंभा जी मारे गए तथा साहू जी क़ैद हुए। इन कारणों से यह साहू जी के छूटने पर सं० १७६४ वि० के बाद दक्षिण गए। वहाँ से यह वृद्धता के कारण शीघ्र ही लौटे और छत्रसाल जी से भेंट करते घर चले गये। इसके बाद ही सत्तर पछहत्तर वर्ष की अवस्था में या कुछ अधिक वृद्ध होकर यह वीरलोक गए होंगे।

भूषण ने अपने वंश, पिता, जन्म स्थान आदि के विषय में स्वयं जो कुछ लिखा था उसका ऊपर उल्लेख हो चुका है। उनके भाइयों के विषय में यह कहा जाता है कि ये चार भाई थे पर अधिक मत तीन ही भाई मानता है। चौथे जटाशंकर उपनाम नीलकंठ के भ्रातृत्व के विषय में सब का एक मत नहीं है। चिंतामणि भूषण तथा मतिराम ये तीन भाई इसी वयानुक्रम से माने जाते हैं। इन कवियों ने स्वयं कहीं अपने भाइयों का उल्लेख नहीं किया है। जिन साधनों से इन तीन कवियों का भ्रातृत्व माना जाता है, उनमें सब से प्राचीन मौलाना ग़ुलाम अली आज़ाद का 'तज़्किरः सर्वे आजाद' है, जिसमें चिंतामणि के

विषय में लिखा गया है कि मतिराम और भूषण चिंतामणि के दो भाई थे तथा वे कौड़ा जहानाबाद के निवासी थे। गुलाम अली का जन्म सन् १७०४ ई० में हुआ था और सन् १७८६ ई० में इनकी मृत्यु हुई थी। इनके पितामह मीर अब्दुल जलील बिलग्रामी सैयद रहमतुल्ला के मित्र थे जिन्होंने चिंतामणि जी को पुरस्कृत किया था। गुलाम अली फारसी के सुकवि, इतिहासज्ञ तथा प्रसिद्ध गद्य-लेखक थे। इन्होंने कई ग्रंथ लिखे हैं और इन तीनों ही कवियों की वृद्धावस्था में वे संसार में आ चुके थे और उनकी मृत्यु के समय स्यात् युवा भी हो चुके थे। इनके इस भ्रातृ-संबंध विषयक कथन को अकारण ही अशुद्ध मान लेने का कोई कारण नहीं है। अब यहाँ भूषण के अतिरिक्त अन्य तीन कवियों का संक्षिप्त परिचय दे दिया जाता है।

चिंतामणि जी के छंदविचार, काव्यविवेक, काव्यप्रकाश, रामायण तथा कविकल्पतरु नामक पाँच ग्रंथ शिवसिंह के पुस्तकालय में थे। अंतिम विनोदकारों के पुस्तकालय में भी है। इनका छंदविचार ही भाषापिंगल नाम से खोज में प्राप्त हुआ है। रसमंजरी एक और ग्रंथ खोज में मिला है। इनका बनाया रामाश्वमेध ग्रंथ का कुछ अंश मिला है, जिससे इनका कश्यपगोत्री कान्यकुब्ज त्रिपाठी होना ज्ञात हुआ है। इनके आश्रयदाताओं में शाहजहाँ, औरंगज़ेब, ज़ैनदी अहमद, रुद्रसाह सोलंकी तथा मकरंदशाह भोंसला का नाम लिया जाता है।

मतिराम जी ने ललितललाम, छंदसार पिंगल, साहित्यसार, रसराज, लक्षण शृङ्गार, मतिराम सतसई, अलंकार पंचाशिका, फूलमंजरी तथा वृत्तकौमुदी रचा है, ऐसा कहा जाता है। जहाँगीर, भाऊसिंह हाड़ा, शंभूनाथ सोलंकी तथा स्वरूपसिंह बुंदेला इनके आश्रयदाता थे। मतिराम नाम ही के एक कवि का

लीथो में प्रकाशित 'राजवंशावली' भी मिली है। वृत्तकौमुदी का रचना-काल सं० १७५८ वि० है, जिसके रचयिता मतिराम अपना परिचय यों देते हैं—

तिरपाठी वनपुर वसै वत्स गोत्र सुनि गेह।
विवुध चक्रमनि पुत्र तहँ गिरिधर गिरिधर देह॥
भूमिदेव बलभद्र हुव तिनहिं तनुज मुनि मान।
मंडित मंडित मंडली मंडन मही महान॥
तिनके तनय उदारमति विश्वनाथ हुवनाम।
द्युतिधर श्रुतिधर को अनुज सकल गुनन को धाम॥
तासु पुत्र मतिराम कवि निज मति के अनुसार।
सिंह स्वरूप सुजान को बरन्यो सुजस अपार॥

सं० १८७२ वि० में समाप्त हुई 'रसचंद्रिका' नामक पुस्तक के रचयिता कवि बिहारीलाल जी ने अपना वंश परिचय उसी ग्रंथ में इस प्रकार दिया है—

वसत त्रिविक्रमपुर नगर कालिंदी के तीर।
बिरच्यो भूप हमीर जनु मध्य देश को हीर॥
भूपन चिंतामनि तहाँ कवि-भूपन मतिराम।
नृप हमीर सनमान ते कीन्हें निज निज धाम॥
है पंती मतिराम के सुकवि बिहारीलाल।
जगन्नाथ नाती विदित सीतल सुत सुभ चाल॥
कस्यप बंस कनौजिया विदित त्रिपाठी गोत।
कविराजन के वृन्द में कोविद सुमति उदोत॥
विविध भाँति सनमान करि ल्याये चलि महिपाल।
आए विक्रम की सभा सुकवि बिहारीलाल॥

यह चरखारी-नरेश राजा विजयबहादुर विक्रमाजीत और उनके पुत्र महाराज रतसिंह के दरबार के राजकवि थे। (चरखारी का

विषय में लिखा गया है कि मतिराम और भूषण चिंतामणि के दो भाई थे तथा वे कोड़ा जहानाबाद के निवासी थे। गुलाम अली का जन्म सन् १७०४ ई० में हुआ था और सन् १७८६ ई० में इनकी मृत्यु हुई थी। इनके पितामह मीर अब्दुल जलील बिलग्रामी सैयद रहमतुल्ला के मित्र थे जिन्होंने चिंतामणि जी को पुरस्कृत किया था। गुलाम अली फारसी के सुकवि, इतिहासज्ञ तथा प्रसिद्ध गद्य-लेखक थे। इन्होंने कई ग्रंथ लिखे हैं और इन तीनों ही कवियों की वृद्धावस्था में वे संसार में आ चुके थे और उनकी मृत्यु के समय स्यात् युवा भी हो चुके थे। इनके इस भ्रातृ-संबंध विषयक कथन को अकारण ही अशुद्ध मान लेने का कोई कारण नहीं है। अब यहाँ भूषण के अतिरिक्त अन्य तीन कवियों का संक्षिप्त परिचय दे दिया जाता है।

चिंतामणि जी के छंदविचार, काव्यविवेक, काव्यप्रकाश, रामायण तथा कविकल्पतरु नामक पाँच ग्रंथ शिवसिंह के पुस्तकालय में थे। अंतिम विनोदकारों के पुस्तकालय में भी है। इनका छंदविचार ही भाषापिंगल नाम से खोज में प्राप्त हुआ है। रसमंजरी एक और ग्रंथ खोज में मिला है। इनका बनाया रामाश्वमेध ग्रंथ का कुछ अंश मिला है, जिससे इनका कश्यपगोत्री कान्यकुब्ज त्रिपाठी होना ज्ञात हुआ है। इनके आश्रयदाताओं में शाहजहाँ, औरंगज़ेब, ज़ैनदी अहमद, रुद्रसाह सोलंकी तथा मकरंदशाह भोंसला का नाम लिया जाता है।

मतिराम जी ने ललितललाम, छंदसार पिंगल, साहित्यसार, रसराज, लक्षण शृङ्गार, मतिराम सतसई, अलंकार पंचाशिका, फूलमंजरी तथा वृत्तकौमुदी रचा है, ऐसा कहा जाता है। जहाँगीर, भाऊसिंह हाड़ा, शंभूनाथ सोलंकी तथा स्वरूपसिंह बुंदेला इनके आश्रयदाता थे। मतिराम नाम ही के एक कवि का

लीथा में प्रकाशित 'राजवंशावली' भी मिली है। वृत्तकौमुदी का रचना-काल सं० १७५८ वि० है, जिसके रचयिता मतिराम अपना परिचय यों देते हैं—

तिरपाठी वनपुर बसे वत्स गोत्र सुनि गेह।
विबुध चक्रमनि पुत्र तहँ गिरिधर गिरिधर देह॥
भूमिदेव बलभद्र हुव तिनहिं तनुज मुनि मान।
मंडित मंडित मंडली मंडन महा महान॥
तिनके तनय उदारमति विश्वनाथ हुवनाम।
दुतिधर श्रुतिधर को अनुज सकल गुनन को धाम॥
तासु पुत्र मतिराम कवि निज मति के अनुसार।
सिंह स्वरूप सुजान को बरन्यो सुजस अपार॥

सं० १८७२ वि० में समाप्त हुई 'रसचंद्रिका' नामक पुस्तक के रचयिता कवि विहारीलाल जी ने अपना वंश परिचय उसी ग्रंथ में इस प्रकार दिया है—

बसत त्रिविक्रमपुर नगर कालिंदी के तीर।
बिरच्यो भूप हमीर जनु मध्य देश को हीर॥
भूषन चिंतामनि तहाँ कवि-भूषन मतिराम।
नृप हमीर सनमान ते कीन्हें निज निज धाम॥
है पंती मतिराम के सुकवि विहारीलाल।
जगन्नाथ नाती विदित सीतल सुत सुभ चाल॥
कस्यप बंस कनौजिया विदित त्रिपाठी गोत।
कविराजन के वृन्द में कोविद सुमति उदोत॥
विविध भाँति सनमान करि ल्याये चलि महिपाल।
आए विक्रम की सभा सुकवि विहारीलाल॥

यह चरखारी-नरेश राजा विजयबहादुर विक्रमाजीत और उनके पुत्र महाराज रतनसिंह के दरबार के राजकवि थे। (चरखारी का

इतिहास अँ० पृ० ३६,३६) ये दोनों ही राजे सुकवि तथा हिंदी-प्रेमी थे। बिहारीलाल का यह वंशपरिचय भूषण, मतिराम तथा चिंतामणि के भ्रातृत्व का स्पष्टतः न उल्लेख करते हुए भी उसका एक प्रकार से समर्थन करता है। भूषण ने अपना जो गोत्र, कुल, जन्मस्थान आदि लिखा है, वह सब बिहारीलाल द्वारा कथित मतिराम के विषय में भी ठीक उतरता है। बिहारीलाल राजा विक्रमाजीत के दरबार में गए थे, जो सं० १८४५ वि० में महाराज खुमानसिंह के युद्ध में मारे जाने पर गद्दी पर बैठे थे। इससे मतिराम का समय अठारहवीं शताब्दि के अंतर्गत पड़ता है।

मतिराम की रचनाओं में फूलमंजरी जहाँगीर की आज्ञा से बनी, जिसका राज्यकाल सं० १६६२–१६८४ वि० है। यह रचना इसी बीच की हो सकती है। ललितललाम ग्रंथ राजा भाऊसिंह हाड़ा के आश्रय में बना था, इससे इसका निर्माणकाल सं० १७३८ वि० के पूर्व ही है। अलंकार पंचाशिका कुमायूँ नरनाह ज्ञानचंद के लिए सं० १७४७ वि० में बनी थी। वृत्तिकौमुदी का निर्माणकाल सं० १७५८ वि० के पूर्व ही है। अन्य ग्रंथों में रचनाकाल नहीं दिया है। इन सब बातों में से किसी को भी अशुद्ध मानने का कोई कारण नहीं है इससे यही निश्चय है, कि एक से अधिक मतिराम अवश्य उस काल में वर्तमान थे। चिंतामणि जी ने रामाश्वमेध को छोड़ कर अन्यत्र न स्वयं ही अपने विषय में कुछ लिखा है और न उनके किसी वंशज ही ने उनका उल्लेख किया है। अस्तु, अभी तक इन तीनों सुकवियों के भ्रातृत्व के विषय में ऐसा कोई कथन नहीं मिला है, जिससे उक्त संबंध अशुद्ध प्रमाणित हो सके।

नीलकंठ उपनाम जटाशंकर भी इन त्रिपाठी-त्रय के भाई कहे जाते हैं पर न सर्व-आज़ाद में और न रसचंद्रिका ही में इनका

उल्लेख है। इन्होंने अमरेश विलास नामक एक ग्रंथ लिखा है, जिसका रचनाकाल एक दोहे में यों दिया है।

वरष से सोरह ठानवे सातैं सावन मास।
नीलकंठ कवि उच्चरिय श्री अमरेश विलास॥

इससे यह ग्रंथ सं० १६९८ वि० में निर्मित हुआ ज्ञात होता है, जो अमरसिंह के लिए लिखा गया है। रीवाँ नरेश अमरसिंह सं० १६८३ वि० में जहाँगीर के दरबार में गए थे और सं० १६९२ वि० में अब्दुल्ला खाँ बहादुर के साथ युद्ध पर गए थे। इनके पूर्वजों में रामसिंह तथा वीरसिंह भी हुए हैं जैसा कि इस ग्रंथ में उल्लेख है। यह सब होते हुए भी इन्हें स्पष्टतः त्रिपाठी-त्रय का भाई कहना ठीक नहीं ज्ञात होता।

पूर्वोक्त बिहारीलाल के वंशपरिचय से यह भी ज्ञात होता है कि भूषण के वंशजगण उसी ग्राम में उनकी मृत्यु के बाद भी रहते थे। भूषण के विषय में इससे अधिक अभी कुछ ज्ञात नहीं हुआ है। इनकी रचनाओं तथा आश्रयदाताओं का अन्यत्र विवरण दिया गया है।

२—भूषण-विषयक दंतकथाएँ

१—निमक की कथा

चिन्तामणि, भूषण, मतिराम तथा जटाशङ्कर नामक चार पुत्रों को छोड़ कर जब पं० रत्नाकर जी त्रिपाठी का स्वर्गवास हो गया तब गृहस्थी के निर्वाहार्थ धनोपार्जन के लिए यत्न करना आवश्यक हुआ। चिन्तामणि तथा मतिराम गृहस्थी के प्रबन्ध के

लिए भूषण को घर ही पर छोड़ कर जीविका की खोज में निकले। चिन्तामणि जी की दिल्ली सम्राट् के दरबार में पहुँच हो गई और वे धन कमा कर घर पर भेजने लगे। मतिराम जी भी आश्रय की खोज में लगे हुए थे। जटाशङ्कर साधु प्रकृति के पुरुष थे और वे सत्संग ही करने में व्यस्त रहते थे। भूषण उद्दण्ड स्वभाव के थे और केवल घर के प्रबन्ध आदि की देख-भाल करते थे। तात्पर्य यह कि उस समय तक चिन्तामणि जी ही उन चारों भाइयों में कमासुत थे और प्रकृत्या उनकी स्त्री को अपने पति के इस सार्थक गुण पर बहुत गर्व था। उसकी आँखों के सामने केवल भूषण ही थे जिस पर वह व्यंगोक्ति कस सकती थी और एक दिन उसने स्त्रीसुलभ स्वभाव से साधारण सी बात पर अपने मन की कसक मिटा ही ली। एक दिन भोजन में निमक कम होने से भूषण ने उससे माँगा। इस पर उनकी भावज साहेबा ने ताना मार कर कहा कि बहुत सा निमक कमा कर ला रखा है, जो उठा कर दे दूँ। बात भी किसी समय की ऐसी लग जाती है कि तीखे स्वभाव वाले को मरण कष्ट सा होने लगता है। भूषण को यह व्यंग्य असह्य हो 'उठा और उन्होंने उसी समय जीविकोपार्जन के लिए 'निकल घर से बस राह जङ्गल की ली।' इसके अनन्तर घूमते फिरते जब कभी यह शिवाजी के दरबार में पहुँचे और 'अठारह या बावन' लाख रुपया, गाँव और हाथी एक बार ही प्राप्त किया तब इस प्रकार एक साथ ही अपने भाग्य-कपाट के खुल पड़ने से ऐसे प्रसन्न हुए कि एक लाख रुपए का निमक खरीद कर अपनी भावज के पास भेज दिया। ज्ञात नहीं कि वह सब निमक उनकी भावज साहबा ने किस प्रकार खर्च किए। भूषण के ग्रन्थों के कुछ संपादकों को यह कथन स्यात् इतना अत्युक्तिपूर्ण मालूम हुआ कि उन्होंने पुरस्कार-प्राप्ति में हाथी, गाँव के साथ

लाख के स्थान पर सहस्र कर दिया और एक लक्ष के लवण के बदले केवल कई बोरे ही भेजवाए।

कालेज की शिक्षा के समय की एक बात याद आ गई। एक मौलवी साहब, जो अपने को बादशाहों का वंशज बतलाया करते थे, अपने यहाँ के व्यय आदि का कक्षा में खूब बढ़ा- कर वर्णन किया करते थे। एक दिन बातों ही में आपने कह डाला कि हमारे यहाँ तीन कनस्टर मिट्टी का तेल नित्य खर्च हो जाता है। सभी आश्चर्य से यह बात सुन रहे थे कि किसी चिलबिले लड़के ने आड़ से आवाज़ दी कि क्या पूरियां भी इसी में तली जाती हैं। मौलवी साहब क्रोध से चुप रह गए। साधारणतः इसी प्रकार दंतकथाएँ बनती जाती हैं।

२—कबूतरी घोड़ी

भूषण के बड़े भाई चिन्तामणि जी बादशाही दरबार में जमे हुए थे इसलिए यह भी इधर उधर घूमते हुए वहीं पहुँचे। कहा जाता है कि इन्होंने भूषण को बादशाह के सामने पेश किया और कविता सुनाने की आज्ञा दिलवाई। जब औरंगजेब ने कविता सुनाने की आज्ञा दे दी तब आपने 'हुक्म दिया' कि 'दरबार के अन्य कवियों की शृंगारी कविता सुनते सुनते आपके हाथ ठौर कुठौर पड़ते रहे हैं इसलिए आप हाथ धोलें क्योंकि हम ऐसे कवि की वीररसमयी कविता सुन कर आपके हाथ मोछों पर पहुँचेगें'। यह सुन कर औरंगज़ेब ने कहा कि यदि ऐसा न हुआ तो तुम्हें प्राणदण्ड दिया जायगा। इन्होंने इस शर्त को स्वीकार कर लिया तब औरंगज़ेब हाथ को स्यात् यमुना-जल से पवित्र कर कविता सुनने को सन्नद्ध हो बैठा।

लिए भूषण को घर ही पर छोड़ कर जीविका की खोज में निकले। चिन्तामणि जी की दिल्ली सम्राट् के दरबार में पहुँच हो गई और वे धन कमा कर घर पर भेजने लगे। मतिराम जी भी आश्रय की खोज में लगे हुए थे। जटाशङ्कर साधु प्रकृति के पुरुष थे और वे सत्संग ही करने में व्यस्त रहते थे। भूषण उद्दण्ड स्वभाव के थे और केवल घर के प्रबन्ध आदि की देख-भाल करते थे। तात्पर्य यह कि उस समय तक चिन्तामणि जी ही उन चारों भाइयों में कमासुत थे और प्रकृत्या उनकी स्त्री को अपने पति के इस सार्थक गुण पर बहुत गर्व था। उसकी आँखों के सामने केवल भूषण ही थे जिस पर वह व्यंगोक्ति कस सकती थी और एक दिन उसने स्त्रीसुलभ स्वभाव से साधारण सी बात पर अपने मन की कसक मिटा ही ली। एक दिन भोजन में निमक कम होने से भूषण ने उससे माँगा। इस पर उनकी भावज साहेबा ने ताना मार कर कहा कि बहुत सा निमक कमा कर ला रखा है, जो उठा कर दे दूँ। बात भी किसी समय की ऐसी लग जाती है कि तीखे स्वभाव वाले को मरण कष्ट सा होने लगता है। भूषण को यह व्यंग्य असह्य हो 'उठा और उन्होंने उसी समय जीविकोपार्जन के लिए 'निकल घर से बस राह जङ्गल की ली।' इसके अनन्तर घूमते फिरते जब कभी यह शिवाजी के दरवार में पहुँचे और 'अठारह या बावन' लाख रुपया, गाँव और हाथी एक बार ही प्राप्त किया तब इस प्रकार एक साथ ही अपने भाग्य-कपाट के खुल पड़ने से ऐसे प्रसन्न हुए कि एक लाख रुपए का निमक खरीद कर अपनी भावज के पास भेज दिया। ज्ञात नहीं कि वह सब निमक उनकी भावज साहबा ने किस प्रकार खर्च किए। भूषण के ग्रन्थों के कुछ संपादकों को यह कथन स्यात् इतना अत्युक्तिपूर्ण मालूम हुआ कि उन्होंने पुरस्कार-प्राप्ति में हाथी, गाँव के साथ

भेंट कर देते तो वे बहुतेरे संकटों से बच जाते और इनका भी रायगढ़ में अधिक अभूतपूर्व सत्कार हुआ होता।

३—अठारह वार या बावन वार

ऐसा कहा जाता है कि जब भूषण दक्षिण में रायगढ़ के पास पहुँचे तब वहाँ के तत्कालीन नरेश से उनसे राजधानी के बाहर किसी कूँए पर भेंट हुई। बातचीत में इन्होंने अपने आने का प्रयोजन भी कह डाला क्योंकि वह राजा उस समय एक उच्च अफसर के छद्मवेश में था। इनका परिचय पाकर उसने इनसे कुछ कवित्त सुनाने के लिए प्रार्थना की। भूषण ने उसके द्वारा दरबार में शीघ्र प्रवेश पाने के विचार से उसे प्रसन्न करना उचित समझ कर एक कवित्त पढ़ डाला। इसे सुन कर वह अतिप्रसन्न हुआ और उसे पुनः सुनना चाहा। भूषण ने उसे फिर बड़ी तड़क भड़क से पढ़ा, परन्तु सुनने वाले का मन नहीं भरा और उसने पुनः सुनने की इच्छा प्रकट की। इस प्रकार अठारह बार उसी कवित्त को सुनाते सुनाते कवि जी थक गए और चुप हो रहे। अफसर महाशय अपनी प्रसन्नता प्रकट करते और दरबार में आने का निमंत्रण देते चले गए। दूसरे दिन जब भूषण दरबार में पहुँचे तो क्या देखते हैं कि वही महाशय गद्दी पर विराजमान हैं और स्वयं सेनापति न हो कर महाराष्ट्रपति हैं। महाराज ने इनसे कहा कि हमने कल यह स्थिर किया था कि आप जितनी बार उस कवित्त को पढ़ेंगे उतने ही लक्ष रुपए, ग्राम तथा हाथी आपको भेंट में दिए जाएँगे, इसलिए आप इस भेंट को स्वीकार करें। तब से भूषण जी उसी दरबार में रहने लगे।

भूपण ने अपनी कविता सुनानी आरम्भ की और अंत में ऐसा भी हुआ कि औरंगज़ेब के हाथ बलात् मोछों पर पहुँच कर उनकी खबर लेने लगे। बादशाह इस पर अत्यन्त प्रसन्न हुआ।

एक दिन कवि-सम्मेलन हो रहा था और उसमें बादशाह भी उपस्थित थे। उस दिन न जाने बादशाह को क्या सूझी कि आप कहने लगे कि तुम लोग हमारी सर्वदा प्रशंसा ही किया करते हो, क्या हमारे में कोई ऐब नहीं है कि उसका भी वर्णन करो। चापलूसों ने यही कहा होगा कि श्रीमान में कोई दुर्गुण होते तो अवश्य ही उसका उल्लेख अब तक हो जाता, पर ऐसे कोई हैं ही नहीं। भूपण जी भी वहाँ उपस्थित थे। इन्होंने क्षमा का वचन लेकर औरंगज़ेब का दुर्गुण-गान आरम्भ किया और स्फुट संग्रह के पद सं० ३७ और ३८ पढ़ डाला। औरंगज़ेब इस सत्यस्तव पर बड़ा क्रुद्ध हुआ, पर वचन देने के कारण उसने इन्हें प्राणदण्ड नहीं दिया। इन्होंने दरबार में जाना छोड़ दिया। एक दिन औरंगज़ेब जुम्मा मस्जिद में निमाज़ पढ़ने जा रहा था कि सामने से भूपण जी महाराज अपनी कबूतरी घोड़ी पर सवार आ पहुँचे। बादशाह इनके सलाम बन्दगी न करने पर अत्यन्त क्रुद्ध हुआ और इन्हें पकड़ने के लिए आज्ञा दी, पर इन्होंने जो ऐड़ मारी तो पीछा करने वाले मुख देखते ही रह गए और यह हवा हो गए।

इस कहानी को कुछ लोग बड़ी श्रद्धा से निमक मिर्च लगा कर कहते हैं। भूपण ने 'इसी बीच महाराज शिवाजी को भी वहाँ देखा था' ऐसा भी लोगों ने लिखा है; पर यदि यह कथनी सत्य है तो भूपण ने भारी भूल की। यदि वह इस अलिफलैला के हवाई घोड़े सी या पुष्पकविमान सी घोड़ी शिवाजी को

भेंट कर देते तो ये बहुतेरे संकटों से बच जाते और इनका भी रायगढ़ में अधिक अभूतपूर्व सत्कार हुआ होता।

३—अठारह वार या बावन वार

ऐसा कहा जाता है कि जब भूषण दक्षिण में रायगढ़ के पास पहुँचे तब वहाँ के तत्कालीन नरेश से उनसे राजधानी के बाहर किसी कूँए पर भेंट हुई। बातचीत में इन्होंने अपने आने का प्रयोजन भी कह डाला क्योंकि वह राजा उस समय एक उच्च अफसर के छद्मवेश में था। इनका परिचय पाकर उसने इनसे कुछ कवित्त सुनाने के लिए प्रार्थना की। भूषण ने उसके द्वारा दरबार में शीघ्र प्रवेश पाने के विचार से उसे प्रसन्न करना उचित समझ कर एक कवित्त पढ़ डाला। इसे सुन कर वह अतिप्रसन्न हुआ और उसे पुनः सुनना चाहा। भूषण ने उसे फिर बड़ी तड़क भड़क से पढ़ा, परन्तु सुनने वाले का मन नहीं भरा और उसने पुनः सुनने की इच्छा प्रकट की। इस प्रकार अठारह बार उसी कवित्त को सुनाते सुनाते कवि जी थक गए और चुप हो रहे। अफसर महाशय अपनी प्रसन्नता प्रकट करते और दरबार में आने का निमंत्रण देते चले गए। दूसरे दिन जब भूषण दरबार में पहुँचे तो क्या देखते हैं कि वही महाशय गद्दी पर विराजमान हैं और स्वयं सेनापति न हो कर महाराष्ट्रपति हैं। महाराज ने इनसे कहा कि हमने कल यह स्थिर किया था कि आप जितनी बार उस कवित्त को पढ़ेंगे उतने ही लक्ष रुपए, ग्राम तथा हाथी आपको भेंट में दिए जाएँगे, इसलिए आप इस भेंट को स्वीकार करें। तब से भूषण जी उसी दरबार में रहने लगे।

कुछ लोग इस नरेश का नाम शिवाजी और कुछ लोग साहू जी बतलाते हैं। साथ ही ऐसी भी किंवदती है कि अठारह संख्या के बदले बावन संख्या ठीक है। और एक ही पद न हो कर भिन्न बावन पद कहे गए थे। यही संग्रह पीछे से शिवा बावनी कहलाया। अठारह बार पढ़ा जाने वाला छंद शिवराजभूषण का ५६वाँ पद है।

इस दंतकथा से यह भी आभास मिलता है कि भूषण दो बार दक्षिण गए थे। पहिली बार शिवाजी से भेंट हुई थी और 'इन्द्र जिमि जंभ पर' वाला कवित्त अठारह बार सुना कर उनके दरबार के राजकवि हुए थे। और दूसरी बार साहू जी के समय में गए तथा उनको उनके पितामह की कीर्ति के बावन पद सुनाए थे।

३—आश्रयदाता गण

शिवराज भूषण के पद २५-३० से यह ज्ञात होता है कि भूषण जी को भूषण उपाधि देने वाले चित्रकूटपति 'हृदयराम सुत रुद्र' तथा शिवाजी दो ही वास्तव में इनके आश्रयदाता थे। इनमें भी द्वितीय ही प्रधान हैं। यह भूषण जी ने स्वयं स्वीकार किया है। इन दो के सिवा भूषण जी ने प्रायः एक दर्जन तत्कालीन राजाओं के विषय में प्रशंसात्मक रचनाएँ की हैं जिनमें किसी के लिए एक ही कवित्त तथा किसी के लिए दो तीन तक कह डाला है। केवल एक पन्नानरेश छत्रसाल के लिए इन्होंने दशक बनाने का परिश्रम उठाया है। नीचे एक तालिका दी जाती है जिससे ज्ञात हो जायगा किसके लिए कितने और कौन

छंद कहे गए हैं। इसमें सोलंकी भी आ जाते हैं क्योंकि इनके संबंध में भी भूषण ने विशेष कुछ नहीं कहा है।

संख्या	नाम	पदसंख्या	ग्रंथावली की छंद सं०
१	चित्रकूटपति 'हृदयराम सुत रुद्र' सुलंकी	२	२८, ३२ स्फु०
२	छत्रसाल बुन्देला	१३	दशक २६ स्फु०
३	शंभा जी	१	२८ स्फु०
४	साहू जी	२	२९, ३० स्फु०
५	राव बुद्ध सिंह	२	३३, ३९ स्फु०
६	अवधूत सिंह	१	३४ स्फु०
७	कमायूँ नरेश	१	३६ स्फु०
८	मिर्ज़ाराजा जयसिंह	२	४०, ४२ स्फु०
९	महाराज रामसिंह	१	४० स्फु०
१०	अनिरुद्धसिंह पौरच	१	४३ स्फु०
११	बाजीराव	१	५८ स्फु०
१२	दाराशाह	३	४१,३७,३८स्फु०
१३	औरंगज़ेब	२	३७, ३८ स्फु०
१४	छत्रसाल हाड़ा	२	१-२ छत्र द०

भूषण जी के ५०६ पद इस ग्रंथावली में संगृहीत हैं। शिवराज भूषण तथा शिवा बावनी में केवल शिवाजी ही की प्रशंसा है। छत्रसाल दशक में केवल पन्नानरेश छत्रसाल की प्रशंसा है। हाँ

उसी नाम के संबंध से बूँदीनरेश छत्रसाल हाड़ा का भी प्रथम दो दोहों में उल्लेख है। अब केवल साठ स्फुट पद बचे। इनमें भी बत्तीस पद शिवाजी ही की प्रशंसा में हैं, बारह शृंगार रस के हैं और बचे हुए १६ पदों में भूषण के अन्य सब आश्रयदातागण, यदि वे इस नाम से पुकारे जा सकते हैं, निपटा दिये गये हैं।

ऊपर तालिका में जो चौदह नाम आये हैं उनमें एक नाम 'औरंगजेब' इस लिये नहीं रखा गया है कि भूषण ने उसकी सुप्रशंसा की है प्रत्युत उसकी कुप्रशंसा (निन्दा) के लिये रखना आवश्यक हुआ। अब पहिले शिवाजी, उनके पुत्र और पौत्र तथा छत्रसाल बुंदेला की जीवनी देकर उसके बाद छत्रसाल हाड़ा आदि अन्य आश्रयदाताओं पर विचार किया जायगा। इन सज्जनों के संक्षिप्त परिचय परिशिष्ट में दिए गये हैं।

छत्रपति महाराज शिवाजी

(१६८४—१७३७)

मेवाड़ के सूर्यवंशावतंस सीसोदिया नरेशों के एक वंशज दक्षिण में आबसे थे, जिनकी कई पीढ़ी बाद एक बाबा जी हुये, जिनके मालो जी तथा विठो जी दो पुत्र थे। मालो जी ने अहमदनगर के नीज़ाम शाह के एक जगीरदार लाखा जी जादव राव के यहाँ नौकरी कर ली। कुछ दिनों में यह उसी राज्य के स्वतंत्र जागीरदार हो गए और अपने पुत्र शाह जी का लाखा जी जादव की पुत्री जीजाबाई से सं० १६६१ वि० में विवाह किया। नीज़ामशाह ने मालो जी को पाँच हज़ारी मंसब प्रदान कर पूना

और सूपा को जागीर चाकण तथा शिवनेरी दुर्गों के साथ दिया। सं० १६७६ वि० में मालो जी की मृत्यु होने पर शाह जी भी अहमदनगर राज्य की सेवा करते रहे। इनके बहुत कुछ प्रयत्न करने पर भी सन् १६३७ ई० में उस राज्य का अंत हो गया और यह बीजापुर के सुलतान की सेवा में चले आये।

सं० १६८४ वि० में शिवनेरी दुर्ग में शिवाजी का जन्म हुआ था और प्रायः दस वर्ष तक यह अपनी माता के साथ कभी इस दुर्ग में कभी उस दुर्ग में प्राणरक्षा के लिये फिरते रहे। सं० १६६४ में बीजापुर से संधि हो जाने तथा शाहजहाँ के इनके पिता को क्षमा करने पर यह बीजापुर गए और वहाँ तीन वर्ष शांति से व्यतीत करते हुये उस मुसलमान दरबार के सब रहस्यों को जान गए। इसके अनंतर शाह जी कर्णाटक की चढ़ाई पर गये और अपने पुत्र को माता के साथ अपनी जागीर पूना में भेज दिया। दादा जी कोणदेव को शिवाजी की शिक्षा तथा जागीर के प्रबंध का भार सौंपा गया। इन्हें रामायण, महाभारत तथा पुराणों की कथा सुनने तथा अस्त्रविद्या सीखने का बहुत प्रेम था। यह बड़े उत्साह से आस पास के पर्वतों में घूमते तथा पहाड़ी मनुष्यों से मित्रता स्थापित करते थे। दादा जी ने अपने नाम के अनुसार ही राजोचित तथा वीरोचित इन्हें शिक्षा दी और यह कुछ ही दिनों में अस्त्रविद्या में निपुण होगए।

सं० १७०३ वि० में शिवाजी ने अपनी पहिली चोट तोरण दुर्ग पर की और उस पर अधिकार कर लिया। यहाँ इन्हें कुछ गड़ा हुआ धन मिल गया, जिससे उन्होंने मोरबंद पर्वत शृंग पर राजगढ़ दुर्ग बनवाया। बीजापुर दरबार ने शिवाजी के इस कार्य की सूचना शाह जी को भेज कर उन्हें शिवाजी को ऐसे कार्य से रोकने के लिए लिखा। शाह जी ने दादा जी को लिखा, पर वह

जराग्रस्त होकर सं० १७०४ में मृत्यु-मुख में चले गए। इसके अनंतर शिवाजी ने जागीर का कुल प्रबन्ध अपने हाथ में लेकर कोंदाना तथा पुरंधर दुर्गों पर भी अधिकार कर लिया। इस प्रकार इस वर्ष के अंत तक पूना प्रान्त पर इनका पूर्ण अधिकार हो गया। इसके अनंतर शिवाजी ने उत्तरी कोंकण पर चढ़ाई की और वहाँ के बीजापुरी प्रांताध्यक्ष मौलाना अहमद के कल्याण में आवाजी सोनदेव द्वारा पकड़े जाने पर उनका उस प्रान्त पर दक्षिण में सावंत वाड़ी तक अधिकार हो गया। इस प्रान्त में नौ बड़े दुर्ग थे। जिनमें लोहगढ़, राजमाची तथा रैरी प्रसिद्ध हैं। आवा जी सोन-देव ने मौलाना अहमद की पुत्रवधू को, जो अत्यंत सुंदरी थी, शिवाजी के लिए भेजा था; पर मराठा राज्य के संस्थापक युवक वीर ने उस युवती को देख कर मुसकरा कर केवल इतना ही कहा कि यदि माता जी इसकी आधी भी सुंदरी होतीं तो मैं ऐसा कुरूप न होता। यह कह कर उसे शिवाजी ने मौलाना के पास भेज दिया।

बीजापुर दरबार ने यह शंका कर कि शाह जी ही के इशारे पर शिवाजी ने इस प्रकार विद्रोह मचा रखा है और शाह जी स्वयं कर्णाटक में राज्य स्थापित करना चाहते हैं षड्यंत्र कर मुधोल के बाजी घोरपड़े की सहायता से उन्हें पकड़ लिया। चार वर्ष तक शाह जी कारागार में रहे। राजनीतिकुशल शिवाजी ने इसके उत्तर में मुग़ल सम्राट् से संधि प्रस्ताव आरम्भ किया, जिससे बीजापुर दरबार डर गया, क्योंकि यदि विजित प्रान्त को शिवाजी मुग़लों को दे देते तो वे बीजापुर राजधानी के बहुत पास पहुँच जाते। इधर कर्णाटक में भी गड़बड़ मचा हुआ था, इसलिए अंत में शाह जी सं० १७१० में छूट गये और कर्णाटक भेजे गये।

उत्तरी कोंकण के दक्षिण में जावली प्रान्त था, जिसका राजा

कृष्णा जी बाजी चंद्रराव मोरे था। इसने सं० १७०६ वि० में बीजापुर के बाजी श्यामराजे को शिवाजी को धोखे से पकड़ने के निष्फल प्रयत्न में सहायता दी थी। उसका राज्य भी शिवाजी के राज्यविस्तार में बाधक हो रहा था, इसलिये इन्होंने उसे मिलाने का बहुत प्रयत्न किया पर असफल रहे। तब सं० १७१२ वि० में इनके दो अफसर रघूबल्लाल तथा शंभा जी काव जी ने षड्यंत्र रच कर चंद्रराव मोरे को मार डाला और शिवाजी की छिपी हुई सेना ने अवसर पर पहुँचकर जावली पर अधिकार कर लिया। शृंगारपुर तथा सावंतवाड़ी के सर्दारों ने भी शिवाजी की अधीनता स्वीकार कर ली।

बीजापुर दरबार इस बीच मुग़लों के चक्र में पड़ा हुआ था, इस लिए वह शिवाजी को दमन करने का प्रयत्न नहीं कर सका था। सं० १७०७ वि० में औरंगजेब दक्षिण का सूबेदार होकर आया। सं० १७१२ वि० में इसने गोलकुण्डा पर चढ़ाई कर उसे अपने अधीन कर लिया। इसके दूसरे वर्ष बीजापुर का सुलतान मुहम्मद आदिल शाह मर गया और उसका पुत्र अली उन्नीस वर्ष की अवस्था में गद्दी पर बैठा। औरंगज़ेब ने ऐसा अवसर चूकना नहीं सीखा था, इसलिए सं० १७१३ वि० में उसने बीजापुर पर चढ़ाई कर दी। यह राज्य मरणप्राय हो चला था कि शाहजहाँ की रुग्णावस्था के समाचार ने उसके पुत्रों में साम्राज्य के लिए युद्ध छिड़वा दिया, जिसके फल रूप तीन नष्ट हो गये और एक यही औरंगजेब बादशाह हुए। बीजापुर बच गया और औरंगज़ेब ने झटपट संधि कर भाइयों से लड़ने के लिये दिल्ली की ओर प्रस्थान किया। शिवाजी ने औरंगज़ेब के बीजापुर जाने पर जुनेर लूटा था तथा अहमदनगर तक गए थे, पर हार कर लौट आए थे। बीजापुर से संधि हो जाने पर शिवाजी ने भी औरंगज़ेब के पास क्षमा याचना का पत्र भेज दिया।

सं० १७१६ वि० में बीजापुर में खवास खाँ प्रधान मंत्री हुआ और उसने अफ़ज़ल खाँ को फ़ारसी तवारीखों के अनुसार दस सहस्र सवार तथा भूषण के अनुसार बारह सहस्र सवार देकर शिवाजी को दमन करने के लिए भेजा। यह प्रसिद्ध सेनापति तथा भारी डीलडौल का मनुष्य था। मार्ग में इसने तुलजापुर की अंबा भवानी का मंदिर भ्रष्ट कर डाला। शिवाजी इस चढ़ाई का वृत्तांत सुनकर राजगढ़ से प्रतापगढ़ चले आए, जिस समाचार को सुनकर अफज़ल भी माणिकेश्वर, पंढरपुर आदि स्थान अपवित्र करता हुआ वहीं पहुँचा। यहाँ से इसने शिवाजी को फँसाने के लिए कृष्णा जी भास्कर को भेजा। शिवाजी भी अपने नए राज्य को ऐसे प्रसिद्ध सेनापति के साथ युद्धक्षेत्र में लड़कर विषम समस्या में डालना नीतिविरुद्ध समझ रहे थे और किसी प्रकार उस पर सहज ही में विजय प्राप्त करना चाहते थे। अफज़ल ही की नीति ने उनकी सहायता की और दोनों ही ने एकांत में मिलने का षड्यंत्र रचा। दोनों ही एक दूसरे को उसी एकांतस्थल में समाप्त करने के विचार में लगे थे। अंत में प्रतापगढ़ के नीचे एक मील हट कर पार गाँव में अफज़ल खाँ आ टिका और दूसरे दिन इन दोनों स्थान के बीच में पहाड़ पर एक खेमे में दोनों सेनानियों की भेंट हुई। मिलते ही समय अफज़ल खाँ ने छोटे डील वाले शिवाजी को बाएँ हाथ से खूब कस कर दाब लिया और दहिने हाथ से छूरा खींचकर उन पर चोट की। शिवाजी कवच पहिरे हुए थे, जिससे, उनकी प्राणरक्षा हुई पर अफज़ल खाँ शिवाजी के बघनखे तथा बिछुए की चोट से न बच सका। इस प्रकार अफज़ल खाँ को मार कर शिवाजी ने दुर्ग में पहुँचते ही तोप छुड़वा दी, जिसे सुनते ही छिपी हुई मराठी सेना मुसलमानों पर टूट पड़ी और लगभग तीन सहस्र सैनिक मारे गए। उस सेना का पूरा सामान शिवाजी के हाथ आया।

शिवाजी इस विजय से ही संतुष्ट न होकर कुछ सेना राज्य के रक्षार्थ छोड़ कर अधिकांश सेना के साथ दक्षिण को चले और कोल्हापुर ज़िले के पन्हाला, विशालगढ़, रंगाना, पवनगढ़ आदि कई दुर्ग विजय कर लिए। यह सब मेराज के फौजदार रुस्तमज़माँ की जागीर में था, जो परास्त होकर भाग गया। शिवाजी सेना सहित लूट मार करते बीजापुर तक पहुँचे और वहां से लौट पड़े। बीजापुर दरबार ने एक भारी सेना सीदी जौहर की अधीनता में भेजी, जिसके साथ अफज़ल का पुत्र फज़्लमुहम्मद भी था। इस सेना ने शिवाजी को पन्हाला दुर्ग में घेर लिया। कई महीनों के घेरे के अनंतर दुर्ग टूटने को हुआ तब, शिवाजी ने संधि का प्रस्ताव किया और जब शत्रु को असतर्क पाया उस समय उस दुर्ग से निकल कर दूसरे दुर्ग रंगाना होते हुए प्रतापगढ़ चले गए। इसी कार्य में जब शत्रु ने जानने पर शिवाजी का पीछा किया तब बाजीप्रभु देशपांडे ने पंढरपानि दर्रे में दो प्रहर तक शत्रु के सब आक्रमणों को निरर्थक करते हुए उन्हें रोका और अंत में अपने प्राण विसर्जन कर स्वामी को दुर्ग में सुरक्षित पहुँच जाने का अवसर दिया था।

सं० १७१८ वि० में बीजापुर की सेना वाड़ी के सावंतों तथा मुधोल के घोरपदे की सहायता से शिवाजी पर आक्रमण करने की तैयारी कर रही थी कि इन्होंने एकाएक मुधोल पर धावा कर उसे लूट कर तथा आग लगाकर नष्ट कर दिया। इसके बाद सावंतवाड़ी पर भी अधिकार कर लिया। तब अंत में बीजापुर के दरबार ने शाह जी को मध्यस्थ बनाकर शिवाजी से संधि कर ली। इसी समय शाह जी अपने प्रतापी पुत्र से मिलने आये थे, जिसने उनका पुत्रवत् बहुत कुछ आदर सत्कार किया।

इसके दो वर्ष बाद सं० १७२१ वि० में घोड़े से गिर पड़ने के कारण शाह जी की मृत्यु हो गई। इसी के आस पास शिवाजी ने अपनी राजधानी राजगढ़ से रायगढ़ में बदल दी। इस दुर्ग को स्वयं शिवाजी ने बनवाया था, जिसका प्रधान कोट सं० १७२१ तक तैयार हो गया था।

एक प्रकार बीजापुर की ओर से निश्चिंत होकर शिवाजी ने मुग़ल साम्राज्य में लूट मार आरंभ की। सं० १७१६ वि० में नाथा जी पालकर ने औरंगाबाद तक धावा मारा और बहुत सी लूट रायगढ़ में जाकर जमा कर दिया। जो मुग़ल सेना उस समय औरंगाबाद में थी, वह मराठों का सामना नहीं कर सकी। औरंगज़ेब ने अपने मामा शायस्ता ख़ाँ अमीरुल्उमरा को दक्षिण का सूबेदार नियुक्त कर महाराज यशवंत सिंह के साथ शिवाजी को दमन करने के लिए भेजा। सं० १७२० वि० में यह औरंगाबाद से भारी सेना लेकर, भूषण तथा मानकर की हस्तलिखित प्रति के अनुसार एक लाख सवार के साथ, पूना की ओर चला। मार्ग में मराठे सवार चारों ओर सामान आदि लूटने जाते थे। अंत में वर्षा व्यतीत करने को पूना में पड़ाव डाला गया और शिवाजी सिंहगढ़ में चले गए। मुग़लों ने चाकण दुर्ग घेरा जिसे वे तीन मास के घेरे के अनंतर संधि करके ले सके। पूना में ऐसा कड़ा प्रबंध था कि कोई अनजान आदमी बिना आज्ञा लिए हुए आ जा नहीं सकता था। इसी समय शायस्ता ख़ाँ ने शिवाजी को एक श्लोकार्ध लिख भेजा था कि 'तुम बंदर की तरह पर्वत में क्या छिपे बैठे हो'। शिवाजी ने उत्तर भेजा कि हाँ, पर याद रहे कि बंदरों ही ने रावण तथा उसकी सेना को नष्ट किया था।' इसीके अनंतर शिवाजी ने ऐसा उपाय निकाला कि एक रात्रि वह चुने हुए साथियों

सैनिकों* के साथ पूना में भीतर वहाँ पहुँच गए जहाँ शायस्ता ख़ाँ सोया हुआ था और उस शोरगुल में शायस्ता ख़ाँ का एक लड़का तथा बहुत से अन्य आदमी मारे गये। शायस्ता ख़ाँ तीन उँगलियाँ कटाकर खिड़की से कूद कर भागा। † उसी गड़बड़ी में शिवाजी भी अपने सैनिकों के साथ निकल गये और कुशलपूर्वक सिंहगढ़ पहुँच गए। शायस्ता ख़ाँ बुला लिया गया और उसके स्थान पर शाहज़ादा मुअज्ज़म सूबेदार होकर आया।

जिस समय प्रांताध्यक्षों का अदल बदल हो रहा था, उसी बीच सं० १७२१ वि० में शिवाजी ने पहली बार सूरत लूटा। इसी वर्ष महाराज जसवंत सिंह ने कोंदाना अर्थात् सिंहगढ़ घेरा, पर उसे नहीं ले सके। भाऊसिंह हाड़ा भी इनके साथ थे और इसी घटना का भूषण ने 'जाहिर है जग में जसवन्त लियो गढ़ सिंह में गीदड़ बानो' में उल्लेख किया है। औरंगज़ेब शायस्ता ख़ाँ की दुर्दशा तथा सूरत की लूट का वृतांत सुन कर अपने योग्यतम सेनापति महाराज जयसिंह को अन्य प्रसिद्ध सरदारों दिलेर खाँ, दाऊद खाँ कुरेशी, रायसिंह सिसोदिया, सुजानसिंह बुँदेला, मुल्ला यहिया आदि के साथ भेजा। सं० १७२२ वि० के आरंभ में इन्होंने दक्षिण के सूबेदार शाहजादा मुअज्जम से भेंट

---

* भूषण लिखते हैं—सो सो के शिवाजी जेहि दो सौ आदमी सों जीत्यो जंग सरदार सौ हजार असवार को। सरकार कृत 'शिवाजी' में भी दो सौ सिपाही लेकर ही शिवाजी का उस महल में जाना लिखा है, जिसमें शायस्ता ख़ाँ रहता था। (पृ० ६४)

† भूषण कहते हैं—सायस्ता ख़ाँ दक्खिन को प्रथम पठायो तेहि बेटा के समेत हाथ जायके गँवायो है।

कर महाराज जसवंत सिंह से सेनापतित्व का भार ले लिया, जो बादशाही आज्ञानुसार दिल्ली चले गये। जयसिंह बड़े ही राजनीति-कुशल पुरुष थे। इन्होंने शिवाजी के सभी शत्रुओं को उनके विरुद्ध उभाड़ा। यह बड़ी सतर्कता से मार्ग खुला रखने के लिये थाने बनाते हुए पूना पहुँचे और वहाँ कुछ सेना छोड़ कर आगे बढ़े।' पुरंधर घेरा गया और ढाई महीने के घेरे पर जब अंत में शिवाजी ने यह देखा कि यह दुर्ग अब टूटा चाहता है तथा वे जयसिंह का सामना करने में समर्थ नहीं हैं तब संधि कर ली। इस संधि की एक शर्त यह भी थी कि शिवाजी अपने पैंतीस, भूषण के पंचतीस, दुर्गों में से तेईस दुर्ग मुगल सम्राट को सौंप दें और बारह अपने लिये रखें। दूसरी शर्त के अनुसार शिवाजी ने बीजापुर के विरुद्ध मुगलों की सहायता करना स्वीकार किया। इन शर्तों से ज्ञात होता है कि जयसिंह ने शिवाजी पर तीन ही महीने में ऐसी विजय प्राप्त कर ली थी कि उन्होंने अपने राज्य का आधे से कहीं अधिक भाग देकर भी संधि करना उचित समझा था।

इसके अनंतर महाराज जयसिंह शिवाजी को साथ लेकर बीजापुर गए। कई विजय प्राप्त करने पर भी सर्दारों के वैमनस्य से यह सफलप्रयत्न न हो सके और बीजापुर पहुँच कर लौट आए। इसी बीच इन्होंने शिवाजी को दिल्ली जाकर बादशाह से भेंट करने के लिए भेजा। यह भी बादशाह से स्वयं मिल कर अपने लिये अच्छी शर्तें करने के विचार से दिल्ली जाने के उत्सुक थे, पर उसमें यह असफल रहे। औरंगज़ेब इनके नाम से चिढ़ता था और जान बूझ कर इनका अनादर करने के लिए पहिले साधारण सर्दारों को अगवानी के लिए भेजा तथा दरबार में आने पर पाँच हजारी मंसबदारों के बीच में इन्हें स्थान दिया। उसीने इनके पहिले इन के पुत्र तथा इनके सेवक नाथा जी पालकर को पाँच

हजारी मंसब दिया था। शिवाजी ने मुसलमानी रीत्यानुसार ज़मीन तक झुक कर फर्शी सलाम तक न किया और अपने अनादर को स्पष्टतः दरबार ही में कुमार रामसिंह पर प्रकट कर दिया। औरंगज़ेब ने क्रुद्ध होकर इनके डेरे पर पहरा बैठा दिया, जिससे वे भाग न सकें। इन्होंने दक्षिण लौट जाने की आज्ञा माँगी; पर उस पर यही हुक्म हुआ कि अपने सैनिकों को वे विदा कर दें पर स्वयं अपने पुत्र सहित कुछ दिन और ठहरें। शिवाजी ने आज्ञा पाते ही अपने रक्षक सैनिकों को विदा कर दिया और अपने निकल भागने का उपाय करने लगे। कुँअर रामसिंह अपने पिता के वचन की रक्षा करने के लिये इस कार्य में सहायक हुए। शिवाजी के बीमार होने का समाचार सब को सुनाया जाने लगा तथा मिठाई के बड़े बड़े खाँचे अमीरों, राजाओं तथा मस्जिदों में गरीबों को बाँटने को भेजे जाने लगे। यह कार्य कई दिन चलता रहा जिससे पहरेदार लोग अब बिना देखे ही टोकरों को बाहर जाने देने लगे। एक दिन ये दोनों पिता पुत्र दो टोकरों में बाहर निकल गए। इनके स्थान पर इनका एक सेवक हीरा जी फर्जंद दुशाला ओढ़कर सोया हुआ था, जिसे पहरेदार देखकर समझ जाते थे कि दक्षिण-राज सोये हुए हैं; पर वे मथुरा की ओर मारामार चले जा रहे थे। यहाँ ताना जी मालूसरे मिले और मथुरा में साधू का छद्मवेश धारण कर शिवाजी प्रयाग होते क़ाशी पहुँचे। प्रयाग ही में शंभा जी को एक ब्राह्मण के यहाँ छोड़ दिया था। काशी से यह सकुशल दक्षिण पहुँच गए। औरंगज़ेब ने बहुत कुछ इन्हें पकड़ने का प्रबंध किया पर असफल रहा।

दक्षिण लौटने पर शिवाजी तीन वर्ष से अधिक समय तक शांतिपूर्वक अपने राज्य का दृढ़ प्रबंध करने में लगे रहे और

इसके बाद सं० १७२७ वि० में इन्होंने फिर शस्त्र उठाया। सर्व-प्रथम सिंहगढ़ लेना ही इनका ध्येय था क्योंकि मुग़लों से संधि करने से पूना के आस पास इनका जो राज्य बचा था उस पर इस दुर्ग तथा पुरंधर दुर्ग के मुग़लों के हाथ में होने से बादशाही प्रभाव अधिक था। माघ कृष्ण नवमी को ताना जी मालूसरे अपने भाई सूर्या जी राव तथा एक सहस्र मावली सैनिक लेकर सिंहगढ़ लेने चले, जिसका दुर्गाध्यक्ष उदयभानु राठौड़ शारीरिक शक्ति तथा साहस के लिये प्रसिद्ध था। दुर्ग में भी एक सहस्र मुसलमान तथा राजपूत सेना मौजूद थी। ताना जी मालूसरे तथा तीन सौ सैनिक रस्सियों द्वारा चुपचाप दुर्ग पर चढ़ पाए थे कि एक संतरी को कुछ आहट लगा गई। वह उसी समय तीर से मारा गया, पर दुर्ग के सैनिकों को आवाज़ होने से पता लग गया और वे झुण्ड के झुण्ड मशालें बाल कर उसी ओर आने लगे। ताना जी ने भी अवसर देख कर धावा बोल दिया। मावले भी 'हर हर महादेव' से दिशाओं को कंपायमान करते हुए शत्रु पर टूट पड़े। युद्ध ही के बीच दोनों पक्ष के प्रसिद्ध सरदारों में सामना हो गया और दोनों में द्वन्द्व युद्ध होने लगा जिसमें ताना जी मारे गये। सर्दार के गिरते ही मावले हतोत्साह होकर हटने लगे कि सूर्या जी बची हुई सेना के साथ युद्धस्थल पर आ पहुँचे। यह अपनी सेना को ललकार कर उदैभान पर टूट पड़े और पहिली ही वार में उसे ले बीते। बहुत ही कड़े युद्ध पर दुर्ग विजय हुआ। दुर्ग की आधी सेना मारी गई और पाँच सौ राजपूत ऐसी अवस्था में पकड़े गये, जो घावों के कारण हिल तक नहीं सकते थे। शिवाजी ने सब को पुरस्कृत किया था। इसके अनन्तर एक एक कर के शिवाजी ने मुग़लों को दिये हुए प्रायः सभी दुर्गों पर अधिकार कर लिया। इसी वर्ष सूरत दूसरी बार लूटा गया और सीदियों पर भी एक विजय प्राप्त की गई। शिवाजी लूट

लेकर मुल्हेर के आगे बढ़े थे कि दाऊद खाँ कुरेशी ने वानी डिंडौरी के पास इनका रास्ता रोका, जहाँ प्रतापराव गूजर की अधीनता में मराठी सेना के एक भाग ने इससे युद्ध कर इसे परास्त किया और शिवाजी को रायगढ़ लूट ले जाने का अवसर दिया।

इसके अनंतर सं० १७२८ वि० के आरंभ में शिवाजी ने बरार बगलाना की ओर दो सेनाएँ भेज कर कई स्थानों को लूटा। बरार का सूबेदार खानेज़माँ देवगढ़ तक आकर वहीं रुक रहा। दोनों मराठी सेनाएँ प्रतापराव गूजर तथा मोरो त्र्यंबक पिंगले के अधीन में सलहेर में मिलीं और उसे घेर लिया। दाऊद खाँ दुर्ग की सहायता को आ रहा था, पर इसके पहिले ही दुर्ग पर मराठों का अधिकार हो गया। इस बीच मुग़ल सेनानियों की अदला बदला जारी थी। पहिले महाबत खाँ को अमरसिंह आदि कई सर्दारों के साथ भेजा, पर जब वह कुछ न कर सका तब उसके स्थान पर बहादुर खाँ तथा दिलेर खाँ भेजे गये। सं० १७२९ वि० में ये दोनों इख़लास खाँ मियाना, अमरसिंह चंद्रावत आदि कई सर्दारों को सेना सहित सलहेरी लेने को भेज कर अहमदनगर होते पूना तथा सूपा गये और उन दोनों स्थानों पर अधिकार कर लिया। इसी समय शिवाजी सलहेरी की रक्षा के लिये ससैन्य आ पहुँचे। मुग़ल सेना से घोर युद्ध हुआ जिसमें इखलास खाँ और मुहकम सिंह पकड़े गये तथा अमरसिंह कई सर्दारों और कई सहस्र सैनिकों के साथ मारा गया। इसके अनंतर मुल्हेर विजय कर शिवाजी कोंकण लौट गए। महाबत खाँ तथा शाहज़ादा मुअज़्ज़म राजधानी लौट गये और बहादुर खाँ सेनापति तथा सूबेदार नियत हुआ।

इसी वर्ष मराठी सेना ने जवारि के कोली राजा विक्रम-

साह को परास्त कर उस राज्य पर अधिकार कर लिया। इसके बाद रामनगर के कोली राज्य पर भी अधिकार हो गया। इसके अनंतर शिवाजी ने एक सेना तेलिंगाना भेजी, जिसने रामगिरि स्थान को तथा बीच के कई जगहों को लूट लिया। बहादुर खाँ तथा दिलेर खाँ ने इस सेना के दोनों भागों का पीछा किया, जो शत्रु को देख कर दो टुकड़ों में बँट गई थी और एक भाग उत्तर चाँदा होते बरार गया और दूसरा गोलकुण्डा राज्य में होकर दक्षिण चला गया। मुग़लों के विशेष सतर्कता दिखलाने से शिवाजी ने कनारा तथा दक्षिणी महाराष्ट्र की ओर सेना फेरी और सं० १७३० के आरंभ में पन्हाला तथा सितारा दुर्ग ले लिए। इसके अनंतर पच्चीस सहस्र मराठी सेना ने बीजापुर के पश्चिमी भाग में खूब लूट मचाया। बहलोल खाँ ने बंकापुर में तथा सरज़ा खाँ ने चाँदगढ़ में मराठी सेना की दो टुकड़ियों को परास्त किया; परंतु प्रताप राव गूजर ने उमरानी के पास उसे ऐसा परास्त किया कि उसने शिवाजी के विरुद्ध न लड़ने की प्रतिज्ञा तक कर ली। इस प्रतिज्ञा के भरोसे प्रताप राव के लौट आने पर शिवाजी ने उसे कई खरी बातें कहीं, जिससे उस वीर को अत्यन्त मानसिक कष्ट हुआ ही था कि बहलोल अपना वचन तोड़ कर फिर नई सेना लेकर आ पहुँचा। प्रतापराव ने रणनीति को छप्पर पर डाल कर एकदम बहलोल पर धावा कर दिया और यह भी न देखा कि उसके साथ केवल आधे दर्जन ही सवार आ रहे हैं। वह वीर मारा गया और मराठी सेना सहकारी सेनापति आनंदराव के उत्साहित करने से लड़ती भिड़ती लौट आई।

हंबीरराव हंसा जी मोहिते ने बहलोल की जागीर लूट ली और उसे परास्त कर भगा दिया। इसी वर्ष शिवाजी ने दिलेर खाँ को भी परास्त किया, जिसमें उसके एक सहस्र पठान मारे

गए । खैबर के अफ़ग़ानों तथा सतनामियों के विद्रोह हो जाने से औरंगज़ेब हसन अब्दाल चला गया और दक्षिण की चढ़ाइयों पर वह विशेष ध्यान न दे सका । शिवाजी ने भी यह अवसर उत्तम समझ कर अपने राज्याभिषेक का प्रबन्ध किया । इस उत्सव के विषय में संक्षेपतः यहाँ इतना ही लिखना बहुत है कि काशी के सुप्रसिद्ध विद्वान गागा भट्ट के आचार्यत्व में ज्येष्ठ शुक्ल १३ सं० १७३१ वि० सं० १५९६ शाके (६ जून सन् १६७४) को शिवाजी का राज्याभिषेक कुशलपूर्वक बड़े समारोह के साथ समाप्त हो गया ।

शिवाजी ने राज्याभिषेक रूपी यज्ञ की पूर्णाहुति के लिये मुग़ल सूबेदार बहादुर खाँ के कोष ही को लूटना निश्चय किया और इसलिये दो सहस्र सेना इस प्रकार भेजी कि जब बहादुर खाँ उसका पीछा करते हुए दूर निकल गया तब शिवाजी सात सहस्र सवारों के साथ उसके पड़ाव पर आ गिरे और एक करोड़ रुपये से अधिक का माल लूट ले गए । इसके अनंतर औरंगाबाद के आस पास के कुछ नगरों को लूटते खानदेश और बगलाना गए । सं० १७३३ वि० में बहादुर खाँ ने बीजापुर पर चढ़ाई कर दिया, जिससे घबड़ा कर वहाँ के तत्कालीन प्रधान अमात्य बहलोल खाँ ने शिवाजी से संधि कर ली ।

अब शिवाजी ने कर्णाटक पर चढ़ाई करने का प्रबन्ध किया । मुग़ल प्रान्ताध्यक्ष बहादुर खाँ ने बीजापुर पर चढ़ाई करने के विचार से शिवाजी से संधि कर ली थी । बीजापुर राज्य में बड़ी अशांति थी । अफ़ग़ान सर्दार बहलोल खाँ ११ नवं० सन् १६७५ ई० (सं० १७३२) को बालक सिकंदर शाह को अपने अधिकार में कर अभिभावक बन गया और खवास खाँ को दो मास बाद मरवा डाला । दक्षिणी मुसलमानों के सर्दारगण बिगड़ गए

और दोनों पक्ष वाले लड़ने लगे। इस प्रकार यह राज्य शिवाजी के इस कार्य में रुकावट डालने योग्य नहीं रह गया था। गोलकुण्डा के प्रधान मंत्री मदन पंडित की मध्यस्थता में उस राज्य से संधि होगई। इसके अनंतर सत्तर सहस्र सैनिक लेकर शिवाजी ने यात्रा आरम्भ की और सं० १७३४ वि० में हैदराबाद पहुँचे जहाँ अब्दुल हसन कुतुबशाह ने इनका अच्छा सत्कार किया। यहाँ से यह कर्णाटक गए। जिंजी तथा उसके आस पास के स्थान सुगमता पूर्वक अधिकृत हो गये, पर त्रिनोमाला के अध्यक्ष शेरखाँ लोदी ने अच्छी लड़ाई की। उसका एक दुर्ग वेलोर चौदह महीने के घेरे पर टूटा। शेर खाँ परास्त होकर कुछ सवारों के साथ बावनी गिरि भाग गया था, जो तिरुवाड़ी से २२ मील दक्षिण वेलार नदी पर है। शिवाजी पीछा करते वहाँ पहुँचे। मधुरेश्वर से छ लाख हून लेकर अपने वैमात्रिक भाई व्यंको जी से मिलने त्रिपतूर गए। कोल-रून के दक्षिण का भाग व्यंको जी के लिये छोड़कर उसके उत्तर के सब भाग पर मराठों का अधिकार हो गया। इसके बाद कुछ तीर्थस्थानों की यात्रा करते हुए सं० १७३५ में शिवाजी पन्हाला पहुँच गये। इस चढ़ाई में विजय किये गए प्रान्त की वार्षिक आय वीस लाख थी और उसमें एक सौ दुर्ग थे।

औरंगज़ेब ने बहादुरखाँ के स्थान पर दिलेर खाँ को सेनापति नियुक्त किया, जिसने बीजापुर घेर लिया। बीजापुर के प्रधान अमात्य सीदी मसऊद ने शिवाजी से सहायता माँगी। इसी बीच शिवाजी के सुपुत्र शंभू जी, जो एक युवती से बलात्कार करने के कारण पन्हाला दुर्ग में कैद थे, भागकर दिलेर खाँ के पास चले गये। सं० १७३६ वि० में शिवाजी ने जज़िया के विरुद्ध औरंगज़ेब को एक पत्र लिखा था, जो शिवाजी से वीर ही के योग्य था। शिवाजी ने बीजापुर की सहायता के लिए कुछ सेना तथा बहुत सा सामान

वहाँ भेजा और दो सेनाएँ मुगल राज्य में लूट मार करने को भेजीं। अंत में दिलेर खाँ बीजापुर न ले सकने पर लौटा और पशुओं की तरह बीजापुर तथा शिवाजी के राज्य के ग्रामों को नष्ट करता तथा ग्रामवासियों को मारता हुआ आथनी पहुँचा, जहाँ उसने बहुत से हिंदू कैदियों को बेंच डाला। इसी बीच शंभू जी दिलेर खाँ के कैंप से भागकर फिर अपने पिता के पास पहुँच गए।

सं० १७३६ वि० में शिवाजी की सेना की कई टुकड़ियाँ मुग़ल सेना से पराजित हो चुकी थीं और दिलेर खाँ पन्हाला दुर्ग लेने के प्रयत्न में लगा था, इस लिए इन्होंने पन्हाला दुर्ग को अजेय करने के लिए बहुत सी तोपें तथा सामान भेज कर उसे पूरी तरह सज्जित कर दिया। इसके उपरांत लगभग तीस सहस्र सेना लेकर राजापुर लूटते बुर्हानपुर गए। वहाँ से पश्चिमी खानदेश होते हुए बालाघाट में जालना तक लूटा। यहाँ से लौटते समय मुग़ल सेना ने, जो शाहजादा मुअज़्ज़म के साथ आई थी, इनका पीछा किया और यह लड़ते भिड़ते पन्हाला दुर्ग लौट गए।

यहीं चैत शुक्ल १५ सं० १७३७ वि० (५ अप्रैल सन् १६८० ई०) रविवार को दोपहर के समय शिवाजी वीरलोक को सिधारे।

शंभा जी

(१७१४—१७४६)

इनके संबंध में भूषण ने केवल एक छंद कहा है, जिसका भाव इतना ही है कि दिल्ली के मुसलमान सर्दारगण अनेक पक्षियों के समान हैं और शंभा जी सितारे में बैठे हुए उनका शिकार खेलते थे। सं० १७१४ वि० में शंभा जी का जन्म हुआ था और यह सं० १७३७

वि० में २३ वर्ष की अवस्था में गद्दी पर बैठे। इनकी राजगद्दी घरेलू षड्यंत्र के कारण माघ शुक्ल १० शक १६०२ को हुई थी। इस उत्सव के अनंतर शंभा जी ने बड़ी वीरता से दक्षिण के सूबेदार ख़ानजहाँ बहादुर खाँ कोका के रहते हुए खानदेश की राजधानी बुर्हानपुर को लूट लिया। इस समाचार से औरंगज़ेब ने बहुत क्रुद्ध होकर स्वयं दक्षिण की यात्रा करने का निश्चय किया। इसी समय एक ऐसा और कारण भी उत्पन्न हो गया, जिससे उसे दक्षिण जाना ही पड़ा। मारवाड़नरेश यशवंतसिंह की मृत्यु हो जाने पर औरंगज़ेब ने उस राज्य को खालसा करने का प्रयत्न किया, पर असफल रहा। सिसौदियों तथा राठौरों ने कुछ दिन के लिए फूट देवी पर अश्रद्धा दिखलाई और मिलकर मुग़लों तथा अपने स्वजातीय शत्रुओं का ऐसा सामना किया कि उनका राज्य बच गया, नहीं तो आज स्यात् राजस्थान राजस्थान न रह जाता। इसी युद्ध में औरंगज़ेब के एक पुत्र अकबर को राजपूतों ने पिता के विरुद्ध उभाड़ा, पर कुछ फल न निकला। अंत में अकबर वहाँ से भागकर सं० १७३८ वि० में शंभा जी के शरण में दक्षिण चला गया। औरंगज़ेब ने यह समाचार पाकर राजपूतों से संधि कर ली और सेनासहित दक्षिण की ओर प्रस्थान कर दिया, जहाँ से वह फिर न लौटा।

इधर पोर्चुगीज़ मुग़ल बादशाह से संधि कर रहे थे, जो मराठा राज्य के लिए अत्यंत हानिकारक होता। इस लिए शंभा जी ने गोआ पर अधिकार करने के लिए तैयारी की। सं० १७४०—१७४१ वि० में मराठों और पुर्तगीज़ों में कई लड़ाई हुई और मराठों ने उनके कई स्थान ले लिए। गोआ पर भी शंभा जी का अधिकार हो चुका ही था कि शाह आलम के अधीन मुग़ल सेना ने पहुँच कर उसमें बाधा डाल दी और मराठी सेना असफल लौट गई।

उसने भी मुग़ल सेना को इस प्रकार घेरा कि वह भी बहुत हानि उठाकर तथा दूसरी मुग़ल सेना और बेड़ा की सहायता लेकर अहमदनगर पहुँच सकी। इसके अनंतर शंभा जी पर कवि कलश जी का प्रभुत्व बढ़ने लगा, जिसे मराऊ षड्यंत्र ने ऐसा करने का बार बार अवसर दिया था। इसके अनंतर मराठों तथा मुग़लों में कई युद्ध हुए और कभी एक पक्ष तथा कभी दूसरा पक्ष विजय प्राप्त करता था। अंत में औरंगज़ेब ने मराठों को छोड़कर बीजापुर तथा गोलकुंडा को पहिले विजय करना निश्चय किया और अपनी पूर्ण शक्ति बीजापुर राज्य पर भेजी।

सं० १७४२ वि० में बीजापुर-मुग़ल युद्ध आरंभ हुआ। इसी वर्ष शंभा जी ने भड़ोंच विजय किया। इन्होंने तथा गोलकुंडा के सुलतान ने भी बीजापुर को बराबर सहायता दी, पर अंततः सं० १७४३ वि० में इस राज्य का अंत हो गया। इसका अंतिम सुलतान सिकंदर शाह बत्तीस वर्ष की अवस्था में सं० १७०० ई० में मर गया।

औरंगजेब ने इसके बाद पहिले शंभा जी से संधि कर ली, जो कवि कलश द्वारा प्रस्तुत किए गए मदिरा तथा मदिरेक्षिणियों के पाश में पूर्ण रूप से फँस चला था। बादशाह की दृष्टि अब गोलकुंडा की ओर फिरी और उसके सुलतान अबूहसन से संधि रहने के कारण उससे आज्ञा लेकर गुलबर्गा के सैयद गेसू के मज़ार का दर्शन करने के लिए गया, पर वहाँ से सेना लेकर सीधे गोलकुंडा पर चढ़ दौड़ा। सं० १७४५ वि० में आठ महीने के घेरे पर धोखे से इस दुर्ग पर मुग़लों का अधिकार हो गया और इस राज्य का भी अंत हो गया।

इस प्रकार इन दो मुसलमान राज्यों का अंत कर औरंगज़ेब अब मराठों को दमन करने का प्रबंध करने लगा। मराठी सेना ने इस बीच इन दो राज्यों के बहुत से अंश पर अधिकार कर लिया था, जिससे बादशाह उन पर और भी क्रुद्ध था। सं० १७४५ वि० में इसने एक सेना कर्णाटक की ओर तथा दूसरी रायगढ़ घेरने को भेजा। शेख निज़ाम हैदराबादी अपने पुत्र इख़्लास खाँ के साथ पन्हाला घेरने के लिए भेजा गया, पर मार्ग में उसे शंभा जी के संगमेश्वर में रहने की सूचना मिली। यह बड़ी फुर्ती से इस ओर बढ़ा, जहाँ शंभा जी बार बार चरों से सचेत किए जाने पर भी मदिरापानादि में इतने रत थे कि किसी का कुछ ध्यान न किया। अंत में २८ दिसंबर सन् १६८८ ई० को यह पकड़े गए और ढाई महीने बाद कलश आदि के साथ मारे गए।

यह भी अपने पिता के समान हिंदी कविता करते थे और नखशिख तथा नायिकाभेद की दो पुस्तकें इनकी लिखी सुनी जाती हैं। कवियों को आश्रय भी देते थे।

शिवाजी द्वितीय उपनाम साहू

(१७३८—१८०४)

सं० १७४६ वि० में अपने पिता शंभा जी के मारे जाने पर यह राजा हुए और इनके पितृव्य राजाराम अभिभावक हुए। इसके बाद ही मराठी सेना ने संता जी घोरपदे की अधीनता में तूलापुर के पास मुग़ल बादशाह के पड़ाव पर छापा डाला। संता जी धूर्तता से अपने को मुग़लों ही का एक मराठा सर्दार बतलाते हुये उस पड़ाव के भीतर चले गये और बादशाही खेमे को

नष्ट भ्रष्ट कर उसके भीतर के सब आदमियों को मार डाला। औरंगज़ेब कहीं अन्यत्र सोया हुआ था, इसलिये बच गया। उसी वर्ष के अंत में रायगढ़ पर मुग़लों ने सूर्या जी पिसल को मिलाकर अधिकार कर लिया और शिवाजी अपनी माता येशूबाई के साथ पकड़े गये। औरंगज़ेब ने इन दोनों को अपनी पुत्री ज़ीनतुन्निसा को सौंप दिया और शिवाजी के नाम को बदलकर साहू रख दिया।

सं० १७६४ वि० के अंत में बहादुर शाह ने साहू को कैद से छोड़ दिया और उसे दक्षिण भेजा। यह राजाराम की रानी ताराबाई से कई लड़ाइयाँ लड़ कर सितारा के राजा बन बैठे, पर यह षड्यंत्र कई वर्षों तक चलता रहा। इसी समय बाला जी विश्वनाथ ने क्रमशः प्रसिद्धि प्राप्त करना आरम्भ किया और इन षड्यंत्रों से निर्बल हुए मराठा राज्य का पुनरुद्धार किया। सं० १७७७ वि० में इनकी मृत्यु होने पर साहू ने इनके पुत्र बाजीराव को पेशवा बनाया। उस समय इनके भाई चिमना जी बारह वर्ष के थे। इनकी सफलताओं ने पेशवा की पदवी परंपरा के लिए इन्हींके वंश में निश्चित कर दिया। बाजीराव ने सं० १७८५ वि० में निज़ाम को अच्छी प्रकार पराजित कर दिया। इन्होंने पूना को अपना प्रधान स्थल बनाया, जो पेशवाओं की साहू की मृत्यु पर राजधानी कहलाई। सं० १७९० वि० में मुहम्मद खाँ बंगश ने बुंदेलखंड पर चढ़ाई कर छत्रसाल के राज्य पर अधिकार कर लिया। छत्रसाल के सहायता माँगने पर बाजीराव ससैन्य वहाँ पहुँचे और बंगश को पूर्णतया परास्त कर भगा दिया। इसके बाद बाजीराव ने मालवा तथा गुजरात पर अधिकार कर लिया। सं० १७९४ वि० में बाजीराव दिल्ली पहुँच कर उसके आस पास के ग्रामों को लूटते हुए लौट आये। इसी वर्ष के

अंत में बाजीराव ने निज़ाम के सेनापतित्व में युद्धार्थ तैयार मुग़ल सेना को भूपाल के पास परास्त कर भगा दिया। सं० १७९७ वि० में बाजीराव ने हैदराबाद के निज़ाम नासिरजंग को परास्त किया। इसी वर्ष इनकी मृत्यु हो गई तब इनके पुत्र बाला जी बाजीराव तृतीय पेशवा हुए। सं० १८०४ वि० में साहू जी की मृत्यु होगई। यह निस्संतान थे इसलिये राजाराम के पौत्र रामराजा गद्दी पर बैठे।

स्फुट पद-संग्रह में दो पद इनकी प्रशंसा में दिये गये हैं, जिनमें एक तो इनके राज्य के आरंभिक काल का ज्ञात होता है। भूषण कहते हैं कि 'साहू जी की साहिबी दिखात कछु होनहार'। दूसरे में साहू के आतंक का वर्णन मात्र है। छत्रसाल दशक में छत्र-साल की प्रशंसा करते हुये कहा है कि 'और राव राजा एक मन में न लाऊँ अब साहू को सराहौं कै सराहौं छत्रसाल को', इससे यह मालूम होता है कि भूषण ने साहू के राजा होने पर ये कविताएँ की थीं।

पन्नानरेश महाराज छत्रसाल

(१७०६—१७९०)

ओड़छा राज्य के संस्थापक महाराज प्रतापरुद्र के बारह पुत्र थे जिनमें प्रथम दो भारतीचंद्र तथा मधुकर साह क्रमशः अपने पैतृक राज्य के अधिकारी हुए। तृतीय पुत्र उदयाजित को महेवा की जागीर मिली। इनकी चौथी पीढ़ी में चंपतिराय हुए जिन्होंने मुग़लों से निरंतर युद्ध कर खालसा हुए ओड़छा राज्य को फिर से पहाड़सिंह को दिलवाया था। इसी कारण लाल कवि ने लिखा है।

प्रलय पयोधि उमंड में ज्यों गोकुल जदुराय।
त्यों बूड़त बुंदेल कुल राख्यो चंपतिराय॥

चंपतिराय के पाँच पुत्र थे—सारवाहन, अंगद राय, रत्नसाह, छत्रसाल और गोपाल राय। छत्रसाल का जन्म ज्येष्ठ शुक्ल ३ सं० १७०६ वि० को हुआ था। पिता की मृत्यु के समय इनकी अवस्था पंद्रह वर्ष की थी और यह अपने मामा साहबसिंह धंधेरे के यहाँ सहरा में रहते थे। वहाँ से यह पहिले अपने चाचा के यहाँ गए और वहाँ से भी कुछ दिन बाद अपने भाई अंगद राय के यहाँ देवगढ़ गए। उनकी सम्मति से यह बादशाही सेना में सम्मिलित हुये, पर आदर न होने से स्वतंत्रता-प्रिय छत्रसाल ने मुग़लों से युद्ध करना ही निश्चय किया और सं० १७२७ वि० में यह छत्रपति महाराज शिवाजी से मिले। उनके उत्साह-वर्धक वचनों को सुन कर दृढ़प्रतिज्ञ हो यह अपनी जन्मभूमि को लौट आये और मुग़लों से युद्ध करने का प्रबन्ध करने लगे। कई बुंदेले सरदार धीरे धीरे इनसे मिल गये और सं० १७२८ वि० तक इन्होंने कई युद्धों में विजय प्राप्त कर अपना आतंक बुंदेलखण्ड में पूर्णतया जमा दिया। कई स्थानों पर इन्होंने अपना आधिपत्य भी जमा लिया। महम्मद अमीन खाँ की रक्षा में दक्षिण से जाते हुए कोष को इन्होंने लूट लिया। इन्होंने सं० १७३७ वि० में औरंगज़ेब के भेजे हुये सर्दार तहव्वर खाँ को पराजित किया और अनवर खाँ, सदरुद्दीन तथा हामिद खाँ आदि के सेनापतित्व में आई हुई सेनाओं को भी परास्त कर दिया। तब सं० १७४६ वि० में अब्दु-स्समद खाँ की अधीनता में एक भारी मुग़ल-वाहिनी इन पर आई, पर इन्होंने उसे बेतवा नदी के किनारे नष्ट कर बहा दिया। इसके अनंतर सं० १७५८-६१ वि० के बीच में मुराद खाँ, दलेल खाँ, सैद अफ़ग़ान तथा शाह कुली खाँ को परास्त किया। इस

प्रकार अनेक विजय प्राप्त कर छत्रसाल ने अपना प्रभुत्व सारे बुंदेलखण्ड पर स्थापित कर दिया और सं० १७६५ वि० में बहादुर शाह ने भी इन्हें इनके स्वअर्जित राज्य का राजा स्वीकार कर लिया।

मुग़ल-साम्राज्य का अवनतिकाल आरम्भ होगया था और मुग़ल सरदारगण अपने अपने अधीनस्थ सूबों में अपना राज्य स्थापित करने में लगे थे। इसी प्रकार के एक फौजदार मुहम्मद खाँ बंगश ने फर्रुख़ाबाद में अपनी नवाबी जमाली थी और पास के बुंदेलखंड पर अपना प्रभुत्व जमाने के लिये सं० १७८६ वि० में अस्सी सहस्र सेना के साथ वहाँ पहुँचा। छत्रसाल ने बाजीराव पेशवा की सहाया से इसे परास्त कर भगा दिया। इसके बदले इन्होंने पेशवा को अपने राज्य का तृतीयांश दे दिया। सं० १७९० वि० में इनकी मृत्यु हुई। इनके बड़े पुत्र हृदयशाह पन्ना के तथा द्वितीय पुत्र जगतराज जैतपुरा के राजा हुये।

छत्रसाल स्वयं कवि थे और सुकवियों के आश्रयदाता भी थे। ऐसे ही वीर पुरुष की भूषण ने 'साहू को सराहौं कि सराहौं छत्रसाल को' कह कर प्रशंसा की है।

'हृदयराम सुतरुद्र'

शिवराज-भूषण के पद २८ से ज्ञात होता है कि 'साहस-शील-समुद्र चित्रकूट-पति हृदयराम सुत रुद्र सोलंकी ने भूषण पदवी दी'। 'तिनमें आयो एक कवि भूषन कहियत ताहि' से यह भी स्पष्ट है कि यह पदवी इन्हें शिवाजी के दरबार में पहुँचने के पहिले प्राप्त हुई थी। जैसा अन्यत्र लिखा जा चुका है, यह सं०

१६२४ वि० के आस पास शिवाजी के दरबार में गए थे, इससे यह पदवी इन्हें इसके पहिले अवश्य मिली होगी।

इसके सिवा स्फुट पदों के ३२ वें छंद में 'सुलंकी के पयान ते' कुछ प्रलय के चिन्ह से उत्पन्न होने का उल्लेख है। यही सुलंकी शब्द ऊपर के पद २८ में भी आ चुका है और इस कारण भूषण उपाधि देने वाले 'कलाँ' भूप की जीवनी पर कुछ विशेष प्रकाश नहीं डालता। इन दो के सिवा कवि जी ने अपने इस प्रथम आश्रयदाता के विषय में कुछ भी नहीं लिखा है और प्रत्येक पद में किसी घटना का आभास देने की जो इनकी विशेषता बतलाई जाती है वह ३२ वें छंद में कहीं दृष्टिगोचर भी नहीं होती। अब केवल अनुमान लड़ाना मात्र है। यह कोई साधारण राजा या बबुआने में से रहे होंगे, क्योंकि इस छंद में सेना का भी उल्लेख नहीं है, केवल एक सजे हुए घोड़े पर सवारी का प्रयाण होना कहा गया है। दूसरे भूषण जी के विषय में जो कि किंवदंतियाँ प्रचलित हैं उनसे यह ज्ञात होता है कि इनका मिज़ाज ऊँचा था और साधारण सत्कार से यह प्रसन्न नहीं होते थे। यह आश्रय-दाता महाशय इन्हें स्यात् केवल कोरी उपाधि देकर ही संतुष्ट रखना चाहते रहे होंगे, इससे इनके यहाँ विशेष समय न बिताकर तथा शिवाजी की प्रसिद्धि सुनकर यह उस ओर चल दिए होंगे। 'भूषण' उपाधि इनके मन की थी इससे उसे ग्रहण करने और उसके दाता का उल्लेख कर देना इन्होंने उचित समझा। सुभाषित रत्नभांडागारम् में पृ० १२७ पर 'रुद्र' राजा की प्रशंसा में पाँच श्लोक दिए गए हैं, पर उनसे भी तथ्य निर्णय के लिए कोई आधार नहीं मिलता।

रीवाँ का बघेला राजवंश सोलंकी है और इनके बबुआने में बर्दी के एक बाबू रुद्रशाह हो गए हैं जिनके पिता का नाम हरिहर

शाह था। रीवाँ गज़ेटिअर पृ० ८० से एक उद्धरण दिया जाकर यह दिखलाया गया है कि हरिहर शाह के छोटे भाई रुद्रसाह को वर्दी तहसील में बिजौरा इलाका मिला था, जिनके तीसरी पीढ़ी में मयूरशाह हुए। इन्होंने वर्दी को अपनी राजधानी बनाया। इनके सिवा एक दूसरे सोलंकी हृदयराम के पुत्र रुद्रराम का नाम भी लिया जाता है, जो गहोरा के अधिपति कहे जाते हैं। इन दोनों ही का समय निश्चित नहीं है और न किसी प्रकार यही निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि इन्हींमें से किसी ने भूषण उपाधि कवि को दी थी। अस्तु, जब तक किसी विद्वान् अन्वेषक द्वारा ऐसे निश्चित 'हृदयराम सुत रुद्र' खोज न निकाले जायँ तब तक इस विषय पर तर्क करना कुतर्क मात्र होगा।

छत्रसाल तथा बुद्धसिंह हाड़ा

रावरत्न के पौत्र छत्रसाल का राज्यकाल (सं० १६८८ से सं० १७१४ वि०) तक है। इनके विषय में छत्रसाल दशक में दो दोहे आरंभ में दिए गए हैं, जिनमें इनकी प्रशंसा के साथ मुग़ल सम्राट् की अधीनता स्वीकार करने से इन पर कुछ आक्षेप सा किया है। इसके सिवा इनके विषय में भूषण ने और कुछ नहीं कहा है। इनके पुत्र भाऊसिंह सं० १७१४ वि० में गद्दी पर बैठे और सं० १७३४ वि० में इनकी मृत्यु हुई। इनके शिवाजी द्वारा पराजित होने तथा इनके जीवन की कई घटनाओं का भूषण ने उल्लेख किया है, पर इनकी प्रशंसा कहीं नहीं की है। भाऊसिंह के पुत्र नहीं थे, इसलिये इनके भाई भगवन्तसिंह के पौत्र तथा कृष्णसिंह के पुत्र अनिरुद्धसिंह गद्दी पर बैठे। औरंगज़ेब के दक्षिण जाने पर उत्तर में उसके प्रतिनिधि शाहआलम के अधीन कार्य करते

समय इनकी मृत्यु हो गई। इनके पुत्र राव बुद्धसिंह बूँदी के अधिपति हुए, जिनकी प्रशंसा में भूषण ने दो पद कहे हैं जो स्फुट संग्रह में ३३ तथा ३६ संख्या पर दिए गए हैं।

एक में 'राव बुद्ध के तेग' की प्रशंसा है और दूसरे में 'बुद्ध' की सेना के प्रयाण का वर्णन है। किसी में भी बुद्धसिंह के राव-राजा पदवी का उल्लेख नहीं है। औरंगज़ेब की मृत्यु के पहिले ही यह बूँदी के राजा हो चुके थे और उसकी मृत्यु के समय इनका पूर्ण यौवनकाल था। सं० १७६४ वि० के जाजऊ युद्ध में इन्होंने औरंगज़ेब के सबसे बड़े पुत्र शाहआलम बहादुरशाह का पक्ष लिया था। इस विजय के उपलक्ष में इन्हें रावराजा की पदवी मिली थी। सं० १७६८ वि० में बहादुरशाह की मृत्यु पर जहाँदार शाह बादशाह हुआ। नौ महीने बादशाहत करने के बाद यह मारा गया। इसका भतीजा फ़र्रुख़सियर गद्दी पर बैठा और सं० १७७५ वि० में क़ैद किया गया। राव बुद्धसिंह इसी के राजत्व में इसकी दुर्दशा देखकर बूँदी चले गये। सैयदों से इनकी पटती नहीं थी, जिन्होंने फ़र्रुख़सियर को गद्दी पर बिठाया था और जिनके हाथ में सब अधिकार चला गया था। बूँदी जाने पर इनके कई शत्रुओं ने मिल कर इनका राज्य भी छीन लिया और इसी अवस्था में इनका अंत भी हुआ। भूषण ने इनकी प्रशंसा इनके उन्नत अवस्था ही के समय की होगी। जहाँदार शाह की मृत्यु पर दिल्ली में इनका विशेष कुछ भी अधिकार नहीं रह गया था, इससे सं० १७६६ वि० के पहिले ही यह प्रशंसा की गई होगी। रावराजा * पदवी इनके लिए नई थी और यदि

* सम्राट् जहाँगीर ने रावरल हाड़ा को रावराजा तथा सर बुलंद राय की पदवियाँ दी थीं, जिसका उल्लेख इक़बाल-नामए जहाँगीरी में है।

भूषण जो उस उपाधि-प्राप्ति के बाद प्रशंसा करते तो अवश्य उसका उल्लेख करते, पर उन्होंने वैसा नहीं किया है। 'और रावराजा एक मन में न ल्याऊँ अब साहू को सराहौं कै सराहौं छत्रसाल को' में इन्हीं रावराजा से तात्पर्य लेना अनुचित मालूम होता है। राव तथा राजा अर्थ लेना ही समीचीन है। वाक्य-योजना से भी यही अर्थ ठीक ज्ञात होता है। पूर्वोक्त दो कवित्तों में एक में 'भूषण' उपनाम भी नहीं आया है और पं० मायाशंकर याज्ञिक बी० ए० की सम्मति में यह लाल कलानिधि कृत है। अब केवल एक कवित्त रह गया सो भी स्फुट संग्रह ही में है। इसमें 'भूषण' उपनाम दिया है, पर यह अवश्य भूषणकृत है यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता।

जयपुर नरेशगण

भूषण ने जयपुर राजवंश के पाँच पीढ़ियों का उल्लेख स्फुट छंद ४० में किया है। इसका भाव यह है कि 'अकबर ने भगवंत सिंह के पुत्र (राजा मानसिंह), से तथा उनके पुत्र जगतसिंह से मान पाया था। उसी प्रकार जहाँगीर ने महासिंह जी से और शाहजहाँ ने प्रसिद्ध जयसिंह से प्रतिष्ठा पाई। अब औरंगज़ेब ने रामसिंह जी से पाया है और आगे भी बराबर कूर्मवंशीय राजाओं को मानने से प्रतिष्ठा पाता रहेगा। अर्थात् जब और राजे राय आदि बादशाह से प्रतिष्ठा प्राप्त करते हैं, तब बादशाह मानसिंह के घराने से प्रतिष्ठा पाते हैं।' इस पद के पढ़ने से यह स्पष्ट मालूम

(देखिए मआसिरुल् उमरा फा० भा० २ पृ० २०८६) अकबर ने यह पदवी रावसुर्जन को पहिले पहिल प्रदान की थी।

हो जाता है कि भूषण रामसिंह जी की प्रशंसा कर रहे हैं। पायो भूतकाल, अब वर्तमान काल तथा पैहैं भविष्य काल बतला रहा है।

७ स्फुट संग्रह छंद ४२ में 'भूपाल जयसिंह' का वर्णन है। यह मिर्जाराजा जयसिंह प्रथम हैं या मिर्जाराजा सवाई जयसिंह द्वितीय हैं, इसमें कुछ सज्जनों का मतभेद है। सम्राट् अकबर ने मिर्जाराजा की पदवी राजा मानसिंह की वंशपरम्परा के लिये दी थी और उनके बाद के सभी राजे इस उपाधि को धारण करते रहे हैं। सवाई पदवी स्वयं जयसिंह द्वितीय को मिली थी। इस लिए इस छंद में प्रथम उपाधि का न रहना जयसिंह प्रथम के मानने में आपत्ति नहीं करता; प्रत्युत् द्वितीय उपाधि का न रहना दूसरे जयसिंह मानने में शंका अवश्य उत्पन्न करता है। इस छंद में दोनों उपाधियाँ नहीं हैं। इसका कारण भूषण का राष्ट्रवादी होना कहा गया है, पर यह भी भूल है। मिर्ज़ा, सवाई, शरजा, गाज़ी आदि मुसलमानों द्वारा दी गई, या जान बूझ कर अपहरण की गई उपाधियाँ भूषण द्वारा बराबर प्रयुक्त हुई हैं। शाह शब्द फारसी हो पर साह शब्द फारसी नहीं है। उस पर भूषण ने फारसी 'शाह' शब्द का भी अनेकों बार प्रयोग किया है। शिवा जी के पिता शाह जी का नाम मुसलमान फक़ीर का द्योतक ही है, क्योंकि इनका जन्म शाह जी ही की दुआ से हुआ माना गया था। भाऊसिंह को 'भाऊ ख़ान' तक बना डाला गया है। अस्तु, तात्पर्य यही है कि कम से कम इस छंद से यह मान लिया जा सकता है कि यह किसी जयसिंह के विषय में कहा गया है, पर जयसिंह द्वितीय की ही इसमें प्रशंसा है यह किसी प्रकार इससे प्रमाणित नहीं होता और न ऐसा किसी ने किया ही है।

शिवराज भूषण के छंद २१२—२१३ में 'मिर्ज़ा जयसाह' के

परास्त होने पर शिवाजी द्वारा दुर्गों के दिए जाने का उल्लेख किया गया है। इन दो छंदों तथा पूर्वोक्त दो छंदों में से प्रथम में स्पष्टतः जयसिंह प्रथम ही का वर्णन है। इनमें एक में मिर्ज़ा उपाधि भी दी गई है और 'सवाई' उपाधि भी भूषण ने शिवाजी के लिए एक बार छंद २२१ में प्रयुक्त किया है, अर्थात् उन्होंने इस शब्द को विदेशीय द्वारा दिए जाने के कारण बायकाट भी नहीं किया है। इस प्रकार यही निश्चित है कि भूषण ने जयसिंह प्रथम ही के विषय में कविता की है। इन प्रसिद्ध नरेशों का संक्षिप्ततम परिचय परिशिष्ट च में दिया गया है।

यदि तर्क के लिए एक छंद में जयसिंह द्वितीय भी मान लिए जायँ तो भी भूषण के समय निश्चय करने में कोई हानि नहीं होती। रामसिंह की मृत्यु पर विष्णुसिंह गद्दी पर बैठे, पर इनकी भी शीघ्र ही मृत्यु हो गई। सं० १७५५ वि० में जयसिंह द्वितीय गद्दी पर बैठे। इन्होंने मालवा का सूबा बाजीराव को दिया था। इन्होंने टॉड के अनुसार पचपन वर्ष राज्य किया था, पर प्रो० सर्कार ने इनकी मृत्यु सन् १७४३ ई० में लिखी है।

बाजीराव

स्फुट संग्रह पद सं० ४८ में पन्नानरेश छत्रसाल को सहायता देने वाले बाजीराव की प्रशंसा की गई है। सं० १७९० वि० में यह घटना हुई थी। इस छंद में भूषण उपनाम नहीं आया है, इसलिए केवल इस छंद के कारण, जो संदिग्ध है, भूषण के समय को सं० १७९० तक खींच लाना ठीक नहीं है। छत्रसाल बुंदेला की प्रशंसा में जितने छंद कहे गए हैं, उनमें से किसी में भी बंगश की

चढ़ाई तथा मराठों की सहायता से उसके पराभव का उल्लेख नहीं हुआ है।

शंभा जी की प्रशंसा में कहे गए एक कवित्त की (स्फु० सं० पद २८) अंतिम पंक्ति यों है—

वाजी सब वाज़ से चपेटैं चंग चहूँ ओर,
तीतर तुरुक दिल्ली भीतर बचैं नहीं।

इसका पाठान्तर बतलाया जाता है कि 'वाजी सब' के स्थान पर 'वाजीराव' होना चाहिए। पर इसके साथ तीसरी पंक्ति का भी कुछ पाठान्तर होना चाहिए, नहीं तो वास्तव में कुल पद ही निरर्थक हो जाता है। वह पंक्ति यों है—

भूषन जू खेलत सितारे में सिकार संभा,
सिवा को सुवन जाते दुवन सँचै नहीं।

शिवाजी के पुत्र शंभा जी के समय वाजीराव का जन्म भी नहीं हुआ था। शंभा जी के मारे जाने के आठ वर्ष बाद उनका जन्म हुआ था। इसलिए 'राव' के स्थान पर 'सब' ठीक तथा सार्थक है और इसमें वाजीराव की प्रशंसा नहीं की गई है।

साहू की प्रशंसा में कहे गए छं० ३० (स्फु०सं०) में सिंधप्रांत के सक्खर तथा वक्खर तक, मालवा के सिरौंज तथा दिल्ली तक मराठी सेना के पहुँचने का वर्णन किया गया है। साहू वास्तव में अपनी राजधानी में रहा करते थे और केवल एक बार छोड़ कर नाम मात्र के लिए भी कभी किसी लड़ाई पर नहीं गए। इनके सेनापतिगण ही बराबर भेजे जाते थे। यह सं० १७६४ में गद्दी पर बैठे थे और वाजीराव सं० १७७७ वि० में द्वितीय पेशवा हुए थे। इसके पहिले इनके पिता बाला जी विश्वनाथ पेशवा थे। उनके समय में खंडेराव दाभदे ने, जो साहू जी के एक सेनापति थे, गुजरात पर अधिकार कर लिया था और यह मुग़ल सेनाओं को परास्त कर

भगा देते थे। इनकी सेनाएँ सिंध में भी लूट मचाती रहती थीं। सं० १७७५ में बाला जी विश्वनाथ ससैन्य हुसेन अली खाँ के साथ मालवा होते दिल्ली गए और अपने अनुकूल संधिपत्र पर बादशाही हस्ताक्षर करा लाए थे। इस प्रकार इस छंद से भी बाजीराव ही की दिल्ली पर की चढ़ाई का वर्णन नहीं प्रकट होता, क्योंकि उसके पहिले की चढ़ाई का वर्णन भी हो सकता है। उस छंद में केवल एक व्यक्ति का नाम आया है, जो इन दोनों पिता-पुत्र के लिए समान रूपेण स्वामी था।

तात्पर्य यह है कि पूर्वोक्त विचारों से यही स्पष्ट होता है कि भूषण ने बाजीराव द्वितीय के लिये कविता नहीं की थी। जब तक भूषण की और रचनाएँ इनका स्पष्ट उल्लेख करते हुए न प्राप्त हों तब तक के लिए यही धारणा ठीक है।

दाराशाह तथा औरंगज़ेब

स्फुट-संग्रह में तीन पद ३७,३८ तथा ४१ संख्याओं पर दिए गए हैं, जिनमें प्रथम दो में औरंगज़ेब पर सत्य कटाक्ष किए गए हैं और तीसरे में दाराशाह की सेना का वर्णन है। प्रथम दो में दारा का उल्लेख किया गया है। तीसरे में दाराशाह के पहिले जहाँ शब्द आया है जिसके मिला देने से जहाँ दाराशाह या जहाँदारशाह नाम निकलता है। यह जहाँदारशाह नौ महीने के लिए दिल्ली की गद्दी पर बैठा था। इसको गद्दी पर बिठाने वाला जुल्फिकार ख़ाँ था। इसने स्वयं एक युद्ध भी अपने जीवन में नहीं किया था। यह अत्यन्त लंपट था और राजकार्य कुछ भी नहीं देखता था। भूषण से कवि ने इसके लिए कविता कभी न की होगी। औरंगज़ेब की निंदा करते समय भूषण ने दारा के प्रति विशेष

सहानुभूति दिखलाई है और दारा शिकोह भी इस योग्य था। उसकी धार्मिक उदारता, शीलसौजन्य आदि गुण उसे इस प्रशंसा का पात्र बनाते हैं। इसके समय मुग़ल साम्राज्य अपनी पूर्ण उन्नत अवस्था में था और इसे कई भारी भारी सेनाओं की अध्यक्षता भी मिली थी। उक्त छंद में दाराशाह ही की प्रशंसा है।

अज्ञात आश्रयदातागण

स्फुट संग्रह के तीन पदों ३४,३६ और ४३ में तीन सज्जनों की प्रशंसा है। पहिले में 'अवधूतसिंह जा दिन दल साजि चढ़त ता दिन कमठ की पीठि पै पिठी सी बाँटियतु है'। यह अवधूत सिंह कौन हैं उसका इसमें कोई उल्लेख नहीं है और न इससे इनके जीवन की किसी विशिष्ट घटना की सूचना मिलती है। एक रीवाँनरेश अवधूतसिंह नाम के हो गए हैं, जिनका प्राप्त परिचय परिशिष्ट च में दिया गया है।

दूसरे में हाथियों की भूरि भूरि प्रशंसा की गई है और अंत में उन्हींका एक स्तुति वाक्य इस प्रकार दिया है कि 'गुंजरत कुंजर कुमाऊँ नरनाह के'। कुमाऊँ के राजवंश में एक ही राजा हुए ही नहीं थे कि इसमें उन्हींका उल्लेख मान लिया जाय। यह छंद उस राजवंश के सभी राजाओं के लिए समान रूप से कहा हुआ माना जा सकता है, इसलिए इस छंद के कर्ता का समय इससे निश्चित नहीं किया जा सकता है।

तीसरे में मेंडू के पौरचनरेश अमरेश जी के पुत्र अनिरुद्ध के यश का कीर्तन है। इन पिता पुत्र के विषय के कुछ निश्चित रूप से ज्ञात नहीं हो सका और इसलिए इनके संबंध में कुछ नहीं लिखा जा सकता।

इन तीनों छंदों के विषय में यह भी शंका होती है कि जिन भूषण ने यह गर्वोक्ति कही थी कि 'और राव राजा एक मन में न ल्याऊँ अब साहू को सराहौं कि सराहौं छत्रसाल को' क्या वे इस प्रकार के अज्ञात लोगों की प्रशंसा करते घूमते थे। जो हो, ये छंद संदिग्ध अवश्य हैं।

४–रचनायें

महाकवि भूषण की रचनाओं के नाम शिवसिंह सरोज आदि ग्रन्थों में इस प्रकार दिये हैं। (१) शिवराजभूषण (२) भूषण हजारा (३) भूषण उल्लास (४) दूषण उल्लास। केवल प्रथम पुस्तक प्रकाशित हो चुकी है तथा अन्य तीन अभी तक अप्राप्त हैं। अभी तक प्रकाशित भूषण ग्रन्थावलियों में शिवराजभूषण को छोड़ कर अन्य दो संग्रह शिवाबावनी तथा छत्रसाल दशक के नाम से प्रकाशित हुए हैं और इनके सिवा स्फुट पद भी लगभग पचास के संगृहीत हो चुके हैं। अब यह कहना कि ये दोनों संग्रह स्वतंत्र रचनायें हैं या किसी बड़े संग्रह के अंश मात्र हैं, कुछ कठिन है और जब तक पूर्वोल्लिखित अन्य ग्रन्थ प्राप्त न हों कोई सम्मति देना सारहीन ही है। भूषण से प्रतिभाशाली तथा दीर्घजीवी कवि के लिये उनकी प्राप्त कविता बहुत कम है और आशा है कि खोज से अन्य रचनाएँ भी उपलब्ध होकर इनके जीवन, तथा समय आदि पर प्रकाश डालती हुई हिन्दी साहित्य-भांडार को और भी समुज्ज्वल करेंगी। अब इनकी प्राप्त रचना पर विचार किया जायगा।

(१) शिवराज भूषण—भूषण जी का एक यही ग्रन्थ सम्पूर्ण प्राप्त है। यह अलंकार ग्रन्थ है। इसमें एक सौ नौ अलंकारों के लक्षण तथा उदाहरण दिए गए हैं, पर कवि ने स्वयं पद ३७१ से

३७६ तक जो अलंकारों की नामावली दी है उसमें एक सौ पाँच अलंकारों का नाम दिया है और लिखा भी है कि 'एक सत भूषन कहे अरु पाँच।' लुप्तोपमा, न्यून-अधिक रूपक तथा गम्योत्प्रेक्षा ये चार वर्णित हैं, पर सूची में उनका नाम नहीं आया है। वे भूषणकृत अवश्य हैं, जैसा कि लक्षण तथा उदाहरणों से ज्ञात होता है। स्यात् कवि ने उन्हें उपमा आदि प्रधान अलंकारों के अंतर्गत समझ कर उनका पृथक नाम नहीं दिया है। इस ग्रन्थ में जितने उदाहरण दिए गए हैं उनमें शिवाजी के जीवन की घटनाओं तथा उनके प्रभुत्व और आतंक ही का वर्णन पाया जाता है। इसी से कवि ने इस ग्रन्थ का यह नामकरण किया है। कवि लिखता ही है कि —

> शिव चरित्र लखि यों भयो कवि भूषण के चित्त।
> भाँति भाँति भूषननि सों भूषित करौं कवित्त॥
> सुकविन हूँ की कछु कृपा समुझि कविन को पंथ।
> भूषन भूषनमय करत शिव-भूषन सुभ ग्रन्थ॥

भूषण जी इस ग्रन्थ की रचना का कारण भी इन दोनों दोहों में यों लिखते हैं कि 'मेरे हृदय में शिवाजी के चरित्र को देख कर यह भाव उठा कि कवित्त को अनेक प्रकार के अलंकारों से सज्जित करूँ। इसलिए सुकवियों की कृपा से उन्हीं के मार्ग का अच्छी तरह मनन कर मैं शिवराज-भूषण नामक अलंकारमय ग्रन्थ बनाता हूँ।' इससे यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि भूषण जी ने शिवाजी के चरित्र को देख कर इस ग्रंथ के बनाने का विचार किया था। 'लखि' शब्द आँखों देखे वर्णन का द्योतक है, पर उससे यह ध्वनि नहीं निकल सकती कि जो कुछ वर्णित है सभी उन्होंने अपनी आँखों देख कर लिखा है। तात्पर्य केवल इतना ही है कि जिस प्रकार वे शिवाजी की प्रसिद्धि तथा यश सुन कर

उनके दरबार में आये थे उसी प्रकार वैसा ही उनका सुचरित्र देखकर उन्होंने इस ग्रंथ को शिवाजी के नाम पर बनाना उचित समझा था।

शिवराज-भूषण ग्रन्थ में प्रायः एक दर्जन घटनाओं का उल्लेख मिलता है, जिनमें किसी किसी पर आठ दस पद तक कहे गये हैं और किसी किसी का केवल एक पद में भी उल्लेख मात्र कर देना काफी समझा गया है। इन घटनाओं की एक तालिका नीचे दी जाती है, जिससे देखा जाता है कि ये घटनाएँ सं० १७१३ से सं० १७२६ तक (सन् १६५६ ई० से सन् १६७२ ई० तक) के बीच की हैं। साथ ही यह भी देखा जाता है कि इन घटनाओं का वर्णन क्रमबद्ध नहीं है और सं० १७२३ वि० में शिवाजी के दिल्ली से प्रत्यागमन के बाद से सं० १७२७ वि० तक की किसी घटना का उल्लेख नहीं मिलता। इस बीच परिशिष्ट ङ के अनुसार देखा जाता है शिवाजी भी अपने राज्य के दृढ़ करने में लगे थे और मुग़लों से संधि कर रखा था। सं० १७२७ ही से फिर युद्ध आरंभ हुआ है। शिवराज - भूषण अलंकार ग्रन्थ है, इतिहास ग्रंथ नहीं है इस लिये सूदन के सुजानचरित्र तथा लाल के छत्रप्रकाश सदृश क्रमबद्ध इतिहास या घटनावली का इसमें अन्वेषण करना बुद्धिमानी नहीं है। जिस समय भूषण जी इस ग्रंथ को लिखने बैठे थे 'उस समय सब अलंकारों में उपमा ही को उन्होंने उत्तम समझ कर उसीसे आरंभ किया था'। इसके उदाहरणों में भूषण ने सं० १७२७ वि० की या इसके पहिले की घटनाओं का उल्लेख किया है। कवि घटनाओं का वर्णन करना ही नहीं चाहता, वह उनके उल्लेख मात्र शिवाजी का यश कीर्तन करने के लिये करता है। जिन घटनाओं का इस ग्रंथ में उल्लेख हुआ है, उनकी तालिका इस प्रकार है—

सं०	घटना	पद-संख्या	विशेष सूचना
१	शाहजहाँ के चारों पुत्रों का राज्य के लिए युद्ध करना तथा दारा, शुजाअ और मुराद की हार।	२१७,३४, वा०	सं० १७१५ (सन् १६५८ ई०)
२	अफज़ल खाँ का मारा जाना, बारह सहस्र सवार सेना का पार तथा जावली के बीच प्रतापगढ़ के नीचे नष्ट होना।	४२,६३, ६६,३३७, २८वा०, ३१वा०, ११ स्फु०	सं० १७१६ (सन् १६५६ ई०)
३	परनाला दुर्ग विजय करना।	१०७,१७८, २०७,२५४, २८ वा०	सं० १७१७ (सन् १६६० ई०)
४	पूना में शायस्ता खाँ की दुर्दशा।	१८६,३२३, ३३७,२६ वा०	सं० १७२० (सन् १६६३ ई०)
५	सूरत की लूट—वर्णन से प्रथम लूट ही ज्ञात होती है।	२००,३३४, ३५४,७ स्फु०	सं० १७२१ (सन् १६६४ ई०)

सं०	घटना	पद-संख्या	विशेष सूचना
६	जयसिंह से हार कर गढ़ों के देने का उल्लेख।	२१२,२१३	सं० १७२२ (सन् १६६५ ई०)
७	शिवाजी का दिल्ली जाना और वहाँ से लौट आना।	३४,३८, ७६,१४८, १८६,१६८, २०४,२०६ ३०६,३१०, १४ वा०, १५ वा०,२ स्फु०,५७ स्फु०	सं० १७२३ (सन् १६६६ ई०)
८	सिंहगढ़ का ताना जी मालूसरे द्वारा लिया जाना और उदैभान राठौर का मारा जाना।	१००,२८५	सं० १७२७ (सन् १६७० ई०)
६	सल्हेर युद्ध—अमरसिंह का मारा जाना।	६७,१०३, १०७,२२५, २२६,२३६, २७५,२६२, ३३१,३५६, २४ वा०	सं० १७२८ (सन् १६७१ ई०)
१०	रामनगर, जवारि तथा रामगिरि का विजय होना।	१७३,२१३	सं० १७२६ (सन् १६७२ ई०)

इसके अनंतर यह भी देखना चाहिए कि जिन स्थानों का उल्लेख हुआ है, उनसे भी इस ग्रंथ के रचनाकाल के निर्धारण में कुछ सहायता मिलती है या नहीं। ऐतिहासिक तथ्य-निर्धारण में कवि-कल्पना मात्र से कुछ भी सहायता नहीं मिल सकती। केवल स्पष्ट उल्लेख ही ऐतिहासिक क्षेत्र में प्रमाण माने जा सकते हैं। एक बात जो मान्य हो चुकी है, चाहे वह किंवदंती ही के निर्बल आधार पर ही स्थित हो, उसे संदिग्ध या भ्रमपूर्ण या अशुद्ध प्रमाणित करने के लिए प्रबल तथा अकाट्य प्रमाण देना ही उचित है। खींचातानी करके अर्थ निकालने से प्रमाण निर्बल हो जाते हैं। अस्तु, छंद नं० ११२ में नौ स्थानों का उल्लेख है। कवि का भाव यही है कि, इन स्थानों के तथा 'जे पूरब पच्छिंह नरनाह ते' सभी दिल्लीपति के शरणागत हैं, ऐसे उस विजयी औरंगज़ेब को जीतने वाले शिवाजी अद्वितीय हैं। छंद १५९ में पाँच स्थानों का उल्लेख है और वही भाव है। छंद ११७ में ग्यारह स्थानों का नाम दिया है और १७३ में ६ का दिया गया है। दोनों ही में शिवाजी का आतंक-वर्णन मात्र अभिप्रेत है। आगरे-दिल्ली में कब बेगमों ने सिंदूर लगाया होगा और बलख रूम तक की सेना कब विचलित हो उठी होगी, इसे कवि की कल्पना-शक्ति का साधारण उड़ान समझिए। हबश देश तो दूसरे महाद्वीप अफ़्रीका में स्थित है। यह सब कथन अपने नायक के प्रभुत्व की अतिशयोक्ति मात्र हैं। छंद २०६ में पाँच स्थान का नाम देते हुए विषम अलंकार का उदाहरण रचित हुआ है। इसी प्रकार २०७ में परनाला तथा कर्णाटक का उल्लेख कर 'सुकुमार राजकुमारों को विकरार पहार' में दौड़ा कर विषमता लाई गई है। इसमें 'लै परनालो शिवा सरजा करनाटक लौं सब देस बिगूँचे।' पर यह तर्क है कि लौं=तक का प्रयोग कवि ने किस अर्थ में किया है, मर्यादा के

पार्थक्य या अभिविधि के संयुकता अर्थ में। इस छंदांश का अर्थ यह हुआ कि 'शिवाजी ने परनाला से लेकर कर्णाटक तक के सब देश विध्वंस कर दिए।' कर्णाटक कृष्णा नदी की घाटी से रासकुमारी तक फैला हुआ है। (भारत साम्राज्य का नया भूगोल, मोरिसन पृ० ११६) इसी नदी की दो सहायक नदियाँ घर्णा तथा हिरण्यकेशी के बीच में परनाला दुर्ग स्थित है। ये दोनों नदियाँ भी कृष्णा की प्रधान धारा के दक्षिण में हैं। प्रो० सरकार 'शिवाजी' के द्वितीय संस्करण पृ० २३७ पर लिखते हैं कि 'दक्षिण में शिवाजी की शक्ति सन् १६७३ ई० में पन्हाला तथा सन् १६७५ ई० में कोल्हापुर और पोंडा विजय कर लेने से दृढ़तापूर्वक स्थापित हो गई। इस प्रकार उनके राज्य की सीमा सन् १६७५ ई० में कोल्हापुर होकर पश्चिमी कर्णाटक या कनारा प्लेटो में दूर तक पहुँच गई थी।' वास्तव में परनाला या पन्हाला पश्चिमी कर्णाटक की सीमा के भीतर है। इसीलिए कवि कहता है कि शिवाजी ने पन्हाला दुर्ग लेकर कर्णाटक तक अपना राज्य फैलाया। यदि तक से कर्णाटक के विध्वंस होने का अर्थ भी लिया जाय तो यह भी ठीक है, क्योंकि पन्हाला उस प्रांत के अंतर्गत ही है। हाँ, समग्र कर्णाटक का अर्थ लिया जाय तो फिर सन् १६७७—८ ई० की प्रसिद्ध चढ़ाई का इस पद में उल्लेख समझना चाहिए, पर ऐसा समझने के लिए कोई विशेष कारण नहीं दिखलाई पड़ता। शिवराज-भूषण में ग्रन्थ की समाप्ति का समय एक दोहे में दिया है। उसमें दिन, तिथि, पक्ष, मास तथा संवत सभी दिए हैं, जिसकी जाँच की जा सकती है। 'सुचि' शब्द दो मास का द्योतक है—ज्येष्ठ तथा आषाढ़ का। सं० १७३० वि० अर्थात् सन् १६७३ ई० में यह ग्रंथ समाप्त हुआ है, इसलिए कर्णाटक की चढ़ाई का उल्लेख नहीं हो सकता। केवल 'लों' शब्द मात्र का एक अर्थ लेकर समय के दोहे को

अशुद्ध कहना अनुचित है जब कि दूसरा अर्थ सब प्रकार समीचीन है।

इस ग्रंथ के रचनाकाल अर्थात् समाप्ति का दोहा भूषण ने इस प्रकार दिया है—

सुभ सत्रह से तीस पर सुचि बदि तेरस भान।
भूषन शिवभूषन कियो पढ़ियो सकल सुजान॥

अभी तक 'सुचि' शब्द का अर्थ न समझ कर, इस दोहे में महीना नहीं दिया गया है ऐसा मान कर इस में दिए हुए समय की जांच नहीं हुई थी और इससे कुछ लोग इस दोहे ही को भूषण-कृत नहीं मानते थे, पर यह हठ मात्र था। यह भूषणकृत ही है क्योंकि उनका उपनाम भी इसमें दिया हुआ है और समय भी जाँच में ठीक उतरता है। ज्येष्ठ कृष्ण १३ सं० १९३० को रविवार ही था। उस दिन शकाब्द का वैसाख वदी १३ सं० १५९५ और खृष्टाब्द का ४ मई सन् १६७३ ई० था। यह जाँच भारत-सर्कार की ओर से मंदराज से प्रकाशित सहस्र वर्षीय बृहत् पंचांग देख कर किया गया है और इसे काशी नागरी-प्रचारिणी सभा के खोज विभाग के निरीक्षक रायबहादुर बा० हीरालाल बी० ए० ने किया है।

छंद २१३ में पाँच स्थानों का उल्लेख है, जो बीजापुर तथा गोलकुंडा राज्य में हैं। मिर्ज़ा जयसिंह से परास्त होकर शिवाजी ने अपने पैंतीस दुर्गों में से तेईस दुर्ग दिए थे इसका भी इसमें उल्लेख किया गया है। छं० २४६ में विकल्प करते हुए भूषण जी कहते हैं कि चाहे इन सात स्थानों में जाओ या इन तीन सुलतानों के यहाँ जाओ, पर मन चाहा तभी मिलेगा जब शिवाजी को प्रसन्न करोगे। यह तो अवश्य ठीक है कि भूषण ने प्रायः भारत के सभी

प्रसिद्ध आश्रयदाताओं ही का इस पद में उल्लेख किया होगा, पर इन सब ने उनको आश्रय दिया हो, यह कहना अशुद्ध है। इनमें केवल तीन की प्रशंसा में इनके कुछ छंद पाए जाते हैं, अन्य के लिए वह भी नहीं। कुमाऊँ नरनाह का नाम तक न देकर उनके हाथियों की अवश्य प्रशंसा की गई है। जोधपुर-नरेश तथा दिल्लीश पर तो आक्षेप ही किए गये हैं।

शिवराजभूषण पद २५६ में लोहगढ़ दुर्ग का इस प्रकार उल्लेख है 'गौर गरबीले अरबीले राठवर गह्यो लोहगढ़ सिंहगढ़ हिम्मति हरपते। भूषन भनत तहाँ सरजा सिवा तें चढ़ो राति के सहारे ते अराति अमरपते'। इस पद का भाव है कि घमंडी गौड़ तथा हठी राठौड़ ने बड़े साहस तथा प्रसन्नता से क्रमशः लोहगढ़ और सिंहगढ़ की अध्यक्षता ग्रहण कर ली थी, पर फल अंत में यही हुआ कि शत्रु पर क्रोध करके शिवाजी रात्रि के समय दोनों दुर्ग पर चढ़ गए अर्थात् विजय कर लिया। सिंहगढ़ विजय का इतिवृत्त प्रसिद्ध है और कई इतिहासों में उसका उल्लेख है। इस पर एक पोवाड़ भी लिखा हुआ प्राप्त है, पर लोहगढ़ विजय का वृत्त इतिहासों में विशेष रूप से नहीं मिलता। इसका वृत्तान्त न जान कर कुछ संपादकों ने इसका अर्थ लोहा गहा लगा लिया है। यह दुर्ग पहिले अहमदनगर के निज़ामशाही राज्य के अधीन था और इसमें प्रायः राजनैतिक क़ैदी रखे जाते थे। सन् १६४७ ई० में शिवाजी ने लोहगढ़, राजमाची आदि दुर्गों पर पहिली बार अधिकार कर लिया था जिसे सन् १६६५ ई० की संधि के समय मुग़ल सम्राट को तेईस दुर्गों के साथ दे दिया था। सन् १६७० ई० मुग़लों से पुनः युद्ध आरंभ होने पर इस पर शिवाजी ने दूसरी बार अधिकार कर लिया था। सिंहगढ़ का मुग़ल दुर्गाध्यक्ष उदयभानु राठौड़ था और भूषण के अनुसार लोहगढ़ का अध्यक्ष कोई गौड़ राजपूत वीर

रहा होगा। प्रो० सर्कार ने 'शिवाजी' पृ० १२५ पर दिलेर खाँ के साथ हरिभानु तथा उदयभानु गौड़ के होने का उल्लेख किया है, जब वह सन् १६६५ ई० में पुरंधर दुर्ग घेरे हुए था। इसी घेरे में राजा नरसिंह गौड़ और राजसिंह गौड़ भी उपस्थित थे। राजा विट्ठलदास गौड़ के भाई गिरिधरदास भी दक्षिण में नियुक्त थे और उन्हीं के भ्रातृष्पुत्र राजा मनोहरदास शिवाजी द्वारा सुपुर्द किए हुए तेईस दुर्गों में से एक माहुली दुर्ग के अध्यक्ष थे। इस प्रकार देखा जाता है कि उस समय कई गौड़ सर्दार दक्षिण में मौजूद थे और उन्हीं में से कोई एक लोहगढ़ का भी अध्यक्ष रहा होगा, जिससे ज़ेधेशकावली के अनुसार सन् १६७० ई० में यह दुर्ग विजय किया गया था। ये दोनों दुर्ग पास पास हैं और शिवाजी द्वारा वे दोनों ही वार प्रायः एक ही समय में लिए गए थे, इसीसे कवि ने दोनों के विजय का एक साथ वर्णन किया है। सिंहगढ़-विजय में ताना जी की अभूतपूर्व वीरता के आगे इस दुर्ग के विजय की ख्याति मंदी पड़ गई, जिससे न इतिहासज्ञ ही ने और न कवि ने इस पर अधिक लिखा।

छं० २६१ में विलायत और पुर्तगाल के 'पेसकसें' भेजने का उल्लेख होने से कर्णाट सहम जाता है अर्थात् उस पर शिवाजी का अधिकार नहीं है। छेक एवं लाट अनुप्रास के उदाहरणों में भूषण जी ने शब्दों की पिचकारी का अच्छा आदर्श उपस्थित किया है। इसमें एक स्थान पर भड़ोच का नाम भी आया है। इसमें सूरत के लूटे जाने पर वहाँ के निवासियों में क्या डर समाई थी, इसका वर्णन है। इस छं० ३५४ का भाव यह है कि 'शिवाजी ने दिल्ली की सेना को परास्त कर निश्शंक हो डंका बजाते दिन दहाड़े सूरत नगर लूट लिया, जिससे दुष्टों (वहाँ के निवासियों) को ऐसी डर हुई कि वे सोचने लगे कि अब भड़ोच चले चलिए। आँखों से

आँसू गिराते हुए उन्होंने कष्ट से यही निश्चय किया कि रथ को ठेलो। इससे दिल्ली की सब दिशाओं में बड़ी भद्द हुई।' इसमें शिवाजी के या मराठों के भड़ोच लूटने का गंध भी नहीं है। साथ ही भड़ोच और सूरत केवल नर्मदा ही के इस पार उस पार नहीं हैं; प्रत्युत् और एक नदी ताप्ती तथा एक पहाड़ सतपुड़ा भी बीच में है। पर इनके बीच में रहते हुए भी दोनों में केवल तीस पैंतीस मील की दूरी है। दो दो बार सूरत के लूटे जाने पर यदि भड़ोच के निवासी डर भी जाँय तो कोई शंका की बात नहीं है। शिवाजी का समुद्री बेड़ा सारे मलाबार तट का दौरा लगाता था और ये दोनों स्थान समुद्री तट पर हैं। सन् १६७० ई० में 'शिवाजी ने सूरत की लूट से तीस सहस्र नई सेना और एक शक्तिशाली बेड़ा तैयार किया। अंतिम (अर्थात् बेड़े) के साथ इन्होंने गुजरात तट की ओर भड़ोच तक जाने का रंग दिखलाया। मुग़लों ने सूरत की दो बार की लूट के समान भड़ोच पर इस बार लूट की मराठा चढ़ाई की आशंका करके जितनी हो सकी कुल सेना गुजरात में भेज दिया। शिवाजी यही चाहते थे और अब वे अपनी सेना-सहित खानदेश लूटने चले गए।' (पारसनीस किनकेड कृत 'ए हिस्टरी आव मराठा पीपुल' भाग १ पृ० २३५) अर्थात् सूरत की चढ़ाई के बाद ही भड़ोच की चढ़ाई का भी शोर मच गया था।

अब शिवराज-भूषण ग्रंथ में, भूषण की अन्य कृतियों में नहीं, आए हुये कुछ ऐतिहासिक व्यक्तियों की जीवन घटनाओं से मिलान कर यह विवेचना कर लेनी होगी कि कवि के दिए हुए रचना-काल से उन सब का सामंजस्य हो सकता है या नहीं। इस ग्रंथ के रचनाकाल को आगे पीछे हटाने के लिए बहुत कुछ तर्क वितर्क हो चुका है, पर उनमें दो एक बातें ऐसी थीं जिनमें

उनका आधा महत्व निकल जाता है। प्रथम तो यही है कि जब तर्क शिवराजभूषण के रचनाकाल का हो रहा है तब इस ग्रंथ के अतिरिक्त भूषण की अन्य रचनाओं को उद्धृत कर उसे अशुद्ध प्रमाणित करने का प्रयत्न किया गया है। यहाँ तक देखा गया है कि जब पाद-टिप्पणी में 'शिवराजभूषण पृ० १६१' लिखा है तब भूषण ग्रंथावली उठा कर देखने से ज्ञात होता है कि उसके कई पृष्ठ पहिले वह ग्रंथ समाप्त हो चुका है और वह उद्धृत पद या पदांश बावनी या स्फुट का है। यह क्या है? इसका नामकरण न करना ही अच्छा है। दूसरे यह भी देखा जाता है कि जिस ग्रंथ की रचना केवल किसी एक व्यक्ति की प्रशंसा में हुई है और जिसका नाम भी उस पद विशेष में दिया हुआ है, उसे छोड़ किसी अन्य पुरुष से उस ग्रंथ के ऐसे पद में वर्णित घटना का संबंध स्थापित कर बराबर कुतर्क किया गया है। ऐसी बातों का कुछ उल्लेख आगे हुआ है।

ख़वास ख़ाँ

शिवराज-भूषण में खवास ख़ाँ का चार बार उल्लेख इस प्रकार हुआ है:—

१—वैर कियो शिवजी सो खवास खाँ डौंडिये सैन बिजैपुर बाजी।
छं० २०६

२—धाक सों खाक बिजैपुर भो मुख आयगो खान खवास के फेना।
छं० २५४

३—लोगन सों भनि भूषन यों कहैं खान खवास कहा सिख दैहो।
आवत देसन लेत सिवा सरजै मिलिहौ भिरिहौ कि भगैहो॥

पद्दिल की सभा बोलउठी यों सलाह करौऽब कहाँ भजि जैहौ।
लीन्हों कहा लरि कै अफजल्ल कहा लरि कै तुमहू अब लैहौ॥
छं० ३१२

४—उमड़ि कुड़ाल में खवास खान आये भनि भूषन त्यों धाये
शिवराज पूरे मन के।
छं० ३२८

इन चार छंदों में जिस खवास खाँ का उल्लेख हुआ है उनमें उसके जीवन की एक प्रधान घटना का कुछ आभास मिलता है। अंतिम में वह केवल एक सेनापति मात्र है जो शिवाजी से युद्ध करने कुड़ाल तक आया था; पर अन्य तीन में उसका उल्लेख कुछ विशेषता लिए है। तीसरे पद में स्पष्ट ही एक युद्धीय काउंसिल बैठी हुई है, जिसका सभापति यही खवास खाँ ज्ञात होता है। सभी उसके मुखापेक्षी हैं और उसकी सम्मति चाहते हैं। अपनी सम्मति देते हुए अन्य सभासद संधि का प्रस्ताव करते हैं और यह भी चुनौती देते हैं कि युद्ध करने से जो फल अफजल खाँ को मिला था वही तुम्हें भी प्राप्त होगा। प्रथम छंदांश में 'खवास खाँ शिवाजी से बैर कियो' भी उसकी 'बिजैपुर' में प्रधानता दिखलाता है। दूसरा छंदांश भी इसीका द्योतक है। एक बात यह भी है कि खवास खाँ की यह प्रधानता अफजल खाँ के सन् १५५६ ई० में मारे जाने के बाद की होनी चाहिए। साथ ही इस खवास खाँ ने कुड़ाल में आकर शिवाजी से लड़ने का प्रयत्न किया हो, ऐसी भी उसके जीवन की एक घटना होनी चाहिए।

बीजापुर का इतिहास देखने से यह ज्ञात होता है कि उस राज्य के दो प्रधान अमात्य खवास खाँ नाम के हुए हैं, जो शिवाजी के समकालीन थे और दोनों ही की अमात्यता के अंत होने के पहिले अफजल खाँ मारा जा चुका था। अब प्रथम खवास खाँ

का साधारण परिचय दिया जाता है, जिसका वास्तव में इन छंदों में उल्लेख नहीं है। बीजापुर के सातवें सुलतान मुहम्मद आदिल शाह की सन् १६५६ ई० के नवम्बर में मृत्यु होने पर उसका पुत्र अली आदिल शाह तृतीय गद्दी पर बैठा। पुराने मंत्री ख़ानमुहम्मद के मारे जाने पर खवास ख़ाँ मंत्री हुआ और इसीने अफ़ज़ल खां को सन् १६५६ ई० में शिवाजी को दमन करने के लिए भेजा था। इसके अनंतर इख़लास खां ख़ानख़ानाँ, बहलोल ख़ाँ आदि प्रधान हुए। सन् १६७२ ई० के २४ नवंबर को अली आदिल की मृत्यु होगई, जिस पर अब्दुलकरीम तथा दूसरे ख़वास ख़ाँ ने प्रधानता के लिए झगड़ा किया। ख़वास ख़ाँ को मृत सुलतान ने अपने पुत्र सिकंदर आदिल शाह का अभिभावक भी नियुक्त किया था, जिससे यह मालूम होता है कि अली आदिल शाह का इस पर पहिले ही से अधिक विश्वास था। इसने सन् १६६६ ई० में शरज़ा ख़ाँ के साथ शिवाजी तथा दिलेर ख़ाँ से युद्ध किया था और परास्त हुआ था। इसके पहिले भी जब जयसिंह ने शिवाजी पर चढ़ाई की थी तब अली आदिल ने ख़वास ख़ाँ को मुग़लों की सहायता के लिए शिवाजी पर भेजा था, पर कोंकण में पहुँचने पर एकाएक शिवाजी ने उस पर आक्रमण कर परास्त कर दिया था। सन् १६६३ ई० में शिवाजी ने कुडाल पर अधिकार कर लिया था, पर उस पर पुनः उस समय बीजापुरी अधिकार हो गया जब शिवाजी मुग़लों के सेनापति जयसिंह से लड़ रहे थे। इसके अनन्तर मराठों का फिर अली आदिल की मृत्यु पर उस पर अधिकार होगा। कुडाल के इस लेने देने में बीजापुर पक्ष का प्रधान सेनापति मुहम्मद इखलास ख़ाँ था जो ख़वास ख़ाँ का भाई था। इसी ख़वास ख़ाँ के पिता इखलास ख़ाँ ख़ानख़ानाँ बीजापुर के प्रधान मंत्री भी रह चुके थे। इस प्रकार देखा जाता है कि इसी दूसरे ख़वास ख़ाँ का इन छंदों में उल्लेख हुआ है और

यह शिवराज-भूषण की रचना के बाद सन् १७७४ ई० के अंत में अफ़ग़ान अब्दुल करीम के हाथ धोखे से मारा गया था।

इस प्रकार ऐतिहासिक अन्वेषण पर देखा जाता है कि ख़वास ख़ाँ का उल्लेख शिवराज भूषण के रचनाकाल के अनुकूल ही है और उसके सत्य होने का प्रमाण है।

याक़ूत ख़ाँ

शिवराज-भूषण के छं० ६३ में अफ़ज़ल ख़ाँ के मारे जाने का उल्लेख है। छंद यह है—

सिंहथरि जाने बिन जावली जँगल भठी,
        हठी गज एदिल पठाय करि भटक्यौ।
भूषन भनत देखि भभरि भगाने सब,
        हिम्मति हिये में धरि काहू वै न हटक्यौ॥
साहि के सिवाजी गाजी सरजा समत्थ महा,
        मदगल अफ़ज़लै पंजा बल पटक्यो।
ता बिगिरि ह्वै करि निकाम निज धाम कहँ,
        आकुत महाउत सु आँकुस लै सटक्यौ॥

जावली तथा पार के पास शिवथरि नामक एक और ग्राम भी है। यहीं अफ़ज़ल ख़ाँ की सेना ठहरी हुई थी। स्यात् इसी ग्राम के नाम को भूषण ने बदल कर सिंहथरि रख दिया है। दोनों के केवल साम्य के कारण इतना लिख दिया गया है। इस छंद में एक ऐतिहासिक घटना का अलंकृत वर्णन है। सिंह रूपी शिवाजी ने अफ़ज़ल ख़ाँ रूपी हाथी के भूल कर जंगल में आ जाने पर पंजा के बल पछाड़ दिया, जिसमें आकूत रूपी महावत बेकार

होकर अंकुश लेकर भाग निकला। पंजा शब्द से उस शस्त्र की ध्वनि भी निकलती है जिसे बाघनख कहते हैं और जिससे शिवाजी ने अफ़ज़ल ख़ाँ पर चोट किया था। यह घटना सं० १७१६ वि० की है। याकूत का महावत होने से केवल यही तात्पर्य है कि भूषण के अनुसार वह भी इस चढ़ाई में अफ़ज़ल ख़ाँ के साथ था। पं० रामचन्द्र गोविन्द भाटे महाशय ने माधुरी व० ८ खं० १ सं० ३ पृ० ५१२-३ पर 'शिवभारत' से कई श्लोक उद्धृत कर दिखलाया है कि 'याकुतः' भी अफ़ज़ल ख़ाँ के साथ इस चढ़ाई में आया था। यह शंका उठाना व्यर्थ है क्योंकि अफ़ज़ल के साथ कोई याकूत आया था और उसके मारे जाने पर वह भाग गया था, इसे तो भूषण जी स्पष्ट ही कह रहे हैं। अब यह देखना चाहिए कि उस समय कोई ऐसे याकूत दुनियाँ में थे या नहीं, जिसका इतिहास में पता लगता है।

ऐसे याकूत के उस समय होने या न होने से भी तथा बाद में कभी किसी याकूत के होने से शिवराज-भूषण के रचनाकाल पर कुछ भी असर नहीं पड़ता और उसका विचार उठाना पाठकों को भ्रम में डालना मात्र है क्योंकि उससे अफ़ज़ल के मारे जाने से संबंध है, जिसका समय ध्रुव निश्चित है, वह इधर उधर कुछ भी नहीं हट सकता। यह शंका ही नहीं है, वाग्वितंडा मात्र है। यदि कोई याकूत उस समय न मिले तो अपने ऐतिहासिक ज्ञान की न्यूनता मानना अधिक सम्मत है, बजाय इसके कि यह कहा जाय कि भूषण ने भ्रम से यह नाम दिया है। पहिला ही ठीक हो सकता है क्योंकि 'शिवभारत' ग्रंथ भी भूषण का समर्थन करता है। इस पर यह विवाद भी उठाना कि यह याकूत ख़ाँ सीदी थी और यह पदवी जंजीरा के सीदी सम्भोल को सं० १७२७ ई० में दी गई, यह सब भी व्यर्थ है। सीदी शब्द केवल

हबशी अर्थात् ऐबिसिनिअन होने का द्योतक है और ये लोग केवल जंजीरा ही में नहीं रहते थे; प्रत्युत् दक्षिण के सभी सुलतानों के दरबार में रहते थे। मलिक अंबर, आहँग खाँ, चीता खाँ आदि हब्शी ही थे।

२४ दिसंबर सन् १६६५ ई० को शिवाजी तथा दिलेर खाँ और शरज़ा खाँ तथा ख़वास खाँ के बीच जो युद्ध हुआ था, उसमें बीजापुरी सेना के एक सेनाध्यक्ष, पंद्रह अफसर और हज़ारों सैनिक मारे गये थे। इस सेनापति का नाम प्रो० सर्कार ने शिवाजी के पृ० १४६ पर याक़ूत खाँ हब्शी दिया है। यही सन् १६५९ ई० का भगैल याक़ुत खाँ हो सकता है।

बहलोल ख़ाँ

शिवराज-भूषण के जिन छंदों में बहलोल खाँ का उल्लेख है, उनके अंश यहाँ दिए जाते हैं।

१—अफ़ज़ल की अगति, सासता की अपगति,
बहलोल की विपति सों डरे उमराव हैं। छं० ९६
२—बचैगा न समुहाने बहलोल खाँ अयाने,
भूखन बखाने दिल आनि मेरा बरजा।
तुझसे सवाई तेरा भाई सलहेरि पास,
कैद किया साथ का ना कोई वीर गरजा।
साहिन के साह उसी औरँग के लीन्हें गढ़,
जिसका तू चाकर और जिसकी है परजा।
साहि का ललन दिल्ली दल का दलन,
अफ़ज़ल का मलन सिवराज आया सरजा। छं० १६१

३—अफजल खान, रुस्तमै जमान, फत्तेखान कूटे,
लूटे जूटे ए उजीर बिजैपुर के।
अमर, सुजान, मोहकम, बहलोल ख़ान,
खांड़े, छांडे, डांडे उमराव दिलीसुर के। छं० २३६
४—मोलल्हि जस नोलल्हरि बहलोलल्लिय धरि। छं० ३५६
५—सिवराज साहि-सुव खग्ग बल दलि अडोल्ल बहलोल दल।
छं० ३५८

प्रथम छंदांश से यह ज्ञात होता है कि अफ़ज़ल खाँ के मारे जाने, शायस्ता खाँ की दुर्दशा होने तथा बहलोल खाँ पर आपत्ति का पहाड़ टूटने से सर्दारगण डर गये हैं और इसी से हज्ज करने का बहाना करके ही वे नदी के पार उतरते हैं। ४ थे और ५ वें छंदांशों से क्रमशः यही मालूम होता है कि बहलोल को पकड़ फिर नया यश क्रय किया और बहलोल की सेना को दल डाला। इन तीनों ही से किसी खास बहलोल का परिचय नहीं मिलता, या यों कहा जाय कि जिस बहलोल का इन तीनों में उल्लेख है, वह कौन है, दिल्ली दरबार का सरदार है या दक्षिण के किसी सुलतान का यह स्पष्ट नहीं ज्ञात होता। ३ रे उद्धरण से यह ज्ञात होता है कि इसमें उल्लिखित बहलोल खाँ दिल्लीश्वर का सर्दार है और उसे शिवाजी ने कैद कर उससे दण्ड लिया है। २ रा पूरा छंद बहलोल खाँ के विषय में कुछ और बातें भी बतलाता है। उससे मालूम होता है कि उसके भाई को शिवाजी ने सलहेरि के पास कैद किया था तथा वह औरंगज़ेब का सेवक और प्रजा है।

अब प्रश्न यह रह गया कि दिल्ली-सम्राट् के किसी सर्दार बहलोल खाँ की शिवाजी द्वारा दुर्दशा हुई थी या नहीं। यदि कोई ऐसा बहलोल न मिले तो क्या समझना चाहिए। एक सज्जन ने तो भूषण को इसे भ्रमवश दिल्ली का सेवक लिखना

समझ लिया है। ऐसा समझ लेना अनुचित है। बीजापुरी सर्दार बहलोल खाँ को लेकर अन्य लोग उसके युद्धों के संवत् देकर इस ग्रन्थ के निर्माणकाल को आगे पीछे हटा रहे हैं। वास्तव में सभी को पहिले मुग़ल दरबार ही के किसी बहलोल की खोज करना चाहिए था।

सन् १६७१ ई० में गुजरात के सूबेदार बहादुर खाँ तथा दिलेर खाँ दक्षिण भेजे गये थे। ये दोनों इखलास खाँ मियाना, राव अमर सिंह चन्द्रावत आदि सर्दारों को सल्हेर दुर्ग का घेरा क़ायम रखने के लिये छोड़कर अहमदनगर गये थे। सन् १६७२ ई० के जनवरी महीने में शिवाजी ने इस सेना को घेर लिया और घोर युद्ध के अनंतर इखलास खाँ, मुहकम सिंह आदि तीस सर्दार कैद हुए और राव अमरसिंह, कई अन्य अफसर तथा कई सहस्र सैनिक मारे गये। पीछे से धन देकर ये सर्दार छोड़ दिये गये थे। यह इखलास खाँ बीजापुर के पठान सर्दार अब्दुलक़ादिर बहलोल खाँ का पुत्र था और इसका नाम अबूमुहम्मद था। सन् १६६६ ई० के आरम्भ में यह बादशाही सेवा में चला आया था और इसे इखलास खाँ पदवी तथा पाँच हज़ारी मंसब मिला था। यह अब्दुल कादिर बहलोल खाँ बीजापुर का प्रधान अमात्य था और यह सन् १६६५ ई० में कर्णाटक से लौटने पर मर गया। इसके दो पुत्र और एक भ्रातृष्पुत्र था। अली आदिलशाह इस बहलोल से उसकी बारह सहस्र पठान सेना के कारण ईर्ष्या रखता था, इसलिए उसकी मृत्यु पर उसके पुत्रों में झगड़ा होने पर उनकी जागीरें दबा ली थीं। इस पर इसका प्रथम पुत्र दिल्ली चला गया और वहाँ का एक सर्दार हो गया। सभासद बखर के आधार पर मेसर्ज़ पारसनीस तथा किनकेड महाशयगण अपने मराठों के इतिहास भा० १ पृ० २३५ पर लिखते हैं कि 'इखलास खाँ के

एक सहकारी बहलोल खाँ ने भी इस युद्ध में योग दिया था।" भूषण भी किसी एक बहलोल खाँ के पकड़े जाने का उल्लेख करते हैं और अमरसिंह चन्द्रावत के मारे जाने तथा मुहकम सिंह आदि के पकड़े जाने के उल्लेख से इसी सल्हेर युद्ध ही से उनका तात्पर्य भी है।

पूर्वोक्त विचारों से यही निष्कर्ष निकलता है कि भूषण ने जिस बहलोल का वर्णन किया है वह मुग़ल सम्राट का सेवक था तथा उसका भाई सल्हेरि युद्ध में पकड़ा गया था जिससे उस पर विपत्ति भी पड़ी थी।

बीजापुर के जिस बहलोल खाँ के सन् १६७३ तथा १६७४ ई० के युद्धों का वर्णन दोनों पक्ष के तर्ककर्ताओं ने किया है, उसका नाम अब्दुर्रहीम था और उसकी बंकापुर में जागीर थी। उसका भाई ख़िज्र खाँ था जो हंबीर राव से युद्ध करते समय मारा गया था। बहलोल फारसी शब्द है, जिसका अर्थ किसी जाति का सर्दार या पेशवा है। यह पदवी प्रायः पठानों ही को मिलती थी और दक्षिण ही में इसका प्रयोग होता था। यह भी उस समय नियम सा था कि एक बड़ी उपाधि एक ही दरबार में एक से अधिक सज्जनों को एक साथ नहीं प्रदान की जाती थी। तब इस प्रकार दो बहलोल खाँ के समसामयिक होने का कारण यही ज्ञात होता है कि सन् १६६६ ई० में एक बहलोल खाँ की मृत्यु पर उसके एक पुत्र को स्यात् छोटे ही को वही पदवी दी गई और जब वह भी अपने भाई के समान जागीरों के कारण बीजापुर दरबार से क्रुद्ध होकर दिल्ली चला गया तब दूसरे अब्दुर्रहीम को यह पदवी दी गई हो। इधर इख़लास खाँ के भाई भी उत्तर में अपनी उसी पदवी से पुकारे जाते रहे होंगे।

मुहकमसिंह

अमर सुजान मुहकम बहलोल खान खाँड़े,
छाड़े, डाँड़े, उमराव दिल्लीसुर के। छं० २३६

लिय धरि मुहकमसिंह कहँ अरु किसोर नृप कुम्भ। छं० ३५६

उपर्युक्त छंदांशों में एक ही मुहकम सिंह का उल्लेख है और दोनों ही में उसका पकड़ा जाना वर्णित है। इन्हें कैद करके छोड़ने वाले शिवाजी ही हैं इसमें कुछ भी शंका नहीं है, इसलिये किसी पक्ष के विद्वान को ऐसा ही मुहकमसिंह खोज निकालना चाहिए जिसे शिवाजी ने युद्ध में, मुख्य कर सल्हेरि युद्ध में, कैद किया हो और दंड लेकर छोड़ा हो। भूषण ने शिवराज-भूषण, चाहे जब भी लिखा हो, पर यदि उसने सत्य घटनाओं का इस ग्रन्थ में समावेश किया है तो ऐसे ही ऐतिहासिक मुहकमसिंह खोजना चाहिये। एक सज्जन ने ग्रांट डफ से एक उद्धरण देकर एक मुहकमसिंह का उल्लेख करते हुये उस घटना का सं० १७५२ वि० (सन् १६९५ ई०) में होना दिखलाते हुए शिवराज-भूषण का रचना-काल आगे की ओर खींचा है। पर यह तो विचार लेना चाहिए था कि क्या इस जाट तथा भरतपुर के राजकुमार मुहकमसिंह की जिन मराठों ने दुर्दशा की थी उनके सेनापति क्या शिवाजी थे। क्या शिवाजी सन् १६९५ ई० में जीवित भी थे? यदि वे नहीं जीवित थे तो इन मुहकमसिंह का उल्लेख करना व्यर्थ है। भूषण जी या कोई भी यदि आज इस घटना का इतिहास लिखने बैठे तो वह शिवाजी द्वारा ही पकड़े जाने वाले मुहकम सिंह का उल्लेख करेगा, बाद के अनेकों मुहकमसिंह से उससे कुछ भी सम्बन्ध नहीं मिलावेगा।

औरंगज़ेब तथा शिवाजी के समकालीन कई मुहकमसिंह हुए हैं जिनमें चार का तो हमें इस समय ध्यान है, और भी हो सकते हैं। एक मुहकम सिंह हाड़ा हैं, जो सन् १६५६ ई० में धौलपुर में मारे गए थे। इन्हीं के भाई किशोर सिंह कोटा के राजा हुए जिनका परिचय परिशिष्ट च में देखिये। दूसरे राव अमर सिंह चंद्रावत के पुत्र थे जिनके विषय में आगे विचार किया जाएगा। तीसरे मुहकम सिंह जाट-नरेश चूड़ामणि के पुत्र थे। चूड़ामणि ने सं० १७४५ के बाद मुग़लों की अधीनता स्वीकार की थी, इसलिये उसी समय या बाद को उसका राजकुमार बादशाही सेना में नियुक्त होकर दक्षिण आया होगा। यह मुहकम सिंह सन् १७२२ ई० में गद्दी पर बैठा था। चौथे मुहकम सिंह खत्री थे जिन्हें भी राजा का खिताब मिला था और यह भी फर्रुख़सियर बादशाह के समय तक दक्षिण में बहुत दिनों तक नियुक्त रहे। इसकी जीवनी के लिए काशी नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित मआसिरुल् उमरा का निबंध ५८ देखिए।

इन पूर्वोक्त चारों मुहकमसिंह में केवल एक चंद्रावत मुहकम सिंह ही ऐसे हैं जिन्हें शिवाजी ने सल्हेरि युद्ध में कैद किया था और बाद में जिन्हें दंड देने पर छुटकारा मिला था। मआसिरुल् उमरा फ़ा० भा० २ पृ० १४२-५ पर राव दुरगा सिसोदिया के पौत्र राव अमर सिंह के सल्हेरि युद्ध में मारे जाने तथा राव मुहकम सिंह के कैद होने का विवरण यों दिया गया है। 'इसके अनंतर वह दक्षिण में नियुक्त हुआ और मिर्जा राजा जयसिंह के साथ अच्छा कार्य किया। ग्यारहवें वर्ष में यह सल्हेर दुर्ग के नीचे शत्रु-सेना के आक्रमण करने पर मारा गया और उसका पुत्र मुहकम सिंह कैद हो गया। कुछ समय बाद इसे दंड देने पर

छुटकारा मिला, तब यह दक्षिण के सूबेदार बहादुर खाँ के पास आया और इसे राव की पदवी तथा मंसब मिला। बहुत दिनों तक दक्षिण में कार्य करता रहा। ३३ वें वर्ष में मुहकम सिंह का पुत्र गोपाल सिंह अपने देश रामपुर से आकर अपने पैतृक सेवा में नियुक्त हुआ।' औरंगज़ेब का ग्यारहवाँ जलूसी वर्ष फाल्गुन सुदि २ सं० १७२४ वि० (४ फरवरी सन् १६६८ ई०) से आरंभ होकर माघ सु० २ सं० १७२५ वि० (२३ जनवरी सन् १६६९ ई०) तक रहा। इसी बीच की यह पूर्वोक्त घटना है। मूतानेणसी की ख्यात (पृ० ९७-१००) तथा ब्लॉकमैन कृत आईन अकबरी पृ० ४१७-८ पर इन चंद्रावतों के विषय में लेख हैं। काशी नागरी प्रचारिणी पत्रिका सं० १९८३ पृ० ४११-४४७ पर एक बड़ा लेख इन पर है जो शिलालेखों तथा ख्यातों के आधार पर लिखा गया है। प्रो० सरकार ने इस युद्ध का वर्णन 'शिवाजी' पृ० २१७ पर फारसी आदि कई भाषाओं के इतिहासों के आधार पर किया है। पारसनीस किनकेड कृत 'मराठों के इतिहास' भा० १ पृ० २३५ पर भी इस घटना का वर्णन है। इतने ग्रंथों का उल्लेख इस लिए कर दिया गया है कि जिन पाठकों को ऐतिहासिक मनन का शौक हो वे इन चंद्रावतों के विषय में विशेष ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।

सफजंग

शिवराज भूषण में इस शब्द का केवल एक बार प्रयोग हुआ है। वह इस प्रकार है।

लूट्यो खानदौराँ ज़ोरावर सफजंग अरु लह्यो मार तलब खाँ मनहु अमाल है। छं० १०३

इस छंदांश के भी प्रथम अंश का दो प्रकार से अर्थ हो सकता है अर्थात् (१) शक्तिमान खानदौरां को युद्धव्यूह में लूट लिया और (२) खानदौरां, जोरावर तथा सफजंग तीनों को लूटा। तात्पर्य यह कि लूटने वाले एक शिवाजी ही हैं, पर लुटने वाले एक या तीन हो सकते हैं। एक सज्जन ने इस सफजंग को सफदरजंग का छोटा रूप माना है तथा वाजीराव पेशवा और अवध के द्वितीय नवाव मंसूर अली खां सफदरजंग के बीच युद्ध का इसमें उल्लेख बतलाया है। पर भूषण ने इस ग्रंथ में केवल शिवाजी ही का यश गाया है इससे इस प्रकार का कथन उपेक्षणीय है। इस में भी अन्य जिन घटनाओं का उल्लेख है वह सब शिवाजी ही के समय की है तथा भूषण साफ साफ पुकार कर कह रहे हैं कि खानदौरां, शायस्ता खाँ आदि उमराव के साथ औरंगज़ेब घोड़े हाथी 'इरसाल' कर (भेज) रहा है। अब केवल यह देखना है कि शिवाजी के समय कोई सर्दार इस नाम का दक्षिण आया था या नहीं। हाँ, एक बात और पहिले ही विचार लेना चाहिए। क्या केवल 'सफजंग' नाम हो सकता है? ज़ोरावर नाम भी हो सकता है तथा विशेषण भी। इसका अर्थ शक्तिशाली है और इसमें खां आदि लगाकर नाम बना सकते हैं जैसे जोरावर खाँ; पर इसी प्रकार 'सफजंग' में खां, दौला आदि लगा कर नाम नहीं बनाया जा सकता। मुसलमानी नाम विशेषतः सार्थक होते हैं। सफजंग दो शब्द मिलकर बना है। सफ अरबी शब्द है जिसका अर्थ क़तार, परा, पंगत, लाइन है। जंग का अर्थ युद्ध है। अर्थात् दोनों का मिलकर अर्थ होता है युद्ध की कतार, व्यूह। तात्पर्य यह कि सफजंग पाठ रहते हुए उसे किसी अमीर का नाम नहीं माना जा सकता। यदि इन दोनों शब्दों के बीच 'दर' के समान शब्द मिलाने तथा लोप होने की बात माननीय हो सके तब यह नाम

बन सकता है। इस सफजंग को यदि सैफजंग का बिगड़ा रूप मानें तब यह अवश्य नाम हो सकता है । सैफ फारसी शब्द है जिसका अर्थ तलवार है । सैफ खाँ, सैफुद्दौला, सैफजंग आदि उपाधियां बराबर मुसलमानी दरबारों में वितरित होती रहती थीं। ८ वें जालूसी वर्ष में शाहज़ादा मुअज्जम के साथ एक सफाशिकन खां और एक सैफ खां दक्षिण आये थे। मआसिरे-आलमगीरी में औरंगज़ेब के १३ वें जलूसी वर्ष (१६६६ ई०) में एक हाजी सैफ खां के भी दक्षिण के दीवानी पद पर नियुक्त होने का उल्लेख है; पर यह उस पद पर बहुत ही थोड़े दिन रहा था। किसी अन्य सैफ खां, सैफजंग आदि का या किसी जोरावर खां, सिंह आदि का शिवाजी से युद्ध करने के लिये दक्षिण की चढ़ाई पर नियुक्त होने का अभी तक किसी इतिहास में उल्लेख नहीं मिला है।

वास्तव में ये दोनों—सैफजंग तथा जोरावर शब्द भूषण द्वारा नाम के रूप में नहीं प्रयुक्त हुए हैं, प्रत्युत वाक्य-योजना में विशेष जोर डालने के लिये लाये गए हैं। उनका भाव यह है कि पहिले तो खानेदौरा ही शक्तिशाली है और दूसरे उसको सरे मैदान उसकी सेना के सामने ही शिवाजी ने लूट लिया था। सफजंग शब्द का इस भाव में हिंदी कविता में प्रयोग भी होता है।

तलब ख़ाँ

सफजंग को विवेचना करते हुए जो छंदांश उद्धृत किया गया है उसका दूसरा अंश 'अरु तह्याँ मार तलब खाँ मनहु अमाल है'

है। इसका अर्थ होगा कि 'और तलब खाँ ने मार पाई, मानों मनमाना है।' इस पद्यांश का यह पाठांतर भी मिलता है कि 'लह्यो मार' के स्थान पर 'लूट्यो कार' होना चाहिये जिससे केवल 'तलब खाँ' 'कार तलब खाँ' हो जाते हैं। अब पहिले पूरा छंद देकर उस पर विचार किया जायगा।

लूट्यो खानदौरां ज़ोरावर सफजंग अरु,
लह्यो मार तलब खाँ मनहु अमाल है।
भूषन भनत लूट्यो पूना में सइस्त खान,
गढ़न में लूट्यो त्यों गढ़ोरन को जाल है॥
हेरि हेरि कूटि सलहेरि बीच सरदार,
घेरि घेरि लूट्यो सब कटक कराल है।
मानो हय हाथी उमराव करि साथी अव-
रंग डरि शिवाजी पै भेजत रिसाल है॥

भूषण ने इसे हेतूत्प्रेक्षा उदाहरण के लिए बनाया है। जो वास्तव में जिस वस्तु का हेतु नहीं है उसे उसका हेतु मानना हेतूत्प्रेक्षा है। इसके दो भेद हैं–सिद्ध-विषया और असिद्ध-विषया। इस उदाहरण में सिद्ध-विषया हेतूत्प्रेक्षा है। शिवाजी मुग़ल दरबार से भेजे गये सर्दारों की सेना तथा मुग़लों के अधीनस्थ दुर्गों के अध्यक्षों के घोड़े, हाथी, धन, सामान आदि लूट लेते थे, इस पर कवि उत्प्रेक्षा करता है कि मानों औरंगज़ेब डर कर इन घोड़े हाथी आदि को सर्दारों के साथ शिवाजी के पास कर के रूप में भेजता है। कवि ने इसीसे 'लूट्यो' शब्द ही को प्रधानता दी है क्योंकि उसीसे उसकी उत्प्रेक्षा सिद्ध होती थी। तलब खाँ के मार पाने से तथा शिवाजी के उसका प्राण लेने से कवि का भाव नहीं बनता; प्रत्युत बिगड़ता है। वाक्य-योजना से

भी ऐसा ही ज्ञात होता है। प्रथम तीन पंक्तियों में जितनी क्रियाएँ आई हैं उन सब का, एक लह्यो को छोड़ कर, कर्ता एक है। यह कर्ता अर्थात् लूटने वाले शिवाजी हैं। प्रथम पंक्ति के पूर्वार्ध का कर्ता, लह्यो पाठ रहने पर, उत्तरार्ध में करण हो जाता है इसके बाद वह पुनः कर्ता हो जाता है। यदि दूसरा पाठ 'लूट्यो कार' लिया जाय तो वाक्य-योजना का यह शैथिल्य नहीं रह जाता और इस पंक्ति का अर्थ भी ठीक ठीक बैठ जाता है। छंद भर में सभी के लूटने की जो कवि ने प्रधानता रखी है वह भी बनी रह जाती है।

तलब अरबी शब्द है जिसका अर्थ याचना या वेतन है। केवल तलब खाँ वेतन सिंह के समान निरर्थक है। कारतलब खाँ सार्थक हो जाता है और इस नाम के एक मुग़ल सर्दार का इतिहासों से भी पता लगता है, जो शिवाजी के समय में था और जिसे इन्होंने लूटा था। बाद के हज़ारों तलब ख़ाँ से भूषण के इस छंद से कुछ भी प्रयोजन नहीं। शिवाजी की मृत्यु के बाद अन्य मराठी सैनिकों द्वारा लुटे पिटे तलब ख़ाँ को भूषण किस प्रकार शिवाजी द्वारा पिटा हुआ बयान कर देंगे, यह विचार में भी नहीं आता।

अस्तु, हमारे विचार से 'लूट्यो कार' पाठ शुद्ध है चाहे वह प्राचीन प्रति में मिला हो या न मिला हो। कारतबल ख़ाँ का परिचय परिशिष्ट च में देखिये।

वखतवुलंद

वासव से विसरत विक्रम की कहा चली,
विक्रम लखत वीर वखत विलंद के।

जागे तेज वृंद शिवाजी नरिन्द मसनन्द माल-
मकरन्द कुलचंद साहिनन्द के। छं० ११०

इस पद में 'वखत बिलंद' शब्द आया है, जो फारसी शब्द 'बुलंद बख्त' का बिगड़ा रूप है। इसका अर्थ ऊँचे इक़बाल वाला, अतीव भाग्यवान है। मुसलमानी दरबारों में इस प्रकार की उपाधियाँ बादशाहों तथा शाहज़ादों के लिए बराबर प्रयुक्त होती रही हैं। शाहजहाँ नामा में लिखा है कि दारा शिकोह को 'शाहबुलंद इक्बाल' की उपाधि मिली थी और उस इतिहास में केवल उसी उपाधि से उसका कई बार उल्लेख किया गया है। सन् १६८६ ई० में देवगढ़ के एक गोंड राजा को मुसलमान होने पर औरंगज़ेब ने बुलंद बख्त की उपाधि दी थी; परन्तु उसने सन्० १६९९ ई०. में पुनः मुसलमानी धर्म छोड़ दिया, जिससे क्रुद्ध होकर बादशाह ने उसकी पदवी 'नगून बख्त' अर्थात् अभागा में बदल दिया था। एक सज्जन का कथन है कि इसी गोंड राजा को विक्रम का इस पद में वर्णन है। 'सवाई सी पदवी का न प्रयोग करने से कवि भूषण को' राष्ट्रवादी कहने वाले के द्वारा यह कथन कि मुसलमान हो जाने के कारण बादशाह द्वारा दी गई 'बुलंद बख्त' की उपाधि प्राप्त इस गोंड म्लेच्छ का इस छंद में उसी कवि ने उल्लेख किया है या उस उपाधि का अनुकरण किया है, अनर्गल मात्र है। भूषण ने स्वयं तथा उसके पूर्ववर्ती कवियों ने इस शब्द का विशेषण रूप में प्रयोग किया है।

शिवराज-भूषण में भूषण ने छत्रपति महाराज शिवाजी का यश-वर्णन किया है। यह प्रत्येक काव्यप्रेमी तथा काव्य-मर्मज्ञ समझता है। धर्मद्रोही गोंड की पदवी का शिवाजी के यश-वर्णन में कहे गये इस छंद में उल्लेख होना कहना हठधर्मी मात्र है। इस छंद की द्वितीय पंक्ति में भी स्पष्टतः शिवाजी, उनके पिता तथा

पितामह का नाम दिया हुआ है और कवि केवल यही दिखलाता है कि शिवाजी के विक्रम को देखकर शत्रु-स्त्रियाँ रोती हैं। तात्पर्य यह कि वखत विलंद शिवाजी का विशेषण मात्र है। वह उनका या किसी अन्य का नाम नहीं है।

अन्य ऐतिहासिक पुरुषगण

शिवराज-भूषण में शिवाजी के जिन प्रतिद्वंद्वी राजाओं तथा सेनानियों का उल्लेख हुआ है उनमें कुछ पर शंका उठाई गई थी जिससे उन पर कुछ विशेष रूप में लिखा जा चुका है और अब बचे हुए अन्य सर्दारों के विषय में साधारणतः यहाँ विचार किया जाएगा। मुग़ल दरबार से आए हुए राजाओं तथा सर्दारों में शायस्ता खाँ, महाराज जसवंतसिंह, राव भाऊसिंह हाड़ा, राव कर्णसिंह राठौर, राव अमरसिंह, राजा सुजानसिंह, बहादुर खाँ, खानदौराँ तथा नासिरी खाँ का नाम उल्लिखित हुआ है। बीजापुर के सर्दारों में रुस्तमेज़माँ और फतेह खाँ का नाम आया है। सन् १६६३ ई० में शायस्ता खाँ की दुर्गति हुई थी। महाराज जसवंतसिंह शाहज़ादा मुअज्ज़म के साथ आए थे। सन् १६६४ ई० में यह तथा राव भाऊसिंह सिंहगढ़ घेर कर भी उसे न ले सके तथा महाराज जसवंतसिंह सन् १६६५ ई० में उत्तर लौट गए। राव अमरसिंह सन् १६७१ ई० में मारे गये तथा इसी वर्ष सुजानसिंह मर गए। बहादुर खाँ तथा दिलेर खाँ की अधीनस्थ सेना सल्हेरि में सन् १६७१ ई० में ऐसी हारी कि वे पूना आदि विजय किए हुए सब स्थानों को छोड़ कर मुग़ल सम्राज्य की सीमा में लौट गए। परिशिष्ट च में पूर्वोक्त सभी व्यक्तियों का संक्षिप्त

परिचय दिया गया है, जिससे यह ज्ञात हो जाता है कि सं० १६३० वि० के ज्येष्ठ कृ० १२ (४ मई सन् १६७३ ई०) के पहिले इन सब पर शिवाजी ने छोटी बड़ी विजय प्राप्त कर ली थी और इनका इस ग्रंथ में उल्लेख होने से किसी प्रकार की इस ग्रंथ के निर्माणकाल के दोहे में दिए समय में आपत्ति नहीं होती।

इस प्रकार इस कुल विवेचना का यही निष्कर्ष निकलता है कि इस ग्रंथ की समाप्ति सं० १७३० वि० ही के ज्येष्ठ कृष्ण १३ रविवार को हुई थी जैसा कि ग्रंथकार ने स्वयं एक दोहे में लिख दिया है। अब प्रश्न यह है कि इस ग्रंथ का आरंभ कब हुआ था। जैसा कि कवि-परिचय में दिखलाया गया है, भूषण जी सन् १६६४ ही के लगभग शिवाजी के दरबार में आए थे। दरबार आने के अनंतर कुछ समय तक वे 'शिव चरित लख' रहे थे, जिसके बाद उन्होंने इस अलंकारमय ग्रंथ को अपने नायक के चरित्र से भूषित करने का विचार निश्चित किया होगा। ग्रंथ बनाने का निश्चय कर उन्होंने उपमा से आरंभ करने का कारण भी दे दिया है। इन बातों से यह भी स्पष्टतया ज्ञात होता है कि इन्होंने यह ग्रंथ आरंभ से अंत तक क्रमशः बनाया है। हाँ, यह हो सकता है कि पहिले के बनाए हुए किसी पद में किसी अलंकार को प्रधान देखकर उसे उदाहरण में इस ग्रंथ में स्थान दे दिया हो, पर यह ग्रंथ निश्चित विचार के अनुसार आरंभ करके लिखा गया है। प्रत्येक अलंकार अपने उदाहरण में इतनी स्पष्टता से दिया गया है तथा कहीं कहीं एक ही छंद में वह कई बार आया भी है, जिससे इस कथन का समर्थन ही होता है।

ग्रंथारंभ के विषय में विवेचना करते हुए एक सज्जन ने निर्माणकाल के दोहे को देकर इस प्रकार लिखा है कि 'इस

दोहे के अनुसार ग्रंथ-रचना-काल आषाढ़ वदी १३ रविवार सं० १७३० को ठहरता है। शिवाजी महाराज का राज्याभिषेक जेठ सुदी १३ सं० १७३० को हुआ। दक्षिण में महीने का अंत अमावास्या को माना जाता है। इस हिसाब से राज्याभिषेक के पूरे डेढ़ महीने वाद यह ग्रंथ समाप्त हुआ। इससे यह अनुमान सहज ही में किया जा सकता है कि भूषण ने राज्याभिषेक के दिन ग्रन्थ का आरंभ किया होगा और डेढ़ महीने में उसे समाप्त कर लेना भूषण ऐसे प्रतिभाशाली कवि के लिए कोई कठिन वात नहीं है'। इस उद्धरण में जो दो तिथियाँ दी हुई हैं वे दोनों अशुद्ध हैं और उनके आधार पर किया गया 'सहज अनुमान' भी विलकुल निराधार है। इसके समर्थन में भी जो कवि की आशुकविता की प्रशंसा की गई है वह भी वास्तविक वात से वहुत दूर जा पड़ी है।

जैसा ऊपर लिखा जा चुका है, ग्रंथ-समाप्ति का महीना ज्येष्ठ है, आषाढ़ नहीं है और शिवाजी के राज्याभिषेक का संवत् १७३१ वि० है। इस प्रकार यह ग्रंथ शिवाजी के राज्याभिषेक के डेढ़ महीने वाद नहीं; प्रत्युत् एक वर्ष पंद्रह दिन पहिले ही समाप्त हो चुका था। भूषण जी दीर्घजीवी तथा प्रतिभाशाली कवि थे, परन्तु उनकी प्राप्त कविता से यही देखा जाता है कि उन्होंने वहुत कम कविता की है। नवरत्न के एक अन्य कवि विहारीलाल जी के समान ही इन्होंने भी वहुत थोड़ी कविता की है। यदि भूषण जी का कविताकाल केवल पचास वर्ष माना जाय तब भी यदि वे फी महीने एक छंद वनाते तो छ सौ छंद इनके नाम के मिलते। इस संग्रह में केवल ५०६ छंद संगृहीत हैं। अप्राप्य ग्रंथों में केवल एक 'भूषण हज़ारा' ग्रंथ में एक सहस्र पद होने की आशा की जाती है। अन्य दो को यदि शिवराज-

भूषण के परिमाण के ग्रंथ मानें तो भी सब मिलाकर ढाई सहस्र से अधिक इनके पद के मिलने की आशा भी नहीं है। इस हिसाब से इनकी रचना का औसत फी साल पचास पद का आता है। इस हिसाब से तीन सौ बयासी पद के ग्रंथ को बनाने में इन्हें कम से कम सात वर्ष लगने चाहिए। अर्थात् सं० १७२३ वि० के लगभग इन्होंने इस ग्रंथ में हाथ लगाया होगा।

क्या भूषण जी में आशुकवित्वशक्ति नहीं थी? क्या वे आलसी थे? आदि प्रश्न उठ सकते हैं इसलिए संक्षेप ही में इस पर यहाँ विचार करना आवश्यक है। सभी भाषाओं के साहित्य में यह एक नियम सा देखा जाता है कि स्फुट काव्य के लेखकों की छंद-संख्या प्रबंधकाव्य के निर्माताओं की छंद-संख्या से कभी नहीं बढ़ पाई है। हर प्रकार से समान दो कवियों की छंद-संख्या देखने से जिनमें एक प्रबंध काव्य-लेखक हो और एक स्फुट पदों का निर्माता हो, अधिक स्पष्ट होगा। दोनों प्रकार की रचना में समानरूपेण कुशल एक ही कवि की कृति देखने से यह अधिक-तर स्पष्ट हो जाएगा। अब दृष्टांत में अपनी ही भाषा के कुछ कवियों को लीजिए। इस साहित्य के नवरत्न कवियों की रचना को देखिए। सूर, शशि, चंद ने सागर ही बना डाले हैं। इनके प्रबंध काव्य कितने विशद हैं। केशवाचार्य की छंद-संख्या भी उनके प्रबंध-काव्यों ही से बढ़ती है। भूषण तथा बिहारी कोरे स्फुट पद-निर्मायक थे। देव जी के जितने ग्रंथ मिलते हैं, उन सब में से वे छंद जो कई ग्रंथों में मिलते हैं अलग कर छंद-संख्या निकाली जाय तो वह भी प्रबंधकाव्य लेखकों के छंद-संख्या की तुलना नहीं कर सकेगी। सुकवि मतिराम की छंद-संख्या भी विशेष नहीं है। भारतेंदु जी ने साहित्य के सभी अंगों की ओर ध्यान दिया है और इन सब पूर्वोक्त महाकवियों से उनमें यह

भी विशेषता अधिक थी कि वे अल्पजीवी थे। अब गोस्वामी तुलसीदास को लीजिये जिन्होंने प्रबंधकाव्य भी लिखे हैं और स्फुट कविता भी की है। इनको ऐसी दोनों रचनाओं के छंद-संख्या की कोई तुलना ही नहीं है।

अस्तु, तात्पर्य यही है कि प्रबंध-काव्य लिखने में सब से बड़ा सुभीता यह है कि हृदय एक ओर लगा रहता है और उसमें स्फूर्ति लाने के लिए विशेष प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ती, जिसकी स्फुट काव्य के लिए पद पद पर आवश्यकता होती है। यह मानव प्रकृति के अनुकूल ही है।

ऊपर लिखा जा चुका है कि इस ग्रंथ की छंद-संख्या के अनुसार भूषण को इसकी रचना में सात वर्ष लगे होंगे, पर जैसी अभी विवेचना की गई है उससे यह भी विचारणीय है कि इस ग्रंथ के कुछ छंद इस हिसाब के बाहर पड़ते हैं। आरंभ के राजवंश, कवि, दुर्ग आदि पर रची कविता वर्णनात्मक है, सौ के ऊपर दोहे पारिभाषिक मात्र हैं और अंत के बारह पद भी अलंकार-सूची, आशीर्वाद आदि हैं। इस प्रकार डेढ़ सौ पद ऐसे हैं जिनके बनाने में स्फुट छंद के बनाने के बीच के अवकाश ही अलं है, इसलिए तीन वर्ष निकाले जा सकते हैं। और ग्रंथ का आरंभ इस हिसाब से सं० १७२७ वि० का ज्येष्ठ मास हो सकता है पर वास्तव में ऐसा नहीं हुआ है।

पूर्वोक्त कथन आगे की विचार प्रणाली पर अवलंबित है। सं० १७२० वि० के पहिले तथा रायगढ़ राजधानी होने के बाद शिवाजी की जीवनी में एक ही घटना ऐसी है, जिसका प्रभाव इन महाराज के प्रत्येक प्रजा तथा आश्रित पर अभूतपूर्व रहा होगा। शिवाजी के दिल्लीगमन के अनंतर उनके कैद होने के

समाचार से जितना इनके देश में शोक छाया था वह एकाएक इनके पूना में आ उपस्थित होने पर हर्षातिरेक में बदल गया होगा, यह प्रत्येक स्वदेशप्रेमी विचार कर सकता है। भूषण जी ने, जो दो तीन वर्ष पहिले से शिव-चरित लिख रहे थे, इस सुअवसर को ग्रंथ का आरंभ करने के लिए बहुत ही उपयुक्त समझा और इसी घटना को उन्होंने प्रथम अलंकार में स्थान दिया। बीच में सं० १७२३ से सं० १७२७ तक प्रायः तीन वर्ष से कुछ ऊपर युद्ध आदि के बदले शिवाजी राज्य के शांतिस्थापन में लगे थे, इससे भूषण की वीररससिक्त प्रतिभा तथा रौद्र कवित्वशक्ति भी शांति उपभोग करने लगी होगी। इसके अनंतर पुनः रणस्थल के द्वंद्व मचने पर इसे इन्होंने समाप्त किया होगा।

भूषण जी ग्रंथ-निर्माण के प्रेमी नहीं थे। वे किसी कार्य को लेकर बैठने वाले नहीं थे। यही कारण है कि इस ग्रंथ में यदि उन्होंने प्रधान अलंकार दिया है तो उसके भेद का पता नहीं है, एक भेद है तो अन्य नहीं है। अर्थात् देर होते देख उन्होंने इस ग्रंथ को समाप्त कर ही डाला और स्यात् स्वदेश लौट गए।

इस ग्रंथ का नामकरण बहुत ही अच्छा हुआ है। नायक, कवि तथा विषय सभी का यह द्योतक हो गया है। इस ग्रंथ की आलोचना आगे की जाएगी।

शिवाबावनी—यह एक संग्रह ग्रंथ है जिस में उसके नाम के अनुसार शिवाजी की प्रशंसा के बावन छंद संगृहीत हैं। रायबहादुर पं० श्यामबिहारी मिश्र द्वारा संपादित भूषण-ग्रंथावली में दिए हुए इस संग्रह के कुछ छंद विचारणीय हैं। उस का १४ वाँ कवित्त औरंगज़ेब की निन्दा में है और उससे शिवाजी से कोई संबंध भी नहीं है। उस संग्रह का तीसरा कवित्त

सरदार के शृंगार संग्रह में गंग कवि के नाम से दिया हुआ है। आठवाँ कवित्त शिवसिंह सरोज में इंदु कवि के नाम से उल्लिखित है। ३८ वें कवित्त के विषय में कहा जाता है कि यह चिंतामणि के लिए बनाया गया है और उसके अंतिम पंक्ति में शिवराज के स्थान पर चिंतामणि होना चाहिए। तत्कालीन इतिहास में तीन चिमना जी मिलते हैं, जिनका शुद्ध संस्कृत नाम चिंतामणि होगा। इनमें एक चिमना जी नारायण थे, जो साहू की मृत्यु पर सन् १७५० ई० में पंतसचिव नियुक्त हुए थे। यह हो नहीं सकते क्योंकि इनका समय बहुत बाद को पड़ता है। दूसरे चिमना जी दामोदर मोघे थे, जिन्होंने मुग़ल हरम के कारागार से छुटकारा पाए हुए साहू जी का साथ दिया था। यह उस समय दक्षिण खानदेश के अध्यक्ष थे। तीसरे चिमना जी आपा प्रथम पेशवा बाला जी विश्वनाथ के द्वितीय पुत्र थे। इनका जन्म सन् १७०८ ई० में हुआ था। इन्हें सन् १७२० ई० में पण्डित की उपाधि मिली। सन् १७२९ ई० में यह ससैन्य गुजरात गए। सन् १७३० ई० में इनके पुत्र सदाशिवराव भाऊ का जन्म हुआ और इनकी स्त्री रुक्माबाई की मृत्यु हुई। दूसरे वर्ष गुजरात में अपने भाई बाजीराव के साथ त्र्यंबकराव धावड़े पर विजय प्राप्त की। १७ दिसम्बर सन् १७४० ई० को इनकी मृत्यु हुई। यद्यपि इनके बड़े भाई की प्रसिद्धि अधिक है, पर यह भी उनसे किसी प्रकार घट कर नहीं थे। यह विद्याप्रेमी भी थे और शीलवान थे। बाजीराव इन्हें बहुत मानते थे। इन तीन चिमना जी में यदि कोई भूषण की इस रचना का नायक हो सकता है, तो यही हो सकते हैं। भूषण ने 'साहू को सराहों कै सराहों छत्रसाल को' कहा है और बाजीराव तथा चिमना जी दोनों ही साहू जी के मंत्री तथा सेनाध्यक्ष थे। चिमना जी ने म्लेच्छों पर कोई भी बड़ी विजय प्राप्त

नहीं की थी। भूषण ने अपनी सारी कृति में कहीं भी शुद्ध संस्कृत नाम रखने का प्रयत्न नहीं किया है, प्रत्युत बहुत कुछ नामों को बिगाड़ा ही है। वे चिमना जी नाम से प्रसिद्ध व्यक्ति के संस्कृत नाम को रखने क्यों गए। 'म्लेच्छ चतुरंग पर चिमना जी देखिए' पाठ मिलता भी नहीं। इसी कवित्त के भाव तथा शब्दावलीयुक्त भूषण के अन्य तीन कवित्त भी मिलते हैं। इस ग्रंथावली के शिवराज-भूषण का ५६ वाँ कवित्त 'इन्द्र जिमि जंभ पर' और बावनी का ३२ वाँ ३७ वाँ पद इसी भाव से पूर्ण हैं और चारों ही का अन्त इस प्रकार है—

त्यों मलिच्छ बंस पर सेर सिवराज है॥ ५६॥

जहाँ पातसाही तहाँ दावा सिवराज को॥ ३२॥

दिल्लीपति-दिग्गज के सेर सिवराज हो॥ ३७॥

म्लेच्छ चतुरंग पर सिवराज देखिए॥ ३६॥

प्रथम तीन में शिवराज ही रह सकता है। चौथे ही में पाठांतर 'चिंतामनि' कहा जाता है, पर पूर्वोक्त विचारों से यह पाठांतर ठीक नहीं है। यह शिवाजी ही के लिए रचा गया है।

सभा वाले संस्करण ही का ४८ वाँ पद शृंगार-संग्रह में निवाज कवि के नाम से छत्रसाल की प्रशंसा में मिलता है और २७ वाँ पद साहित्य-सिन्धु में कवि दत्त के नाम दिया हुआ है। इस प्रकार के सब पद इस संस्करण में यथास्थान दिए हुए हैं और पाठांतर पाद-टिप्पणी में दे दिया गया है। इस संग्रह में जिन घटनाओं का उल्लेख हुआ है, उनकी तालिका सन् संवत के साथ नीचे दी जाती है।

क्रम सं०	घटना	पद-सं०	विशेष सूचना
१	जावली के चंद्र-राव मोरे का मारा जाना।	२८	सं० १७१२ वि० (सन् १६५५ ई०)
२	साम्राज्य के लिए दारा आदि भाइयों का युद्ध।	३४	सं० १७१५ वि० (सन् १६५८ ई०)
३	अफज़ल खाँ का मारा जाना।	२८,३१	सं० १७१६ (सन् १६५९ ई०)
४	परनाला दुर्ग	२८	सं० १७१७ (सन् १६६० ई०)
५	शायस्ता खाँ की दुर्दशा।	२६	सं० १७२० (सन् १६६३ ई०)
६	सूरत की लूट, जसवंतसिंह का सिंहगढ़ न ले सकना।	२५,२६	सं० १७२१ वि० (सन् १६६४ ई०)
७	शिवाजी का बादशाही दरबार में जाना।	१४,१५	सं० १७२३ वि० (सन् १६६६ ई०)
८	काशी तथा मथुरा में मन्दिर ढहाना।	१८-२०, ३४	सं० १७२६ वि० (सन् १६६९ ई०)
९	सल्हेरि युद्ध।	२४	सं० १७२८ वि० (सन् १६७१ ई०)

क्रम सं०	घटना	पद-सं०	विशेष सूचना
१०	विदनोर विजय तथा सतारा पर अधिकार।	५,३०	सं० १७३० वि० (सन् १६७० ई०)
११	राज्याभिषेक।	३२	सं० १७३१ वि० (सन् १६७४ ई०)
१२	गोलकुंडा तथा बीजापुर जाना।	५०	सं० १७३४—५ वि० (सन् १६७७—८ ई०)

इस संग्रह में इस घटना-चक्र से यह ज्ञात हो जाता है कि सन् १६७६ ई० तक की घटनाओं का उल्लेख है। यह संग्रह भूषण ने ही किया था या बाद को किसी अन्य सज्जन ने किया है, यह ठीक नहीं कहा जा सकता। किंवदंती के अनुसार यह कहा जा सकता है कि किसी समय इन्होंने साहू महाराज को बावन छंद सुनाए थे, पर वे ये ही बावन छंद थे ऐसा निश्चय-पूर्वक नहीं कहा जा सकता। स्यात् इसी किंवदंती को सुनकर भूषण के काव्य के किसी प्रेमी ने यह संग्रह कर उसका यह नामकरण कर डाला हो।

इस संग्रह के प्रथम पाँच पद सेना के प्रयाण का प्रभाव वर्णन करते हैं और बाद के आठ पद में शत्रु-स्त्रियों की भय से क्या दुर्दशा हुई थी, यह दिखलाया गया है। पाँच छ और पद भी शिवाजी के आतंक वर्णन से भरे हुए हैं। मुसलमानों के धार्मिक अत्याचार से शिवाजी द्वारा हिंदू धर्म के बचाने का ओजपूर्ण वर्णन चार पाँच पदों में किया गया है। दो पद में मुग़ल दरबार

में इनकी धाक का अच्छा वर्णन हुआ है। शिवाजी के तलवार तथा पराक्रम के वर्णन भी दस बारह छंदों में बड़ी ज़ोरदार भाषा में किए गए हैं। वास्तव में इस संग्रह ग्रंथ में भूषण के बहुत ही अच्छे चुने हुए पदों का एकत्रीकरण हुआ है।

छत्रसाल दशक—यह भी एक छोटा सा संग्रह है। सभा वाली ग्रंथावली में चौदह पद दिए गए हैं, जिनमें दो दोहों में छत्रसाल हाड़ा तथा छत्रसाल बुँदेला का उल्लेख करते हुए भी दूसरे ही की प्रशंसा की गई है। इसके बाद दो कवित्त छत्रसाल हाड़ा की प्रशंसा में हैं. जिनमें एक 'लाल' कवि कृत कहा जाता है। दोनों ही में भूषण उपनाम नहीं है। तीसरे पद में 'लाल' उपनाम दिया हुआ है और 'भूषण' उपनाम नहीं है। आठवें पद में भी 'भूषण' शब्द नहीं आया है। उसमें 'पंचम' शब्द आया है, जिसे एक सज्जन ने किसी कवि का उपनाम माना है। मिश्र बन्धुओं ने पाद-टिप्पणी में ठीक लिखा है कि पंचमसिंह बुँदेलों के पूर्वपुरुष थे, परन्तु उन्होंने इस शब्द का इस कवित्त से क्या सम्बन्ध है, यह नहीं बतलाया है, जिससे इस शब्द को कवि का उपनाम मानने वाले सज्जन ने उन पर आक्षेप सा किया है। 'पंचम' शब्द रूढ़ि हो कर ओड़छा आदि के बुँदेला नरेशों द्वारा पदवी के समान धारण किया जाता है।* इस पद में यह शब्द छत्रसाल के लिए आया है और हो सकता है कि किसी पंचम कवि ने ही इसे बनाया हो, पर बिना प्रमाण के उसे निकालना अनुचित है। इस प्रकार इनमें तीन छंद संदिग्ध हैं, इसलिए इस दशक में नहीं रखे गए हैं और यहाँ उद्धृत कर दिए जाते हैं।

---

* मतिराम ने वृत्तकौमुदी में राजवंश वर्णन में लिखा है—

हुव चन्द्रभान बुँदेल मोद् बीरसिंह पंचम सुमन।

यहाँ पंचम शब्द बीरसिंह देव का विशेषण हो कर आया है।

निकसत म्यान तें मयूखैं प्रलै भानु कैसी,
फारैं तम तोम ज्यों गयंदन के जाल को।
लागत लपटि कंठ वैरिन के नागिन सी,
रुद्रहि रिझावै दै दै मुंडन के माल को॥
'लाल' छितिपाल छत्रसाल महाबाहु वली,
कहाँ लौं वखान करौं तेरी करवाल को।
प्रतिभट कटक कटीले केते काटि काटि,
कालिका सी किलकि कलेऊ देत काल को॥

दारा और औरँग लरे हैं दोऊ दिल्ली वाल,
एक भाजि गयो एक मारे गये चाल में।
वाजी करि दगावाजी जीवन न राखत है,
जीवन वचाये ऐसे महाप्रलै काल में॥
हाथी तें उतरि हाड़ा लड़्यो लोह लंगर दै,
कहै 'लाल' वीरता विराजै छत्रसाल में।
तन तरवारिन में मन परमेश्वर में,
पन स्वामि कारज में माथो हरमाल में॥

चले चन्दवान घनवान औ कुहूक वान,
चलत कमान धूम आसमान छ्वै रहो।
चली जमडाढ़ैं वाढ़वारैं तरवारैं जहाँ,
लोह आँच जेठ के तरनि मान ह्वै रहो॥
ऐसे समै फौजें विचलाई छत्रसाल सिंह,
अरि के चलाये पायँ बीर रस च्वै रहो।
हय चले हाथी चले संग छोड़ि साथी चले,
ऐसी चलाचली में अचल हाड़ा ह्वै रहो॥

स्फुट पद

इस संग्रह में फुटकर साठ पद एकत्र हुए हैं। इनके सिवा भूषण के नाम और भी कुछ पद पत्र पत्रिकाओं में प्रकाशित हुए हैं, पर उन पर इतनी भी श्रद्धा न हुई कि उन्हें इस संग्रह में स्थान दिया जाता। इन साठ पदों में सं० १०, ११, १४, १६, १९, २०, ३३, ५५, ५७, ५८ में 'भूषण' उपनाम नहीं आया है और इस कारण संदिग्ध हैं। भूषण का समय निश्चित करने में भी इस संग्रह के पदों पर विशेष विश्वास करना ठीक नहीं ज्ञात होता। प्रसिद्ध कवियों के नाम पर अपनी रचनाओं का प्रचार करने का साधारण मनुष्य कभी कभी साहस कर बैठते हैं, इसलिए जब तक किसी विश्वस्तसूत्र से यह निश्चित न हो जाय कि अमुक छंद भूषणकृत ही है, तब तक उसे किसी तर्क का आधारभूत मान लेना अनुचित है। इन साठ पदों में बत्तीस शिवाजी की प्रशंसा में हैं, बारह शृंगार रस के हैं और बचे हुए सोलह छंदों में तेरह व्यक्तियों की प्रशंसा की गई है। इन पदों का संग्रह जिन पुस्तकों तथा पत्रिकाओं से हुआ है, उनके नाम आदि संपादन-सामग्री की सूची में दिया गया है।

इनके सिवा जिन अन्य ग्रंथों को भूषणरचित बतलाया जाता था। उनमें से अभी तक एक भी प्राप्त नहीं है।

५—आलोचना

हिंदी साहित्येतिहास के भक्तिकाल के 'स्वांतः सुखाय' रचना करने वाले भक्तप्रवर महाकवियों का समय बीत चला था और उनके स्थान पर वे कवि अपनी प्रतिभा विकसित करने

लगे थे, जिन्हें केवल विष्णु भगवान ही का केवल ध्यान नहीं रहता था; प्रत्युत उनकी आदि शक्ति महालक्ष्मी का भी वे आह्वान करना अपना प्रधान कर्तव्य मानते थे। वे कुंभनदास जी के साथ 'लाल गिरिधर विनु और सवै वेकाम' नहीं कह उठते थे। वे चंचला लक्ष्मी की प्राप्ति में सतत यत्नवान रहते थे। ऐसे सुकवियों को इस प्रयास में ऐसे आश्रयदाताओं की खोज हुई जो धन वैभव समृद्धि पूर्ण होते हुए उदार भी हों। मुग़ल साम्राज्य का प्रभाव भारत में पूर्णरूपेण व्याप्त हो रहा था, जिससे बहुत से देशी राजे तथा कुछ मुसलमान नवावादि भी सम्राट् की कुछ सेवा वजा कर वचा समय शांतिपूर्वक विषयवासना भोग-विलासादि में व्यतीत करने लगे थे। सम्राट् अकवर, जहाँगीर तथा शाहजहाँ तीनों ही काव्य, कामिनी, कांचन के उत्कृष्ट गुणग्राहक थे और इनके अधीनस्थ राजे तथा अमीरगण भी अपने सम्राट् के इस कार्य में सच्चे अनुवर्ती थे। जिस प्रकार ये लोग कवियों की कोकिल वाणी द्वारा अपनी सभा का मनोरंजन कराने के उत्सुक थे और जिन्हें वे अपने दरवार का एक मुख्य अंग मानते थे उसी प्रकार उस समय कविगण भी एक नहीं अनेक आश्रयदाताओं की खोज में लगे रहते थे और थोड़े से स्वरचित छंदों को कुछ आगे पीछे नये छंद मिला मिला कर कई आश्रयदाताओं के नाम पर ग्रंथ रूप में ग्रथित कर कई नामकरण करते फिरते थे। इस कार्य का कारण धनलिप्सा ही था कि थोड़े से श्रम का जितना अधिक पुरस्कार प्राप्त हो सके वसूल कर लिया जाय। तात्पर्य यह कि धनलोभ के कारण ये कविगण अपने आश्रयदाताओं के मनोनुकूल कविता कर उन्हें प्रसन्न रखने में वरावर प्रयत्नशील रहते थे। ज्यों ही वे एक आश्रय में काफी धन प्राप्त कर लेते थे और अधिक की आशा

कम हो जाती थी तो वे झट दूसरे आश्रय की खोज में निकल पड़ते थे। यही कारण है कि इस काल के महान् महान् कवि भी एक एक दुर्जन आश्रयदाताओं के शरणापन्न हो रहे थे। सारांश यह कि इस रीतिकाल में शृंगार रस की प्रधानता इस कारण न थी कि वह जन साधारण के मनोनुकूल थी; प्रत्युत वह तत्कालीन आश्रयदाताओं की मनोनीत थी और इसी से कवियों ने एक प्रकार विवश होकर उसी रस में शराबोर करके कविता धारा प्रवाहित कर दी थी अर्थात् काव्य-कामिनी का एकीकरण कंचन की प्राप्ति का साधन हो रहा था।

हिन्दी-पद्य-साहित्य को आरंभ हुए पांच छ शताब्दि से अधिक बीत चुके थे, काव्य-कला प्रौढ़ हो चुकी थी और उसका भांडार भी अनेकानेक रत्नों से समुज्ज्वल हो रहा था। उस कला के रस अलंकारादि सभी अंगों के निरूपण की अब विशेष आवश्यकता थी। काव्य-कला के प्रत्येक अंग की सूक्ष्म विवेचना होने का समय आ गया था और यह कार्य उन गंभीर मननशील विद्वान कवियों का था, जो आचार्यत्व के पद के पूर्ण रूप से योग्य थे। पर देखा जाता है कि हिंदी के इन रीतिग्रंथ-लेखकों की कवित्व-शक्ति के आगे उनका आचार्यत्व नतशिर हो गया था और काव्यांगों की विवेचना, नये सिद्धांतादि का प्रतिपादन, खंडन मंडन छूट कुछ पर्याप्त या अपर्याप्त परिभाषा देकर ही वे कवि अपना काव्य-कौशल दिखलाने में लग जाते थे। संस्कृत-साहित्य में, जो हिंदी की जननी है, ऐसा नहीं हुआ है। भामह तथा दंडी से लेकर पंडितराज जगन्नाथ तक के आचार्य-कवि-परंपरा ने रीतिग्रंथ लिखने में अपनी आचार्यत्व-शक्ति का ही पूर्ण उपयोग किया है और केवल उदाहरण देने के लिये ही अपनी कवित्व-शक्ति दिखलाई है। आचार्यत्व की

प्रधान रख कर कवित्व को गौण माना है। इनके उदाहरण काव्यांगों की विवेचना करने में उसे अधिक स्पष्ट करने के लिए रचे गये हैं, न कि हिंदी आचार्यों के समान उदाहरणों में आए हुए अलंकार, नायिकाभेदादि का दोहों में अपर्याप्त लक्षण देकर उन्हें ग्रन्थ का रूप दे दिया गया है। तात्पर्य यह कि हिन्दी के प्रौढ़ महाकविगण भी इस प्रकार के ग्रन्थ लिखने में पूर्णतया सफल नहीं हुए हैं।

भक्तिकाल में भी शृंगार रस ही की प्रधानता थी। कृष्णोपासक वैष्णव संप्रदाय के भक्त कवियों ने इस रसराज के देवता श्रीकृष्ण भगवान ही की बालजीला का विशेष कर वर्णन किया है। बाललीला से तात्पर्य ब्रजलीला ही से है, क्योंकि श्रीकृष्ण जी अपने भाई बलराम जी के साथ चौदह वर्ष की अवस्था में मथुरा चले आए थे। सूरदास जी से महाकवि के वर्णन में भी इसी लीला का आधिक्य है और प्रवासलीला तो बहुत संक्षेप में कही गई है। मथुरागमन के बाद तो उद्धव-गोपी संवाद रूप में विप्रलंभ शृंगार का अविरल करुण-स्रोत बहाया गया है; परन्तु यह सब बाल-क्रीड़ा, प्रेम के अनेक रूप, संयोग तथा वियोग शृंगार सभी के वर्णन परम पुनीत वाणी में कहे गए थे। यही रसराज भक्तिकाल के अनन्तर रीतिकाल में भी प्रधान रहा, पर उसमें प्रथम काल की जो पवित्रता थी वह दूसरे काल में नहीं रही और मानव प्रकृति की तुष्टि के लिए रची जाने के कारण इसमें भोगविलास के उत्तेजक नायिका-भेद, षट्ऋतु, नखशिख आदि के वर्णन प्रचुरता से प्राप्त हैं। यही कारण था कि इस प्रकार की रचना से अपवित्र हुई वाणी को पवित्र करने के लिए भूषण ने शिवाजी के चरित्र रूपी सर में उसे नहलाया था।

कम हो जाती थी तो वे झट दूसरे आश्रय की खोज में निकल पड़ते थे। यही कारण है कि इस काल के महान् महान् कवि भी एक एक दर्जन आश्रयदाताओं के शरणापन्न हो रहे थे। सारांश यह कि इस रीतिकाल में शृंगार रस की प्रधानता इस कारण न थी कि वह जन साधारण के मनोनुकूल थी; प्रत्युत वह तत्कालीन आश्रयदाताओं की मनोनीत थी और इसी से कवियों ने एक प्रकार विवश होकर उसी रस में शराबोर करके कविता धारा प्रवाहित कर दी थी अर्थात् काव्य-कामिनी का एकीकरण कंचन की प्राप्ति का साधन हो रहा था।

हिन्दी-पद्य-साहित्य को आरंभ हुए पाँच छ शताब्दि से अधिक बीत चुके थे, काव्य-कला प्रौढ़ हो चुकी थी और उसका भांडार भी अनेकानेक रत्नों से समुज्ज्वल हो रहा था। उस कला के रस अलंकारादि सभी अंगों के निरूपण की अब विशेष आवश्यकता थी। काव्य-कला के प्रत्येक अंग की सूक्ष्म विवेचना होने का समय आ गया था और यह कार्य उन गंभीर मननशील विद्वान कवियों का था, जो आचार्यत्व के पद के पूर्ण रूप से योग्य थे। पर देखा जाता है कि हिंदी के इन रीतिग्रंथ-लेखकों की कवित्व-शक्ति के आगे उनका आचार्यत्व नतशिर हो गया था और काव्यांगों की विवेचना, नये सिद्धांतादि का प्रतिपादन, खंडन मंडन दूर कुछ पर्याप्त या अपर्याप्त परिभाषा देकर ही वे कवि अपना काव्य-कौशल दिखलाने में लग जाते थे। संस्कृत-साहित्य में, जो हिंदी की जननी है, ऐसा नहीं हुआ है। भामह तथा दंडी से लेकर पंडितराज जगन्नाथ तक के आचार्य-कवि-परंपरा ने रीतिग्रंथ लिखने में अपनी आचार्यत्व-शक्ति का ही पूर्ण उपयोग किया है और केवल उदाहरण देने के लिये ही अपनी कवित्व-शक्ति दिखलाई है। आचार्यत्व को

प्रधान रख कर कवित्व को गौण माना है। इनके उदाहरण काव्यांगों की विवेचना करने में उसे अधिक स्पष्ट करने के लिए रचे गये हैं, न कि हिंदी आचार्यों के समान उदाहरणों में आए हुए अलंकार, नायिकाभेदादि का दोहों में अपर्याप्त लक्षण देकर उन्हें ग्रन्थ का रूप दे दिया गया है। तात्पर्य यह कि हिन्दी के प्रौढ़ महाकविगण भी इस प्रकार के ग्रन्थ लिखने में पूर्णतया सफल नहीं हुए हैं।

भक्तिकाल में भी शृंगार रस ही की प्रधानता थी। कृष्णोपासक वैष्णव संप्रदाय के भक्त कवियों ने इस रसराज के देवता श्रीकृष्ण भगवान ही की बाललीला का विशेष कर वर्णन किया है। बाललीला से तात्पर्य व्रजलीला ही से है, क्योंकि श्रीकृष्ण जी अपने भाई बलराम जी के साथ चौदह वर्ष की अवस्था में मथुरा चले आए थे। सूरदास जी से महाकवि के वर्णन में भी इसी लीला का आधिक्य है और प्रवासलीला तो बहुत संक्षेप में कही गई है। मथुरागमन के बाद तो उद्धव-गोपी संवाद रूप में विप्रलंभ शृंगार का अविरल करुण-स्रोत बहाया गया है; परन्तु यह सब बाल-क्रीड़ा, प्रेम के अनेक रूप, संयोग तथा वियोग शृंगार सभी के वर्णन परम पुनीत वाणी में कहे गए थे। यही रसराज भक्तिकाल के अनन्तर रीतिकाल में भी प्रधान रहा, पर उसमें प्रथम काल की जो पवित्रता थी वह दूसरे काल में नहीं रही और मानव प्रकृति की तुष्टि के लिए रची जाने के कारण इसमें भोगविलास के उत्तेजक नायिका-भेद, षट्ऋतु, नखशिख आदि के वर्णन प्रचुरता से प्राप्त हैं। यही कारण था कि इस प्रकार की रचना से अपवित्र हुई वाणी को पवित्र करने के लिए भूषण ने शिवाजी के चरित्र रूपी सर में उसे नहलाया था।

रीतिकाल की हिन्दी कवि-परम्परा में सब से पहिला नाम कृपाराम जी का आता है, जिन्होंने सं० १५६८ ई० में अपनी 'हिततरंगिनी' समाप्त की है। यह ग्रन्थ दोहों में रसरीति पर सुन्दर ब्रजभाषा में लिखा गया है। इसके बीस वर्ष बाद ही गोपा कवि ने रामभूषण और अलंकारचन्द्रिका नामक दो ग्रन्थ लिखे थे। चरखारी वाले मोहनलाल मिश्र ने सं० १६१६ वि० के लगभग शृंगार-सागर नामक एक पुस्तक लिखी। इसी समय के लगभग करनेस कवि हुए हैं, जिन्होंने कर्णाभरण, श्रुतिभूषण और भूपभूषण तीन ग्रन्थ लिखे। यह नरहरि कवि के साथ अकबर के दरबार में भी जाते थे। इसके अनंतर नवाब 'रहीम' खानखाना का नायिका भेद तथा बलभद्र मिश्र का नखशिख और दूषण-विचार लिखा गया था। इन्हीं बलभद्र मिश्र के छोटे भाई आचार्य महाकवि केशवदास थे, जिन्होंने शास्त्रों के अनुसरण पर काव्य के सभी अंगों का विवेचन किया है। इनके बनाए आठ ग्रन्थ हैं जिनमें रसिकप्रिया तथा कविप्रिया रीति ग्रन्थ हैं। प्रथम में रसनिरूपण और द्वितीय में अलंकार, गुणदोष आदि का विवेचन है। हिन्दी साहित्यक्षेत्र में यही प्रथम आचार्य कवि हुए हैं, जिन्होंने संस्कृत के आचार्य कवि दंडी आदि की प्रथा पर काव्यरीति का पूरा प्रतिपादन किया है। इनके रीति-ग्रन्थों का रचनाकाल खोज के अनुसार सं० १६४८ वि० के लगभग है। इसके अनंतर प्रायः पचास वर्ष तक के बीच कोई भी उल्लेखनीय रीति-ग्रन्थ का निर्माण नहीं हुआ था।

सं० १७०० वि० के लगभग चिन्तामणि आदि त्रिपाठी बंधुओं की रचनाओं के साथ रीति ग्रन्थों की एक नई अखंडित परंपरा चली जो प्रायः वर्तमान काल तक चली आई। पर यह परंपरा दंडी भामह आदि के पूर्ण पर्यालोचना के अनुकरण को छोड़कर

केवल कवित्व-शक्ति दिखलाने की पूर्वोक्त प्रथा पर चली थी। इसी बीच अति संक्षेप में चन्द्रालोक की प्रथा पर लक्षण तथा उदाहरण दोनों ही को छोटे छोटे छन्दों में ठूँस कर दो एक ग्रंथ लिखे गए थे। हिन्दी के आचार्य कवि महाराज यशवंतसिंह जोधपुर नरेश ने इसी शैली पर भाषाभूषण नामक अच्छा ग्रन्थ दोहों में बनाया था। इसके अनन्तर दोहों में अलंकारादि के लक्षण देकर उदाहरण में सवैया तथा कवित्त दे देने की प्रथा सी चल निकली। इस ढंग के ग्रन्थों का हमारे साहित्य में भरमार सा हो गया है, जिनके विषय में यहाँ विशेष लिखने की कोई आवश्यकता नहीं है।

महाकवि भूषण भी इसी काल के कवि थे और इस काल की प्रायः सभी विशेषताएँ इनमें हैं, पर इन विशेषताओं के होते भी इनकी एक निजी विशेषता यह है कि इन्होंने इस काल के अनुरूप शृंगाररस प्रधान कविता न कर वीररस-पूर्ण कविता की है। अलंकार क्या है, उसकी उपादेयता क्या है, इत्यादि की विवेचना न कर इन्होंने झट उपमा से अलंकार-वर्णन आरम्भ कर दिया है। लक्षण प्रायः अपर्याप्त हैं और कहीं कहीं भ्रमपूर्ण हैं। यहाँ अपर्याप्त लक्षण से किस प्रकार भ्रम फैलता है इसके दो उदाहरण भूषण की कृति ही से दिए जाते हैं। यह इसलिए कि एक संपादकप्रवर स्वयं इस भ्रम में पड़े हुए दिखलाई पड़े, जिससे उनके ही दो भ्रम यहाँ लिखे जाते हैं। जब ऐसे योग्य संपादकगण इस प्रकार के अस्पष्ट लक्षणों से भूल में पड़ जाते हैं तब साधारण पाठकों तथा छात्रों को समझने में कितनी कठिनाई पड़ती होगी यह दुर्ज्ञेय नहीं है।

एक अलंकार का नाम विभावना है जिसके छ भेद होते हैं। भूषण ने केवल चार ही दिये हैं। दो भेदों का लक्षण एक ही दोहे में इस प्रकार दिया है—

जहाँ हेतु पूरन नहीं उपजत है पर काज।
कै अहेतु ते और यों द्वै विभावना साज॥ १८८॥

इसका अर्थ एक संपादक लिखते हैं कि 'जहाँ कारण पूर्ण होने के पहिले कार्य उत्पन्न हो जाता है, वहाँ हेतु विभावना और जहाँ बिना कारण ही कार्य की उत्पत्ति हो, वहाँ अहेतु विभावना नाम से विभावना के दो और भेद हैं।' इसके पहिले एक विभावना की आप यों व्याख्या कर चुके हैं—किसी हेतु के बिना ही कार्य होने के वर्णन को विभावना कहते हैं। इन दोनों—विभावना तथा अहेतु विभावना—की व्याख्याओं में केवल इतना भेद है कि एक में 'हेतु' शब्द के बदले 'कारण' शब्द आया है; पर ये दोनों पर्यायवाची हैं। ज्ञात नहीं कि आपने इन दोनों विभावनाओं में क्या भेद समझाया है? वास्तव में जिस विभावना को आपने अहेतु विभावना नाम दिया है उसका 'अ' अभावसूचक न होकर वैपरीत्य सूचक है अर्थात् किसी कार्य का जो कारण न हो सके उसे उसका कारण वर्णन करना एक प्रकार की विभावना है। इसका उदाहरण भी इसे इस प्रकार स्पष्ट करता है 'कारे घन उमड़ि अँगारे बरषत हैं।' काला मेघ जल बरसाता है, अग्नि नहीं, इसलिए मेघ यहाँ अग्निवर्षा का अहेतु है। 'हेतु' विभावना की व्याख्या भी कुछ भ्रामक है। मूल 'जहाँ हेतु पूरन नहीं' का अर्थ यह है कि कार्योत्पत्ति के लिए जो कारण होना चाहिए वह पूरा न हो अर्थात् अपूर्ण कारण से पूरे कार्य का हो जाना दिखलाया जाय। जैसे, दो सौ सवार लेकर सौ हजार के सेनापति को परास्त कर डालना। किसी कारण से अधिक कार्य के होने को दिखलाना ही इस विभावना का ध्येय है। इसी प्रकार छं० सं० २७१ पर 'मिथ्याध्यवसित' अलंकार की परिभाषा यों दी है—

झूठ अरथ की सिद्धि को झूठो बरतन आन।
मिथ्याध्यवसित कहत हैं भूषन सुकवि सुजान॥

संपादक जी इसकी व्याख्या यों करते हैं—'किसी झूठे अर्थ को सच्चा साबित करने के लिए कोई अन्य झूठ कहना मिथ्याध्यवसित है।' इसका उदाहरण कवि ने एक दोहे में यों दिया है—

पग रन में चल यों लसैं ज्यों अंगद पग पैन।
धुव सो भुव सो मेरु सो सिव सरजा को वैन॥

दूसरी पंक्ति का अर्थ करते हुए लिखते हैं—'शिवाजी का वचन ध्रुव, पृथ्वी और मेरु के समान अचल है। (इस दोहे में शिवाजी के लिए झूठी उपमाएँ कही गई हैं)।' इस व्याख्या से कहाँ तक अर्थ स्पष्ट हुआ है, यह विवेचनीय है। चन्द्रालोक में इस अलंकार का मिथ्याध्यवसाय के नाम से एक श्लोक में लक्षण तथा उदाहरण दोनों यों दिया गया है—

स्यान्मिथ्याध्यवसायश्चेत् असती साध्यसाधने।
चंद्रांशुसूत्रग्रथितां नभः पुष्पस्रजंवहः॥

जहाँ साध्य तथा साधन दोनों ही मिथ्या हों वहीं यह अलंकार होता है। जैसे, चन्द्रकिरणों द्वारा गुही गई आकाश-पुष्पों की माला को धारण करना मिथ्याकल्पना मात्र है। भूषण जी भी यही कह रहे हैं पर उनकी शब्दावली कुछ अस्पष्ट है, जिससे अर्थ करने में संपादक महाशय भ्रम में पड़ गये और एक झूठ को अन्य झूठ कह कर सच्चा साबित करने लगे। वास्तव में कवि यही कहता है कि झूठे साधन द्वारा किसी झूठी बात की सिद्धि का प्रयत्न करना मिथ्याध्यवसित अलंकार कहलाता है; पर इसे न समझ कर अर्थ करने में गड़बड़ी होगई। जो उदाहरण कवि ने दोहे में दिया है वह भी अस्पष्ट है, पर

कवित्त वाले उदाहरण को साथ पढ़ लेने से दोहे की अस्पष्टता दूर हो जाती है। पूरे दोहे का अर्थ इस प्रकार है—

शिवाजी का पग रण में ठीक उसी प्रकार चल है जिस प्रकार (बालिपुत्र) अंगद का (रावण की सभा में) था। शिवाजी का वचन ध्रुव, पृथ्वी और मेरु के समान चल है। पहिली पंक्ति ही का 'चल' शब्द द्वितीय पंक्ति में उसी प्रकार लागू है जिस प्रकार दूसरी का 'शिव सरजा को' पहिली में 'पग' के पहिले प्रयुक्त होगा। अर्थात् दोनों पंक्ति का मिलाकर अर्थ करना चाहिए। संपादक जी ने 'चल' के स्थान पर 'अचल' रखकर इस अलंकारत्व ही का लोप कर दिया है। उस पर टिप्पणी भी यह दे दी है कि शिवाजी के लिए झूठी उपमाएँ दी गई हैं। इस अलंकार का तो यही तात्पर्य है कि कवि दोनों ही बातें अशुद्ध कहता है, पर पाठकों या श्रोताओं के मन में उसका उलटा शुद्ध अर्थ जम जाता है। शिवाजी का वचन मेरु के समान अचल है, यह उपमा अलंकार है। शिवाजी का वचन मेरु के समान चल है, यह मिथ्याध्यवसित है। मेरु पर्वत अचल है, यह सभी जानते हैं तब उसे चल कहना मिथ्या है। शिवाजी भी दृढ़व्रती हैं और उन्हें झूठा कहना भी मिथ्या है, पर इस झूठी बात का मेरु की चलायमानता से समता करते हुए सिद्ध करना ही मिथ्याध्यवसित अलंकारत्व है।

रीतिकाल की रीति के अनुसार अपर्याप्त लक्षणों द्वारा किस प्रकार भ्रम फैलता है इसका दिग्दर्शन हो चुका। भूषण के लक्षणों तथा उदाहरणों के विषय में अन्यत्र विचार किया गया है, इसलिये इस विषय पर यहाँ इतना ही अलं है।

जैसा लिखा जा चुका है, रीतिकाल का प्रधान रस शृंगार ही रहा है। यद्यपि प्रायः सभी कवियों ने अपने अपने आश्रय-

दाताओं की प्रशंसा में वीर रस की कविता की है, उनके आतंक, प्रभुत्व तथा सेनादि के प्रयाणादि का भी अच्छा वर्णन किया है, पर वह केवल प्रथापालन मात्र था या अपने आश्रय देने वालों का परिचय देना आवश्यक समझ कर निर्मित हुआ था। ऐसे वर्णन, जो इन कवियों के उत्साहपूर्ण हार्दिक उद्गार नहीं थे, प्रत्युत् बलात् आवश्यक समझ कर या प्रथापालन के लिए बनाये गए थे, कभी लोकप्रिय नहीं हो सकते थे। उनसे उन कवियों के आश्रयदाताओं के विषय में कुछ जानकारी अवश्य मिल जाती थी, जिनमें कितनों का स्यात् इतिहास में पता भी नहीं है। कभी कभी अच्छे अच्छे सुकवियों ने साधारण पुरुषों का ऐसी बढ़ा चढ़ाकर वर्णन किया है कि वे पाठकों की सहानुभूति के बदले उनकी ईर्ष्या के पात्र हो जाते हैं। भूषण ने ऐसा एक प्रकार कहना चाहिए कि नहीं किया है। वे शृंगार-रसप्रधान काल में हो कर भी उस काल के वीर रस के एक मात्र महाकवि हो गए हैं। इन्होंने शृंगार रस की भी कुछ कविता की है, पर वह बहुत थोड़ी प्राप्त है। यहाँ वीररस विवेच्य है।

अनुभाव-विभावादि की सहायता से स्थायीभाव में जो प्रबल आनन्दातिरेक होता है वही रस कहलाता है। काव्य के श्रवण अथवा नाटक के दर्शन से आलंबन उद्दीपन विभाव, कटाक्षादि अनुभाव, स्तंभ आदि सात्विक भाव तथा निर्वेद-ग्लानि आदि संचारी भाव के द्वारा अभिव्यक्त हृदयस्थित रति, उत्साह आदि स्थायीभाव ही शृंगार, वीर आदि रसों में परिणत हो जाते हैं। विभाव के आलंबन और उद्दीपन दो भेद हैं। स्थायीभावों के उद्बोधन के जो परिपोषक हैं वे विभाव कहलाते हैं। नायक प्रतिनायक नायिकादि, जिनका आश्रय लेकर रस की उत्पत्ति होती है, वही आलंबन हैं और जिनसे रस-निष्पत्ति होने

पर उद्दीप्ति प्राप्त हो वही उद्दीपन है। विभावों द्वारा उद्बुद्ध स्थायीभाव को बाहर प्रकट करने वाले कार्य अनुभाव कहलाते हैं। अनुभाव ही में परिगणित पर अंतःकरण के विशेष धर्म सत्व से उत्पन्न स्तंभ स्वेदादि आठ सात्विक भाव होते हैं। दोनों ही शारीरिक विकार हैं। स्थायीभाव में क्षण मात्र के लिए उत्पन्न और नष्ट होने वाले जो अनेक गौण अस्थिर भाव होते हैं, वे ही व्यभिचारी या संचारी भाव कहलाते हैं।

रस आठ हैं, जिनके नाम शृङ्गार, वीर, करुण, हास्य, रौद्र, वीभत्स, भयानक और अद्भुत हैं। भूषण की कविता में वीर रस प्रधान है, इसलिए इसी रस के विभाव अनुभावादि का यहाँ उल्लेख किया जाता है। वीर रस का स्थायीभाव उत्साह है। नायक तथा प्रतिनायक आलंबन विभाव और विजयेच्छा रूप में चेष्टा आदि उद्दीपन है। युद्ध आदि के सहायक शस्त्र, सेना आदि का अन्वेषण, तैयारी अनुभाव हैं। धैर्य, मति, गर्व, स्मृति, तर्क और रोमांच व्यभिचारी हैं। वीर चार प्रकार के माने जाते हैं—दानवीर, दयावीर, धर्मवीर और युद्धवीर। उत्साह के स्थायीभाव होने के कारण कुछ आचार्य कर्मवीर, विद्यावीर आदि अनेक और भेद भी मानना उचित समझते हैं, जो पूर्वोक्त चारों भेद के अंतर्गत नहीं आसकते। एक उदाहरण लेकर वीर रस के इन अंगों के क्रमिक विकास पर विचार कीजिए—

साजि चतुरंग वीर रंग में तुरंग चढ़ि,
सरजा सिवाजी जंग जीतन चलत है।
'भूषन' भनत नाद विहद नगारन के,
नदी नद मद गैबरन के रलत है॥
पेल फैल खैल भैल खलक में गैल गैल,
गजन की ठेल पेल सैल उसलत है।

तारा सो तरनि धूरि-धारा में लगत जिमि,
थारा पर पारा पारावार यों हलत है॥

इस कवित्त में शिवाजी के विजय-प्रयाण का वर्णन किया गया है। युद्ध के लिए शिवाजी के हृदय में जो उत्साह है वही स्थायीभाव इस पद में दर्शाया गया है। इस भाव को रस का रूप देने के लिए विभावादि आवश्यक हैं। यह युद्धोत्साह दो पक्ष के बीच में स्थित रह सकता है। शिवाजी उत्तम-प्रकृति वीर-नायक तथा जिस पर चढ़ाई की जा रही है वह विधर्मी प्रति-नायक आलंबन हैं। विजय की इच्छा से जो प्रयत्न किया जा रहा है वही उद्दीपन है। चतुरंगिणी सेना का सजाना इत्यादि अनुभाव हैं। युद्ध विजय करने ही को चलना, खलक में खलभल मचना आदि गर्व, स्मृति आदि संचारियों की सूचना देता है। इस प्रकार इस पद में वीर रस का अच्छी प्रकार परिपाक हुआ है। अब भूषण की समग्र कविता पर इसी प्रकार विवेचना करने का प्रयत्न किया जाता है।

वीर रस का स्थायीभाव उत्साह अत्यंत अमूल्य वस्तु है जो प्रेम से बढ़ कर न होने पर भी उससे कम नहीं है। प्रेम में भी उत्साह की आवश्यकता है और उसके बिना वह प्रेम पंगु हो जाता है। जिस प्रकार शृङ्गार रस का परिपाक नायक नायिका का आलंबन मिलने से होता है उसी प्रकार वीर रस का परिपाक नायक तथा प्रतिनायक का आलंबन लेकर होता है। नायक में जितना उत्साह प्रतिनायक को विजय करने के लिए होता है उतना ही प्रतिनायक में भी नायक के प्रति रहता है। दोनों ही पक्ष में समान रूप से एक दूसरे पर विजय प्राप्त करने का उत्साह बना रहता है। दानी में दान देने का और याचक में ईप्सित धन पाने का समान उत्साह रहता है। महाकवि

भूषण ने यह रस चुनकर जितनी तत्सामयिक समाज की आवश्यकता समझने की अपनी अनुभवशालीनता दिखलाई है उससे बढ़कर अपने नायक के चुनने में बुद्धिमानी दिखलाई है। यद्यपि इनके दर्जनों आश्रयदाता रहे हों, पर उन सब की इनकी प्रशंसा विद्वन्मंडली तथा जनसाधारण में आदृत न होती यदि वे प्रातःस्मरणीय महाराज छत्रपति शिवाजी भोसला को अपनी वीर-रसमयी कविता का आलंबन न बनाते। पन्नाराज्य-संस्थापक महाराज छत्रसाल भी ऐसे ही एक वीर हो गए हैं। भूषण ने शिवाजी ही पर विशेष कविता की है और उनमें वीर रस के चारों प्रधान भेद का आरोपण किया है। अनन्वय अलंकार का उदाहरण देते हुए तथा शिवाजी की दानवीरता का वर्णन करते हुए उन्हें उन्हीं सा कहा है—

साहि-तनै सरजा तव द्वार,
　　प्रतिच्छन दान की दुंदुभि बाजै।
भूषन भिच्छुक भीरन को,
　　अति भोजहु ते बढ़ि मौजनि साजै॥
राजन को गन, राजन को, गनै?
　　साहिन में न इती छवि छाजै।
आजु गरीबनेवाज मही पर,
　　तो सो तुही सिवराज बिराजै॥

धर्म के रक्षक धर्मवीर शिवाजी ही ने उस समय हिंदू-धर्म की कहाँ तक रक्षा की थी यह कवि इस प्रकार कहता है—

कुंभकर्न असुर औतारी अवरंगजेब,
　　कीन्ही क़त्ल मथुरा दोहाई फेरी रब की।
खोदि डारे देवी देव सहर मुहल्ला बाँके,
　　लाखन तुरुक कीन्हें छूटि गई तब की॥

भूषन भनत भाग्यो कासीपति विस्वनाथ,
और कौन गिनती मैं भूली गति भव की।
चारों वर्न धर्म छोड़ि कलमा नेवाज पढ़ि,
सिवाजी न हो तो तौ सुनति होति सब की॥

अब केवल एक ही सवैया यहाँ और उद्धृत की जाती है, जिसमें भूषण ने स्वयं शिवाजी में दान, दया, युद्धप्रियता आदि अनेक प्रकार की वीरता का उल्लेख किया है—

सुंदरता गुरुता प्रभुता भनि,
भूषन होत है आदर जा में।
सज्जनता औ दयालुता दीनता,
कोमलता झलकै परजा में॥
दान कृपानहु को करिबो,
करिबो अभै दीनन को बर जामें।
साहस सों रन टेक बिवेक,
इते गुन एक सिवा सरजा में॥

कवि को जिस प्रकार सौभाग्य से शिवाजी से नायक मिल गए थे, उसी प्रकार प्रतिनायक भी औरंगज़ेब सा मिल गया था, जो प्रबल प्रतापी सम्राट् होने पर भी हिंदू जाति के लिए महान् अत्याचारी प्रसिद्ध हो रहा था। कवि ने इस प्रकार संयोग से प्राप्त नायक तथा प्रतिनायक का ऐसा चित्र खींचा है कि पाठकों की एक के प्रति जितनी अश्रद्धा तथा क्रोध बढ़ता जाता है, उतनी ही दूसरे के प्रति श्रद्धा और सहानुभूति भी बढ़ती जाती है। यही भूषण की कविता की लोकप्रियता की कुंजी है। जिस प्रकार कवि ने एक ओर शिवाजी को विष्णु, राम, कृष्ण आदि का अवतार वर्णित कर ऊँचे उठाया है, उसी प्रकार दूसरी

और 'कुंभकर्ण औतारी अवरंगज़ेब' के अत्याचारों का वर्णन किया है।

किबले की ठौर बाप बादसाह साहजहाँ,
ताको कैद कियो मानो मक्के आगि लाई है।
बड़ो भाई दारा वाको पकरि के कैद कियो,
मेहु हू नाहिं माँ को जायो सगो भाई है॥
बंधु तो मुराद बक्स बादि चूक करिबे को,
बीच दै कुरान खुदा की कसम खाई है।
भूषन सुकवि कहै सुनो औरंगज़ेब एते,
काम कीन्हे फेरि पातसाही पाई है॥

इसे तथा ऐसे वर्णन को पढ़कर औरंगज़ेब और उसकी बादशाही पर सभी को घृणा होगी। साथ ही अन्य धर्म वालों पर उसके राक्षसी अत्याचार का वर्णन जो पढ़ेगा उसे उस पर रत्ती भर भी सहानुभूति नहीं रह जाएगी। 'कत्ल आम, देवल गिरावतें' आदि का अभी ऊपर उल्लेख हो चुका है। इस प्रकार प्रतिनायक के प्रति अश्रद्धा उत्पन्न करते हुए भी उसके प्रबल प्रताप का वर्णन किया गया है, जिस से उस पर विजय प्राप्त करने वाले नायक का अत्युत्कर्ष दिखलाया जा सके।

जीति रही औरंग में सबै छत्रपति छाँड़ि।
तजि ताहू को अब रही सिव सरजा कर माँड़ि॥

जाहि देत दंड सब डरिकै अखंड सोई दिल्ली दलमली तो तिहारी कहा चली है?

प्रतापी प्रतिनायक के प्रति पूर्णतया अश्रद्धा उत्पन्न कर उसके प्रतिस्पर्धी नायक के प्रति जनता की सहानुभूति यों आकर्षित की है—

वेद राखे विदित पुरान राखे सार युत,
रामनाम राख्यो अति रसना सुघर में।
हिंदुन की चोटी रोटी राखी है सिपाहिन की,
काँधे में जनेऊ राख्यो माला राखी गर में॥
मीड़ि राखे मुग़ल मरोड़ राखे पातसाह,
वैरी पीसि राख्यो वरदान राख्यो कर में।
राजन की हद्द राखी तेग वल सिवराज,
देव राखे देवल स्वधर्म राख्यो घर में॥

इस कथन से अत्याचार-पीड़ित हिन्दुओं के हृदय में शिवाजी के प्रति सहानुभूति उमड़ पड़ती है और 'आय धर्यो हरि ते नर रूप पै काज करै सबही हरि के' कह कर उस पर श्रद्धा की अटल सत्ता स्थापित कर दी जाती है।

इस प्रकार कवि ने आलंबन को स्थापित करके उसकी उद्दीप्ति के लिए भी वर्णन रखे हैं। छत्रपति शिवाजी महाराज ने अपने जीवन का जो ध्येय बना रखा था उसे भी कवि ने दिखलाया है। दक्षिण के सुलतानों तथा उत्तर से दक्षिण की ओर बढ़ती हुई मुग़ल शक्ति का दमन करते हुए स्वधर्म और स्वदेश की रक्षा के लिए ही इनके सब प्रयास थे। उस समय स्वधर्म की क्या दशा थी और इनके प्रयत्न से क्या हुआ यह कवि दिखलाता है—

यों कवि भूषन भाषत हैं यक तौ पहिले कलिकाल की सैली।
तापर हिंदुन की सब राह सु नौरंगसाह करी अति मैली॥
साहितनै शिव के डर सों तुरकौ गहि वारिधि की गति पैली।
वेद पुरानन की चरचा अरचा द्विज देवन की फैली॥

शिवाजी का हिंदू, हिंदुस्थान तथा हिन्दू धर्म पर इतना प्रेम

था और वह इसकी रक्षा में इतने दत्तचित्त हो रहे थे कि इनका पृथ्वी पर एक मात्र यही काम रह गया था।

काज मही शिवराज बली हिन्दुवान बढ़ाइबे को उर ऊटै।
भूषन भू निरम्लेच्छ करी चहै म्लेच्छन मारिबे को रन जूटै॥
हिन्दु बचाय बचाय यही अमरेस चँदावत लौं कोइ टूटै।
चंद अलोक ते लोक सुखी यहि कोक अभागे को शोक न छूटै॥

कवि ने यहाँ एक मर्म की बात कह कर नायक के देश-जाति-प्रेम की अत्युत्कृष्टता दिखला दी है। विभीषणवत् स्वदेश तथा स्वजाति से द्वेष करने वालों को भी बचाने तथा उनके मारे जाने पर कुछ दुखी होने में नायक का प्रेमभाव बहुत उन्नत हो गया है। शस्त्रों तथा सेना-संचालन के ओजपूर्ण वर्णन शिवाबावनी के कई छंदों में दिए गए हैं। शिवाजी के विजयों से समग्र मुग़ल बादशाहत में कैसा आतंक छा गया था इसका कवि ने अत्यंत रोमांचकारी पर अत्युक्तिपूर्ण वर्णन किया है। इस प्रकार देखा जाता है कि महाकवि-भूषण वास्तव में वीर रस के कवि थे और उनकी कविता में इस रस का पूर्ण रूप से परिपाक हुआ है।

अलंकार

महाकवि भूषण को अलंकार क्या वस्तु है, इसकी विवेचना करना स्यात् ठीक या आवश्यक नहीं समझ पड़ा या उसके लिए उन्हें अवकाश ही नहीं मिला। अस्तु, संस्कृत के दो एक आचार्यों के वचन यहाँ उसके स्पष्टीकरण के लिए दे दिए जाते हैं। आचार्य दंडी लिखते हैं —

काव्यशोभाकरान् धर्मानलंकारान् प्रचक्षते।
ते चाद्यापि विकल्प्यन्ते कस्तान् कार्त्स्न्येन वक्ष्यति॥

अलंकार शब्द का साधारण अर्थ शरीर की शोभा बढ़ाने वाला आभूषण है। काव्यजगत के अलंकारों के लिए भी शोभा बढ़ाने को कोई आश्रय चाहिए। इसके लिए काव्यादर्श के पहिले परिच्छेद में इन्हीं आचार्य ने लिखा है कि—

तैः शरीरं च काव्यानामलंकाराश्च दर्शिताः।
शरीरं तावदिष्टार्थव्यवच्छिन्ना पदावली॥

इष्ट अर्थात् वांछनीय अर्थ को देने वाला शब्दों का समूह काव्य का शरीर कहलाता है अर्थात् केवल शब्द ही नहीं, प्रत्युत् इष्ट अर्थ-संयुक्त पदावली ही शरीर कहला सकती है। कुछ लोगों का मत है कि यह पदावली रसात्मक होनी चाहिए अर्थात् निष्प्राण शरीर कितना भी सुन्दर हो, पर उसमें प्राणप्रतिष्ठा करना ही कवि का प्रथम धर्म होना चाहिए। ऐसे सरस इष्ट अर्थ देने वाले काव्य की शोभा बढ़ाने वाले उपमा, उत्प्रेक्षादि धर्म ही अलंकार कहलाते हैं।

इस प्रकार काव्य-पदावली में शब्द तथा अर्थ के सामंजस्य के साथ सारस्य होने पर उसे जिस साधन से चमत्कारोत्पत्ति के लिए विशेष अलंकृत किया जाय, वही अलङ्कार है। ये दो प्रकार के होते हैं—अर्थालंकार और शब्दालंकार। जिनमें ये दोनों मिलते हैं, वे उभयालंकार कहे जाते हैं। अर्थालंकार साधारणतः सौ हैं, जिनमें आचार्यों के मतानुसार घटी बढ़ी होती रहती है। इन अलंकारों को उनके अंतर्सिद्धांतों के अनुसार स्वसंपादित भाषा-भूषण ग्रंथ में कई श्रेणियों में विभाजित करने का प्रयत्न किया गया है, जिनमें साम्य, विरोध, शृंखला, न्याय तथा वस्तु प्रधान हैं। शिवराज-भूषण में भी कवि ने सौ अर्थालंकार

तथा पाँच शब्दालंकार का वर्णन किया है। जैसा लिखा जा चुका है भूषण जी भी अपने समय के प्रभाव से नहीं बचे और उन्होंने यह अलंकार ग्रंथ लिख डाला। इससे उनकी वीर रस की प्रौढ़ कवित्व-शक्ति का पूर्ण परिचय मिलते हुए भी इनके आचार्यत्व का परिचय उसी मात्रा में नहीं मिलता। अपर्याप्त लक्षण किस प्रकार अच्छे अच्छे विद्वान को भ्रम में डाल देता है, यह दिखलाया जा चुका है। इसी प्रकार इस ग्रंथ में कुछ अलंकारों के लक्षण अशुद्ध हैं और कुछ के उदाहरण भी ठीक नहीं हैं। यहाँ केवल इसी की विवेचना की जाएगी। एक परिशिष्ट में सभी अलंकारों का उदाहरणसहित गद्य में संक्षिप्त विवरण दे दिया गया है; पर थोड़े का कुछ विशद रूप में यहाँ विचार भी किया जाएगा। ग्रंथ के प्रारंभ में कवि ने उपमा की परिभाषा दी है और उसके दो उदाहरण दिए हैं। उसके भेदों में से केवल एक लुप्तोपमा दिया गया है और उसके भी अनेकों उपभेदों में केवल एक ही वर्णित है। उपमा के चार अंग उपमेय, उपमान, वाचक तथा धर्म हैं, पर प्रथम दो का छं० सं० ३३ में लक्षण दिया गया है और अन्य दो का नहीं। इस प्रकार ग्रंथ में दिए गए पहिले ही अलंकार का यह हाल है कि उसका अधूरा क्या तिहाई अंश का भी वर्णन नहीं दिया है। उपमा की परिभाषा यों दी गई है—

> जहाँ दुहुन की देखिये सोभा बनत समान।
> उपमा भूषन ताहि को भूषन कहत सुजान॥

'जहाँ दोनों की समान शोभा बनती देखिए, उसको सुजान भूषन उपमा अलंकार कहते हैं'। भाषा-वैचित्र्य जाने दीजिए, यहाँ यह भी नहीं स्पष्ट है कि उपमा अलंकार क्या है, समान शोभा उपमा है या उस शोभा का दर्शन। कमल और मुख की शोभा ठीक बराबर होते हुए भी उनमें किसी में अभी उपमा

अलंकार शोभायमान नहीं हुआ। दो भिन्न वस्तुओं के सादृश्य दिखलाने या समान धर्म बतलाने को उपमा अलंकार कहते हैं। कमल और नेत्र दो भिन्न वस्तुएँ हैं और इन दोनों में समान धर्म स्थापित करने ही पर इसमें उपमा अलंकार का प्रस्फुटन होगा। कवि ने इस प्रकार पहिले ही अलंकार का स्पष्ट लक्षण तथा सभी भेदों और उपभेदों को न देकर मानों अस्पष्टतः कह दिया है कि वे इस ग्रंथ की रचना अलंकार विवेचना ही के लिए नहीं कर रहे हैं; प्रत्युत् शिवाजी की कीर्ति वर्णन करने ही के लिए उन्होंने 'भाँति भाँति भूषननि सों कवित्त को भूषित किया था'। सब अलंकारों तथा उनके भेदों का विश्लेषण वे नहीं करने बैठे थे।

इस अलंकार का प्रथम उदाहरण उस घटना से लिया गया है, जिससे शिवाजी औरंगज़ेब के दरबार में गए थे। इन्हें इनकी योग्यतानुसार उच्चपदस्थ मंनसबदारों में न खड़ा कर पाँच हज़ारी मंनसब वाली श्रेणी में स्थान दिया गया था जो मंसब इनके छोटे से पुत्र तथा इनके एक सेनापति को मिल चुका था। इस कारण शिवाजी बहुत क्रोधित हुए और उन्होंने 'भेंट होते ही चकत्ता की ओर देखकर उसे उसी प्रकार कुरुख किया जिस प्रकार इन्द्र ने कृष्ण जी को किया था।' यहाँ शिवाजी को इन्द्र तथा औरंगज़ेब को श्रीकृष्ण के समान कहा गया है, जो अनुचित है और साथ ही पौराणिक कथा के भी अनुकूल नहीं है। इन्द्र ही दुचित्त हुआ था और दो बार हुआ था। पहिले पकवान्न न प्राप्त होने से और दूसरी बार वर्षा का कुछ न असर होने से। दूसरे उदाहरण में महाभारत के पात्रों से शिवाजी तथा उनके प्रतिद्वंद्वियों की तुलना की गई है। महाभारत का युद्ध भाई भाई का था, और भूषण जी ने मुसलमानों को हिंदूधर्म के शत्रु अत्या-

चारी विधर्मी कहते हुए भी उनके सेनानियों की कौरवों ने उपमा दी है। भ्रातृ-युद्ध की देश-स्वातंत्र्य-युद्ध से तुलना करना अनुचित है। महाभारत में कौरव-पक्ष के प्रधान दुर्योधन और पांडव पक्ष के युधिष्ठिर थे। अर्जुन पंचपांडव में सर्वश्रेष्ठ वीर थे। भूषण के समय एक पक्ष के प्रधान शिवाजी और दूसरे पक्ष के प्रधान सम्राट् औरङ्गज़ेब थे। उसके एक सर्दार शायस्ता खाँ को दुर्योधन की उपमा देना भी समीचीन नहीं है। साथ ही जिस प्रकार अर्जुन ने जयद्रथ को मारा था, उसी प्रकार शिवाजी ने किस को मारा; इसका भी उल्लेख नहीं है। छत्र शब्द मात्र से कुछ अर्थ निकालना होगा।

प्रतीप शब्द का अर्थ प्रतिकूल, विरुद्ध है। अलंकार-सर्वस्व में लिखा है कि 'उपमानं प्रतिकूलत्वादुपमेयस्य प्रतीपमिति व्यपदेशः' अर्थात् जब उपमेय उपमान का प्रतिद्वंद्वी हो जाता है, तभी प्रतीप अलंकार होता है। संस्कृत आचार्यों ने इसके दो भेद इस प्रकार किए हैं। 'प्रसिद्धस्योपमानस्योपमेयत्वप्रकल्पनम्। निष्फलत्वाभिधानं वा प्रतीपमिति कथ्यते॥ (साहित्य दर्पण १० परि० ८७-८८) अर्थात् पहिला भेद वह है जिसमें प्रसिद्ध उपमान की वस्तु उपमेय रूप में वर्णित हो और दूसरे भेद में उपमान निष्फल या व्यर्थ से कहे जाँय। हिन्दी आचार्यों के ये प्रथम और पंचम प्रतीप हुए। अन्य तीन भेद भी कुछ संस्कृत-आचार्यों ने ग्रहण किए हैं, जो हिंदी में द्वितीय, तृतीय तथा चतुर्थ प्रतीप कहलाते हैं। उपमा तथा प्रतीप में यही अंतर है कि पहिले में दोनों उपमेय तथा उपमान समान वर्णित होते हैं और दूसरे में उपमा प्रधान होते भी या तो उपमेय को उपमान बना देते हैं या दो में से एक को घटा बढ़ा कर वर्णन करते हैं। इसी प्रकार व्यतिरेक में इससे अधिक इतनी ही विशेषता है कि

उसमें उपमेय उपमान से जिस बात में अधिक कहा जाता है, वह स्पष्ट वर्णित होता है। जैसे यह कथन व्यतिरेक है कि मुख कमल सा है पर उससे मीठी बातें भी निकलती हैं।

शिवराज-भूषण में इन पाँचों प्रतीपों का वर्णन है। इनमें दो विचारणीय हैं। द्वितीय प्रतीप की परिभाषा कवि ने यों की है—करत अनादर वर्ण्य को पाय और उपमेय। अर्थात् अन्य उपमेय पाकर (जब उपमान) उपमेय का अनादर करता है। एक संपादक ने इस अस्पष्ट लक्षण को न समझ कर यह व्याख्या की है कि 'जहाँ उपमान को उपमेय मानकर वर्णनीय का अनादर किया जाय।' इसका उदाहरण निम्नलिखित दोहे में दिया गया है—

शिव ! प्रताप तव तरनि सम अरि पानिप-हर मूल।
गरब करत केहि हेत है बड़वानल तो तूल॥

हे शिवाजी, आपका प्रताप सूर्य के समान शत्रु के पानी को मूल तक सुखा देने वाला है, पर तब भी वह क्यों गर्व करता है, बड़वानल तुम्हारे समान है। अब विचारणीय यह है कि द्वितीय प्रतीप की भूषणकृत परिभाषा तथा उदाहरण मिलते जुलते हैं और एक दूसरे का समर्थन करते हैं या नहीं। परिभाषा कहती है कि उपमेय तिरस्कृत हो पर उदाहरण में दोनों—प्रताप और बड़वानल समान कहे गये हैं। तृतीय प्रतीप का लक्षण तथा उदाहरण एक दूसरे को पुष्ट करते हैं। उपमान चाँदनी का उपमेय कीर्ति द्वारा तिरस्करण दिखलाया गया है। पर इसी प्रकार द्वितीय प्रतीप में उपमेय प्रताप का उपमान बड़वानल से अनादृत होना नहीं दिखलाया गया है। काव्यप्रकाश १० म उल्लास में लिखा है 'यत् असामान्यगुणयोगान्नोपमानभावपि अनुभूतिपूर्वि, तस्य तत्कल्पनायामपि भवति प्रतीपमिति

प्रत्येतव्यम्'। अर्थात् किसी वस्तु का किसी गुण में बहुत बढ़ कर होना दिखलाने पर दूसरे से उसकी समता की जाय। जब पहिला दूसरे का उपमान बना दिया जाय, तब वह भी प्रतीप कहलाता है। इस दोहे में इस भेद के उदाहरण को होना ज्ञात होता है।

पंचम प्रतीप का लक्षण यों कहा गया है कि 'उपमेय से हीन होकर उपमान नष्ट होता है।' यह अशुद्ध है, वास्तव में उपमान व्यर्थ और निष्फल हो जाता है और सादृश्य योग्य नहीं रह जाता है। पहिले उदाहरण में कहा गया है कि 'शेष, ऐरावत, हाथी, हंस, महादेव, अमृत का तालाव सभी तुम्हारे समान हैं, पर सब संसार छोड़कर भाग गये हैं। इस लिये हे शिवाजी, तुम्हारे यश के समान आज किसे गिनें ?' उदाहरण ही की भाषा देखिये। 'तो सम को' तो शिवाजी के लिए है और शेष आदि यश के उपमान हैं। परिभाषा करते हैं कि उपमान-हीन होकर नष्ट हो जाय, पर उदाहरण में सम होकर दुनिया छोड़ गया है। अन्य दोनों उदाहरण निष्फलत्व के अच्छे उदाहरण हैं।

'साम्यादतस्मिन् तद्बुद्धिः भ्रांतिमान् प्रतिभोत्थितः' (सा० द०) अर्थात् किसी वस्तु में सादृश्य के कारण अन्य वस्तु का भ्रम कविकल्पना द्वारा उत्पन्न किया जाय। इस नाम की व्युत्पत्ति अलंकार-सर्वस्वकार ने यों की है 'भ्रांतिश्चित्तधर्मः स विद्यते यस्मिन् भणितिप्रकारे स भ्रांतिमान्।' यह ठीक है पर अलंकार स्वतः भ्रांत नहीं है और इससे उसका नाम भ्रांतिमान् रखना अनुचित है। रसगंगाधर में पंडितराज लिखते हैं कि "अत्र च भ्रांतिमात्रमलंकारः। भ्रांतिमानलंकार इति व्यवहारस्त्वौपचारिकः। तथा चाहुः। 'प्रमात्रन्तरधीभ्रांति-

रूपा यस्मिन्ननूद्यते । 'स भ्रांतिमानितिख्यातोऽलंकारे त्वौपचारिकः ॥'' इस कारण भ्रांति या भ्रम ही अलंकार का नामकरण ठीक है। इस अलंकार में दो बातें अवश्य होनी चाहिए। (१) भ्रम या भ्रांति साम्य पर ही स्थित हो और (२) भ्रम काल्पनिक मात्र हो, वास्तविक न हो। भूषण ने भ्रम की परिभाषा यों दी है कि 'अन्य में अन्य बात का जहाँ भ्रम होय वहाँ यह अलंकार होता है, रज्जु में सर्प का भ्रम होना आलंकारिक चमत्कार नहीं है। 'दामोदरकराघातचूर्णिताशेषवक्षसा। दृष्टं चाणूरमल्लेन शतचंद्रं नभस्तलम् ।' यहाँ चन्द्रमा में सौ चंद्र का भ्रम घूँसे की चोट से हुआ है, सादृश्य से नहीं हुआ है, इस लिये इन दोनों उदाहरणों में भ्रम अलंकार नहीं है। इसी कारण भूषण का किया हुआ लक्षण भी पर्याप्त नहीं है, प्रत्युत् भ्रामक है। उदाहरण जो दिया गया है उसमें भ्रम कहीं नहीं है और स्यात् वह भ्रमवश ही इस अलंकार का उदाहरण मान लिया गया है।

प्रस्तुताद्वाच्यादप्रस्तुतस्य प्रतीयमानत्वे संक्षेपेणार्थयोः कथनमित्यन्वर्था समासोक्तिः। (एकावली पृ० २५४) मम्मट भी लिखते हैं कि 'समासेन संक्षेपेण अर्थद्वयकथनात् समासोक्तिः '। दो बातों को एक ही में संक्षेप में कहने से इस अलंकार का समासोक्ति नामकरण हुआ है। साहित्य-दर्पण में इसका लक्षण यों दिया है ''यत्र समैः कार्यलिंगविशेषणैः अन्यस्य वस्तुनः प्रस्तुते व्यवहारसमारोपः सा समासोक्तिः''। अर्थात् कार्य, लिंग तथा गुण की समानता देख कर अन्य के धर्म का प्रस्तुत में समारोप किया जाय। यहाँ अन्य से तात्पर्य उससे है जिसका वर्णन नहीं हो रहा है। इस प्रकार इस अलंकार में (१) कार्य (२) लिंग तथा (३) विशेषण तीनों में

से किसी का साम्य होना आवश्यक है। अंतिम का साम्य श्लेष, संबंध तथा उपमा तीन प्रकार से हो सकता है। महाकवि भूषण इसका लक्षण यों कहते हैं—बरनन कीजै आन को ज्ञान आन को होय। बस, समासोक्ति अलंकार की परिभाषा पूर्ण समझ ली गई। उदाहरण तीन दिए गये हैं और तीनों ही औपम्यमूलक विशेषणों के साम्य द्वारा समारोपित किए गए हैं। तात्पर्य यह है कि लक्षण अपर्याप्त है।

व्याघातः स तु केनापि वस्तु येन यथा कृतम्। तेनैव चेदुपायेन कुरुतेऽन्यस्तदन्यथा ॥ सौकर्येण च कार्यस्य विरुद्धं क्रियते यदि (सा० द० १० स० ७५—६) जब किसी एक उपाय से किसी ने एक कार्य किया तब उसी उपाय से दूसरा उस कार्य के विपरीत करे तब एक प्रकार का व्याघात होता है। दूसरे प्रकार का व्याघात वह है कि जब उसी तर्क को उलट कर सुगमता से विरुद्ध पक्ष का समर्थन किया जा सके। शिवराजभूषण में दिया हुआ लक्षण ठीक नहीं है। दोनों उदाहरण प्रथम व्याघात के हैं।

'विकल्पस्तुल्यबलयोर्विरोधश्चातुरीयुतः' (साहित्य द० १० पृ० ८४) जहाँ चातुरीपूर्ण दो विरुद्ध बातें, जो समान शक्ति की हों, कही जायँ वहाँ विकल्प होता है। भूषण महाराज ने परिभाषा ठीक किया है, पर दोनों उदाहरणों में आरंभ में विकल्प रखते हुए अंत में निश्चयात्मक बात कह डाली है।

समुच्चयोऽयमेकस्मिन्सति कार्यस्य साधके। खलेकपोतिका-न्यायत्तत्करः स्यात् परोऽपि चेत्। गुणौ क्रिये वा युगपत्स्यातां यद्वा गुणक्रिये ॥ (सा० द० ८४-५) समुच्चय के दो भेद हैं। (१) जहाँ किसी कार्य की पूर्ति के लिए एक काफी कारण रहते अन्य कई कारण दिए जायँ। (२) जहाँ दो गुण या दो कार्य या एक गुण

और एक कार्य एक साथ ही उत्पन्न हों। भूषण ने इन्हीं दोनों भेदों की परिभाषा किया है, पर अस्पष्ट भाषा में होने से कुछ लोग इसे नहीं समझ सके हैं और व्यर्थ का अर्थ कर बैठे हैं। भूषण ने यों लक्षण दिया है—

१ एक बार ही जहँ भयो बहु काजन को बंध।

२ बस्तु अनेकन को जहाँ बरनत एक हि ठौर।

अर्थात् (१) जहाँ बहुत से कार्य एक साथ उत्पन्न हुए हों या (२) जहाँ एक के स्थान पर अनेक वस्तुओं (कारणों) का वर्णन हो। उदाहरण दोनों के स्पष्ट हैं।

सामान्यं वा विशेषेण विशेषस्तेन वा यदि। कार्यं च कारणेनेदं कार्येण च समर्थ्यते। साधर्म्येणेतरेणार्थांतरन्यासोऽष्टधा ततः॥ (सा० द० १० प० ६१-६२) जहाँ एक सामान्य बात का विशेष से या विशेष बात का सामान्य से समर्थन किया जाय या कार्य का कारण से या कारण का कार्य से समर्थन किया जाय। इस प्रकार का समर्थन साधर्म्य या वैधर्म्य दोनों प्रकार से होने से अर्थांतरन्यास आठ प्रकार का हुआ। परन्तु अन्य आचार्यगण कार्य-कारण समर्थन को अर्थांतरन्यास के अंतर्गत नहीं मानते क्योंकि वह तब काव्यलिंग अलंकार हो जाता है। अस्तु, भूषण इसकी परिभाषा यों करते हैं—

कह्यो अरथ जहँ ही लियो और अरथ उल्लेखि।

जहाँ किसी दूसरी बात का उल्लेख करके कही हुई बात मान ली जाय अर्थात् उसका समर्थन किया जाय। परिभाषा ठीक है, पर पर्याप्त नहीं है। इसे न समझ कर विद्वान संपादकों ने अशुद्ध अर्थ किया है और दूसरे कवियों के लक्षण देकर समझाने का प्रयत्न किया है। भूषण ने दो उदाहरण दिए हैं, पहिले में 'समय पर वीरों का शस्त्र उनका साहस होता है' इस सामान्य बात

का समर्थन रामचंद्र, अर्जुन तथा शिवाजी की विशेष कृतियों से साधर्म्य द्वारा किया गया है। दूसरे में शिवाजी की विशेष कृतियों का समर्थन 'पसियै रीति सदा शिवजी की' सामान्य बात द्वारा की गई है।

भूषण की भाषा

भूषण काल के पहिले हिंदी काव्य परंपरा की भाषा के दो प्रधान भेदों व्रजभाषा तथा अवधी में अनेकानेक अच्छे अच्छे काव्यग्रंथ लिखे जा चुके थे। कृष्णोपासक वैष्णवों की सगुण भक्ति धारा से अनेक सागर जब व्रजभाषा में भरे जा चुके थे तब अवधी में रामोपासक भक्तों द्वारा मानस आदि तथा सूफियों द्वारा प्रेम गाथाएँ निर्मित हो चुकी थीं। इन महाकवियों द्वारा काव्य भाषा विशेष रूप से परिमार्जित भी हो चुकी थी और यही समय काव्यांगों की विवेचना के साथ भाषा को व्याकरण बनाकर सुव्यवस्थित करने के लिये अनुकूल था। परन्तु ऐसा नहीं किया गया और इस कारण यह अव्यवस्था बनी ही रही। भाषा की सफ़ाई, चुस्ती, वाक्ययोजना आदि पर उर्दू भाषा के कवियों ने विशेष ध्यान दिया है, जिससे उसमें भाषा की वैसी अव्यवस्था नहीं रहने पाई।

हिंदी काव्य-भाषा में व्रजभाषा, अवधी, बुंदेलखंडी, खड़ी बोली, उर्दू आदि के मिश्रण से यह अव्यवस्था और भी बढ़ी है। इस प्रकार का बेमेल मेल अच्छे अच्छे कवियों में पाया जाता है। सुकवि भिखारीदास जी के समय षट्विधि की भाषाएँ इस काव्य भाषा में एकत्र हो चुकी थीं और उनके ज्ञानोपार्जन का भी इन्होंने निम्नलिखित साधन बतलाया है।

सूर केशव मंडन विहारी कालिदास ब्रह्म,
चिंतामणि मतिराम भूषण सुजानिए।
लीलाधर सेनापति निपट नेवाज निधि,
नीलकंठ मिश्र सुखदेव, देव मानिए॥
आलम रहीम रसखान सुंदरादिक,
अनेकन सुकवि भए कहाँ लौं बखानिए।
ब्रजभाषा हेत ब्रजवास ही न अनुमानौं,
ऐसे ऐसे कविन की बानी हू सों जानिए॥

ऐसी अवस्था में सुकवियों की भाषा इस योग्य होनी चाहिए थी कि उसे पढ़ कर पाठकगण उस भाषा का पूरा पूरा ज्ञान प्राप्त कर सकें। आचार्य दास ने ब्रजभाषा ही को प्रधानता दी है जिसमें अन्य भाषाओं के शब्दों का केवल सम्मिश्रण होना चाहिए। पर 'निरंकुशाः कवयः' ऐसे नियम नहीं मानते थे और ब्रजभाषा में अवधी आदि भाषाओं के कारक चिन्ह तथा क्रियाओं के रूपों तक को बराबर व्यवहृत करते रहे। इसका कारण विशेषतः सुगमता थी जिससे छंद में जो कुछ खप गया उसी का प्रयोग कर कविगण आगे बढ़ चलते थे। मुसलमानों के संसर्ग से फ़ारसी, तुर्की भाषाओं के शब्द भी हिंदी काव्य-भाषा में क्रमशः बढ़ने लगे। भूषण जी ने ऐसे शब्दों का मनमाना प्रयोग किया है। कितनों को इतना तोड़ मरोड़ दिया है और कितनों का ऐसा प्रयोग किया है कि अर्थ भी समझना कठिन हो जाता है। उदाहरणार्थ दो एक शब्द लीजिए छं० १९७ में एक शब्द 'इलाम' लिखा गया है। एक सज्जन ने अ० शब्द एलान का इसे अपभ्रंश मान कर इश्तहार अर्थ लगाया है। इस शब्द से विशेष मिलते जुलते दो अन्य अरबी शब्द एलाम और इलहाम हैं। प्रथम का अर्थ समाचार बतलाना और द्वितीय

का दैवी आज्ञा है। अंतिम ही शब्द विशेष जँचता है। इसीमें एक शब्द 'लरजा' आया है जो फारसी क्रिया लर्ज़ीदन का हिंदी भूतकाल का रूप है। यह इसी प्रकार आधुनिक हिंदी की कविता में अंग्रेजी 'शिवर' क्रिया से 'शिवरा' बनाने के समान हास्योत्पादक मात्र है। छंद २०९ का 'जोर सिवा करता अनरत्थ भली भई हत्थ हथ्यार न आया' अंतिम चरण है। इसमें जोर शब्द फारसी 'ज़रूर' का भ्रष्ट रूप है और उसी भाषा के 'ज़ोर' शब्द से विशेष साम्य रखता है। इस अर्थ में भूषण ने इसे प्रयुक्त भी किया है। उद्धरित पंक्ति खड़ी बोली में है, पर वाक्य-याजना कितनी शिथिल है। अन्य भाषाओं के शब्द लेकर उनका इतना रूप बिगाड़ना किसी कवि का महत्व नहीं दिखलाता, प्रत्युत उस महत्व का अपकर्ष अवश्य करता है। 'नाहन को निंदतेः समान कहीं एकाध लिंग भेद की अशुद्धि भी रह गई है। 'बामी तें निकासती' के स्थान पर 'निकसती' होना चाहिए, पर इस कवित्त में 'भूषन' उपनाम नहीं आया है। तात्पर्य यह कि भूषण ने ओजपूर्ण वर्णन करने के समय इन 'छोटी मोटी' बातों पर ध्यान ही नहीं दिया।

भूषण वीर रस के कवि थे और उन्होंने अपनी भाषा व्रजभाषा रखते हुए भी उसमें ओज लाने के लिए खड़ी बोली का यत्र तत्र प्रयोग बराबर किया है। इनकी भाषा का सौंदर्य केवल इसीमें है कि उसके पढ़ने से पाठकों के हृदय में वीरों के आतंक, युद्ध-कौशल, रणचंडी-नृत्य इत्यादि का पूरा चित्र चित्रित हो जाता है। रस के अनुकूल शब्दों तथा अक्षरों में शस्त्र-चालन, भेरी-रव आदि की विकट ध्वनि परिलक्षित होती रहती है। प्रभावोत्पादन के लिए जिस प्रकार की भाषा समीचीन है वैसी भाषा का भूषण ने पूर्णरूपेण प्रयोग किया है। कवि ने

शिवाजी के आतंक का बहुत ही जोरदार वर्णन किया है, वह कितना व्याप्त हो गया था और उसने शत्रुओं के हृदयों में कैसा स्थान प्राप्त कर लिया था, यह एक एक शब्द से स्पष्ट हो रहा है। मुग़लसम्राट् औरंगज़ेब ने स्वरक्षा का बहुत सा प्रबंध करके तब शिवाजी को दरबार में बुलाया था, तिस पर भी वह उनके आतंक से इतना डरा हुआ था कि गुसुलखाने के पास ही ठिठक रहा था।

> कैयक हज़ार जहाँ गुर्जबरदार ठाढ़े,
> करिकै हुस्यार नीति पकरि समाज की।
> राजा जसवंत को बुलाय कै निकट राखे,
> तेऊ लखैं नीरे जिन्हैं लाज स्वामि-काज की॥
> भूषन तबहु ठठकत ही गुसुलखाने,
> सिंह लौं झपट गुनि साहि महाराज की।
> हटकि हथ्यार फड़ बाँधि उमरावन की,
> कीन्ही तब नौरँग ने भेंट शिवराज की॥

कैसा उदात्त वर्णन है? कोई भी इसे पढ़कर शिवाजी के प्रताप तथा आतंक का समग्र-भारत-व्यापी होना सहज में समझ जाएगा। उक्ति पूर्ण, प्रसाद-गुण-संपन्न तथा सुष्ठु योजना-युक्त ऐसे वर्णन भूषण ही के योग्य है। भूषण की उक्तियाँ भी विचित्र होती थीं। इन्होंने प्रकृति-निदर्शन भी खूब किया था। भ्रमर सभी पुष्पों का रस लेता है, पर चंपा पर उसके तीव्र गंध के कारण नहीं बैठ सकता। कवि ने इस पर एक नई युक्ति निकाली। भारत-सम्राट् औरंगज़ेब को भ्रमर बनाया और अन्य सभी देशी राजाओं को फूल बनाए। उदयपुर के महाराणा को केतकी पुष्प बनाना विदग्धतापूर्ण है, क्योंकि उसका रस लेने में उसे काँटे

निरंतर गड़ते रहे। शिवाजी को चंपा बनाना चमत्कार-युक्त है, जिसका वह कभी रस न ले सका।

> कूरम कमल कमधुज है कदंम फूल,
> गौर है गुलाब राना केतकी विराज है।
> पांडरी पँवार जूही सोहन हैं चन्द्रावत,
> सरस बुँदेला सो चमेली साजवाज है॥
> भूषन भनत मुचकुंद बड़गूजर हैं,
> बघेले बसन्त सब कुसुम समाज है।
> लेइ रस एतेन को बैठि न सकत अहै,
> अलि नौरंगज़ेब चम्पा सिवराज है॥

उपसंहार

इस प्रकार विचार करने के अनंतर यह निश्चयतः कहा जा सकता है कि जिस प्रकार महाकवि-भूषण का शिवाजी के दरबार के हिंदी कवि-श्रेणी में उच्चतम स्थान था उसी प्रकार हिंदी-साहित्येतिहास के वीर रस के कवियों में इनका सर्व-श्रेष्ठ स्थान है। हिंदी-साहित्य के इतिहासकारों ने इसी कारण इन्हें उस इतिहास के नवरत्न में परिगणित किया है। हिंदी-साहित्य तथा भारत के इतिहास में भूषण कवि का नाम सदा अमर रहेगा।

इतिहास-प्रेमी तथा मातृभाषा-भक्त होने के नाते भूषण की कविता पढ़ना आवश्यंभावी था और इधर इनके रचना-काल विषय को लेकर विशेष तर्क वितर्क होने से पत्र-पत्रिकाओं में चहल-पहल भी मची हुई थी। यह विवाद ऐतिहासिक था इससे उसे बराबर पढ़ता रहता था। पूर्वपक्ष ने भूषण को शिवाजी के

समकालीन न होने का विवाद उठाया और अपनी शैली पर अंत तक अपने पक्ष को साबित ही कर डाला और स्यात् अभी भविष्य में भी ऐसा करते रहें ; पर उत्तर पक्ष तथा प्रायः सभी अन्य साहित्य-प्रेमी और इतिहासकार इसे अस्वीकार करते हैं और भूषण का शिवाजी ही का समकालीन होना मानते हैं। इस भूमिका में, उस विवाद को पूर्णतया पढ़कर भी, उससे अलग अपने विचारों के अनुसार तर्क किया गया है और जिसका आधार किसी प्रकार का हठधर्मी नहीं है।

विशाल-भारत की अगस्त सन् १९३० ई० की संख्या में कुँअर महेंद्रपाल सिंह का एक लेख निकला है जिसमें लिखा है कि तिकवाँपुर के एक पुराने भाट से उन्हें पता लगा है कि भूषण का असली नाम 'पतिराम' था, जो मतिराम के वज़न पर होने से ठीक हो सकता है। उस भाट ने भूषण के विषय में कुछ दंत-कथाएँ भी बतलाईं, जो प्रायः वैसी ही हैं जिनका उल्लेख हो चुका है। निमक वाली कथा के बदले इनका कथन है कि "एक दिन भूषण की स्त्री स्नान कर घर आई तब द्वार पर बँधे किसी हाथी ने धूलि उड़ायी जो उस पर पड़ गई। उसने मतिराम की स्त्री से कुछ क्रोध के साथ कहा कि 'जेठ जी ने व्यर्थ इन पँड़वों को यहाँ इकट्ठा कर रखा है'।' मतिराम की स्त्री ने उत्तर दिया कि 'इन पँड़वों को कौन कमाकर लाया है, जाओ अपने खसम से कहो कुंजर मँगा दे।' भूषण की स्त्री यह व्यंग्य सुनकर पति से हाथी कमा लाने के लिए हठ करने लगी, तब भूषण जी घर से निकल पड़े। एक योगी की सहायता से देवी से वरदान पाया और चित्रकूट-पति के यहाँ जाकर उनसे भूषण की पदवी ली। इसके अनन्तर बादशाह के दरबार में गए और केवल बादशाह ही का नहीं, सभी सभासदों का हाथ धुलवा कर निम्न लिखित कवित्त पढ़ाः—

कीन्हें खंड खंड ते प्रचंड बलवंड घीर,
मंडन मही के अरि खंडन भुलाने हैं।
ले ले डंड छंडे ते न मंडे मुख रंचक हू,
हेरत हिराने ते कहू न ठहराने हैं॥
पूरब पछांह आन माने नहिं दच्छिन हू,
उत्तर धरा को धनी रोपत निज थाने हैं।
भूषन भनत नवखंड महिमंडल में,
जहाँ तहाँ दीसत अब साहि के निसाने हैं॥

इसके बाद कई राज्यों में घूमते हुए यह शिवाजी के यहाँ गए और छद्मवेशधारी महाराष्ट्रपति को बावन बार 'इंद्र जिमि जंभ पर' वाला कवित्त सुनाकर बावन हाथी वगैरह पाए जिनमें से चार अपनी भावज को भेजे थे। इस दंतकथा में कुछ नवीनता थी इसलिए उसका आशय उपसंहार ही में दे दिया गया है, क्योंकि भूमिका का और सब अंश छप चुका था।

इस ग्रंथ के संपादन में जिन सज्जनों के लेखों तथा रचनाओं से सहायता ली गई है उनकी सूची अन्यत्र दे दी गई है और उनके प्रति इस संग्रह का संपादक विशेष रूप से आभारी है।

रथयात्रा
१९८७ } विनीत
ब्रजरत्नदास

भूषणग्रंथावली

शिवराज-भूषण

[मंगलाचरण]

(घनाक्षरी अथवा मनहरण)

विकट अपार भव-पंथ के चले को स्रम, हरन करन बिजना से ब्रह्म ध्याइए। इहि लोक-परलोक सुफल करन कोकनद से चरन हिए आनि कै जुड़ाइए॥ अलि-कुल-कलित कपोल, ध्यान ललित, अनंद-रूप-सरित मैं 'भूषन' अन्हाइए। पाप-तरु भंजन बिघन-गढ़-गंजन जगत-मनरंजन द्विरदमुख गाइए॥ १॥

(छप्पय अथवा षट्पद)

जै जयंति जै आदि सकति जै कालि-कपर्दिनि।
जै मधुकैटभ-छलनि देवि जै महिष-विमर्दिनि॥
जै चमुंड जै चंड-मुंड भंडासुर खंडिनि।
जै सुरक्त जै रक्तबीज-बिड्डाल बिहंडिनि॥
जै जै निसुंभ-सुंभद्दलनि भनि 'भूषन' जै जै भननि।
सरजा समत्थ सिवराज कहँ देहि बिजै जै जग-जननि॥ २॥

(दोहा)

तरनि जगत-जलनिधि-तरनि जै जै आनँद-ओक।
कोक-कोकनद-सोकहर, लोक-लोक आलोक॥ ३॥

[राजवंश-वर्णन]

राजत है दिनराज को वंस अवनि-अवतंस।
जामैं पुनि पुनि अवतरे कंसमथन-प्रभु-अंस ॥ ४ ॥
महाबीर ता बंस मैं भयो एक अवनीस।
लियो बिरुद "सीसौदिया" दियो ईस कौ सीस ॥ ५ ॥
ता कुल मैं नृपवृन्द सब उपजे बखत बुलंद।
भूमिपाल तिन मैं भयो बड़ो माल मकरंद ॥ ६ ॥
सदा दान-किरवान मैं जाके आनन अंभु।
साहि निजाम सखा भयो दुग्ग देवगिरि खंभु ॥ ७ ॥
ताते सरजा बिरद भो सोभित सिंह-प्रमान।
रन-भू-सिला सु भौंसिला आयुषमान खुमान ॥ ८ ॥
'भूषन' भनि ताके भयो भुव-भूषन नृप साहि।
रातौ दिन संकित रहैं साहि सवै जग माहि ॥ ९ ॥

(कवित्त—मनहरण)

एते हाथी दीन्हे माल मकरंद जू के नंद जेते गनि सकति बिरंच हू की न तिया । 'भूषन' भनत जाकी साहिबी सभा के देखे लागैं सब और छितिपाल छिति में छिया ॥ साहस अपार हिंदुवान को अधार धीर, सकल सिसैादिया सपूत कुल को दिया । जाहिर जहान भयो साहिजू खुमान बीर साहिन को सरन सिपाहिन को तकिया ॥ १० ॥

(दोहा)

दसरथ जू के राम भे, वसुदेव के गोपाल।
सोई प्रगटे साहि के श्रीसिवराज भुवाल ॥ ११ ॥
उदित होत सिवराज के मुदित भए द्विजदेव।
कलियुग हट्यो मिट्यो सकल म्लेच्छन को अहमेव ॥ १२ ॥

(कवित्त-मनहरण)

जा दिन जनम लीन्हो भू पर भुसिल भूप ताहि दिन जीत्यो अरि-उर के उछाह को। छठी छत्रपतिन को जीत्यो भाग अनायास जीत्यो नामकरन में करिन-प्रवाह को॥ 'भूषन' भनत बाल-लीला गढ़कोट जीत्यो साहि के सिवाजी करि चहूँ चक्क चाह को। बीजापुर-गोलकुंडा जीत्यो लरिकाई ही में ज्वानी आए जीत्यो दिलीपति पातसाह को॥ १३॥

(दोहा)

दच्छिन के सब दुग्ग जिति दुग्ग सहार बिलास।
सिव-सेवक सिव गढ़पती कियो रायगढ़ वास॥ १४॥

[रायगढ़-वर्णन]

(मालती सवैया)

जापर साहि-तनै सिवराज सुरेस की ऐसि सभा सुभ साजै।
यों कवि 'भूषन' जंपत है लखि संपति कों अलकापति लाजै।
जामधि तीनहु लोक की दीपति ऐसो बड़ो गढ़राज बिराजै।
वारि पताल सी माची मही अमरावति की छबि ऊपर छाजै॥ १५॥

(हरिगीतिका छंद)

मनिमय महल सिवराज के इमि रायगढ़ मैं राजहीं।
लखि जच्छ-किन्नर-असुर-सुर-गंधर्व हौंसनि साजहीं॥
उत्तंग मरकत मंदिरन मधि बहु मृदंग जु बाजहीं।
घन-समै मानहु घुमरि करि घन घनपटल गलगाजहीं॥ १६॥

मुकतान की झालरिन मिलि मनि-माल छज्जा छाजहीं।
संध्या-समै मानहुँ नखत गन लाल अंबर राजहीं॥
जहँ तहा ऊरध उठे हीरा किरन घन-समुदाय हैं।
मानो गगन तंबू तन्यो ताके सपेत तनाय हैं॥ १७॥

'भूषन' भनत जहँ परसि कै मनि पुहुपरागन की प्रभा।
प्रभु-पीत पट की प्रगट पावत सिंधु मेघन की सभा॥
मुख नागरिन के राजहीं कहुँ फटिक महलन संग मैं।
बिकसंत कोमल कमल मानहु अमल गंग-तरंग मैं॥ १८॥

आनंद सों सुंदरिन के कहुँ बदन-इंदु उदोत हैं।
नभ-सरित के प्रफुलित कुमुद मुकुलित कमल-कुल होत हैं॥
कहुँ बावरी-सर-कूप राजत बद्ध मनि-सोपान हैं।
जहँ हंस सारस चक्रवाक बिहार करत सनान हैं॥ १९॥

कितहूँ बिसाल प्रवाल-जालन जटित अंगनि भूमि है।
जहँ ललित बागनि द्रुमलता मिलि रहै झिलमिलि झूमि है॥
चंपा चमेली चारु चंदन चारिहू दिसि देखिए।
लवली-लवंग-यलानि-केरे लाखहौं लगि लेखिए॥ २०॥

कहुँ केतकी-कदली-करौंदा-कुंद अरु करबीर हैं।
कहुँ दाख-दाड़िम-सेब-कटहल-तूत अरु जंभीर हैं॥
कितहूँ कदंब-कदंब कहुँ हिंताल-ताल-तमाल हैं।
पीयूष तें मीठे फले कितहूँ रसाल रसाल हैं॥ २१॥

पुन्नाग कहुँ कहुँ नागकेसरि कतहुँ बकुल असोक हैं।
कहुँ ललित अगर-गुलाब-पाटल-पटन्त-बेला-थोक हैं॥
कितहूँ नेवारी-माधवी-सिंगारहार कहूँ लसैं।
जहँ भाँति भाँतिन रंग रंग बिहंग आनँद सों रसैं॥ २२॥

(षट्पद)

लसत विहंगम बहु लवनित बहु भाँति बाग महँ ।
कोकिल-कीर-कपोत केलि कलकल करंत तहँ ॥
मंजुल महरि-मयूर चटुल चातक-चकोर-गन ।
पियत मधुर मकरंद करत झंकार भृंग घन ॥
'भूपन' सुवास फल फूलजुत छहुँ ऋतु बसत बसंत जहँ ।
इमि राजदुग्ग राजत रुचिर सुखदायक सिवराज कहँ ॥ २३ ॥

(दोहा)

तहँ नृप रजधानी करी जीति सकल तुरकान ।
सिव सरजा रुचि दान में कीन्हों सुजस जहान ॥ २४ ॥

[कविवंश-वर्णन]

देसन देसन ते गुनी आवत जाचन ताहि ।
तिनमें आयो एक कवि 'भूपन' कहियतु जाहि ॥ २५ ॥
दुज कनौज-कुल कस्यपी रतनाकर-सुत धीर ।
बसत त्रिविक्रमपुर सदा तरनितनूजा-तीर ॥ २६ ॥
बीर बीरबर से जहाँ उपजे कवि अरु भूप ।
देव विहारीश्वर जहाँ विश्वेश्वर तद्रूप ॥ २७ ॥
कुल-सुलंक चितकूटपति साहस-सील-समुद्र ।
कवि 'भूपन' पदवी दई हृदयराम-सुत रुद्र ॥ २८ ॥
सिव-चरित्र लखि यों भयो कवि 'भूपन' के चित्त ।
भाँति भाँति भूपननि सों भूपित करौं कवित्त ॥ २९ ॥
सुकविन हूँ की कछु कृपा समुझि कविन को पंथ ।
भूपन भूपनमय करत 'शिवभूपन' सुभ ग्रंथ ॥ ३० ॥
भूपन सब भूपननि मैं उपमहि उत्तम चाहि ।
याते उपमहि आदि दै बरनत सकल निवाहि ॥ ३१ ॥

[ग्रन्थ प्रारंभः]

[उपमा]

(लक्षण–दोहा)

जहाँ दुहुन की देखिए सोभा बनति समान ।
उपमा भूषन ताहि को 'भूषन' कहत सुजान ॥ ३२ ॥
जा को बरनन कीजिए सो उपमेय प्रमान ।
जाकी सरबरि कीजिए ताहि कहत उपमान ॥ ३३ ॥

(उदाहरण—मनहरण दंडक)

मिलतहि कुरुख चकत्ता को निरखि कीन्हों सरजा सुरेस ज्यों दुचित ब्रजराज को । 'भूषन' कुमिस गैरमिसिल खरे किए को किए म्लेच्छ मुरछित करि कै गराज को ॥ अरे ते गुसुलखाने बीच ऐसे उमराय लै चले मनाय महराज सिवराज को । दाबदार निरखि रिसानो दीह दलराय जैसे गड़दार अड़दार गजराज को ॥ ३४ ॥

(मालती सवैया)

सासता खाँ दुरजोधन सो औ दुसासन सो जसवंत निहार्‌यो । द्रोन सो भाऊ, करन्न करन्न सो और सबै दल सो दल भार्‌यो ॥ ताहि बिगोय सिवा सरजा भनि 'भूषन' औनि-छता यों पछार्‌यो । पारथ कै पुरुषारथ भारथ जैसे जगाय जयद्रथ मार्‌यो ॥ ३५ ॥

[लुप्तोपमा]

(लक्षण—दोहा)

उपमा-बाचक पद, धरम, उपमेयो, उपमान ।
जामैं सो पूर्णोपमा लुप्त घटत लौं मान ॥ ३६ ॥

(उदाहरण-धर्मलुप्ता, मालती सवैया)

पावक-तुल्य अमीतन को भयो, मीतन को भयो धाम सुधा को। आनँद भो गहिरो समुदै-कुमुदावली-तारन को बहुधा को ॥ भूतल माहिँ बली सिवराज भो 'भूषन' भाखत शत्रु मुधा को। चंदन तेज त्यों चंदन कीरति सोंधे सिँगार बधू बसुधा को ॥ ३७ ॥

(मनहरण)

आए दरबार बिललाने छरीदार देखि जापता करनहारे नेक हू न मिनके। 'भूषन' भनत भौंसिला के आय आगे ठाढ़े बाजे भए उमराय तुजुक करन के ॥ साहि रह्यो जकि सिव साहि रह्यो तकि और चाहि रह्यो चकि बने ब्योंत अनबन के। ग्रीषम के भानु सो खुमान को प्रताप देखि तारे सम तारे गए मूँदि तुरकन के ॥ ३८ ॥

[अनन्वय]

(लक्षण-दोहा)

जहाँ करत उपमेय को उपमेयै उपमान।
तहाँ अनन्वै कहत हैं 'भूषन' सकल सुजान ॥ ३९ ॥

(उदहरण-मालती सवैया)

साहि-तनै सरजा तव द्वार प्रतिच्छन दान की दुंदुभि बाजै। 'भूषन' भिच्छुक-भीरन को अति भोजहु ते बढ़ि मौजनि साजै ॥ राजन को गन, राजन! को गनै? साहिन मैं न इती छवि छाजै। आजु गरीबनेवाज मही पर तो सो तुही सिवराज बिराजै ॥ ४० ॥

[प्रथम प्रतीप]

(लक्षण-दोहा)

जहँ प्रसिद्ध उपमान को करि बरनत उपमेय।
तहँ प्रतीप-उपमा कहत 'भूषन' कविता प्रेय ॥ ४१ ॥

(उदाहरण-मालती सवैया)

छाय रही जितही तितही अतिही छबि छीरधि रंग करारी।
'भूषन' सुद्ध सुधान के सौधनि सोधति सी धरि ओप उज्यारी ॥
यों तम-तोमहि चाबिकै चंद चहूँ दिसि चाँदनि चारु पसारी।
ज्यों अफजल्लहि मारि मही पर कीरति श्रीसिवराज बगारी ॥ ४२ ॥

[द्वितीय प्रतीप]

(लक्षण-दोहा)

करत अनादर बर्न्य को पाय और उपमेय।
ताहू कहत प्रतीप जे 'भूषन' कविता प्रेय ॥ ४३ ॥

(उदाहरण-दोहा)

शिव ! प्रताप तव तरनि-सम, अरि-पानिप-हर मूल।
गरब करत केहि हेत है, बड़वानल तो तूल ॥ ४४ ॥

[तृतीय प्रतीप]

(लक्षण-दोहा)

आदर घटत अवर्न्य को जहाँ बर्न्य के जोर।
तृतिय प्रतीप बखानहीं तहँ कविकुलसिरमौर ॥ ४५ ॥

(उदाहरण-दोहा)

गरब करत कत चाँदनी हीरक छीर समान।
फैली इती समाज-गत कीरति सिवा खुमान ॥ ४६ ॥

[चतुर्थ प्रतीप]

(लक्षण-दोहा)

पाय वरन उपमान को जहाँ न आदर और।
कहत चतुर्थ प्रतीप हैं 'भूषन' कवि-सिरमौर ॥ ४७ ॥

(उदाहरण-मनहरण)

चंदन में नाग, मद भर्‌यो इंद्र-नाग, विषभरो सेस नाग कहै उपमा अबस को? भोर ठहरात न, कपूर बहरात, मेघ सरद उड़ात ...ात लागे दिसि दस को॥ शंभु नीलग्रीव, भौंर पुंडरीक ही बसत, सरजा सिवा जी सन 'भूषन' सरस को? क्षीरधि में पंक, कलानिधि में कलंक, याते रूप एक टंक ए लहैं न तव जस को ॥ ४८ ॥

[पंचम प्रतीप]

(लक्षण-दोहा)

हीन होय उपमेय सों नष्ट होत उपमान।
पंचम कहत प्रतीप तेहि 'भूषन' सुकवि सुजान ॥ ४९ ॥

(उदाहरण-मनहरण)

तो सम हो सेस सो तो बसत पताल लोक, ऐरावत गज सो तो इंद्र-लोक सुनियै। दुरे हंस मानसर, ताहि मैं कैलास-धर, सुधा सुरवर सोऊ छोड़ि गयो दुनियै॥ सूर दानी सिरताज महाराज सिवराज रावरे सुजस सम आजु काहि गुनियै? 'भूषन' जहाँ लौं गनौं तहाँ लौं भटकि हार्‌यौ लखिये कछू न केती बातैं चित चुनियै॥ ५० ॥

(मालती सवैया)

कुंद कहा, पय-वृन्द कहा अरु चंद कहा सरजा जस आगे? 'भूषन' भानु कृसानु कहाऽब खुमान-प्रताप महीतल पागे? राम कहा, द्विज राम कहा, बलराम कहा रन मैं अनुरागे? बाज कहा, मृगराज कहा अति साहस मैं सिवराज के आगे? ॥ ५१ ॥

यों सिवराज को राज अडोल कियो सिव जोऽब कहा ध्रुव धू है? कामना दानि खुमान लखे न कछू सुर-रूख न देव-गऊ है॥

'भूषन' भूषन मैं कुल-भूषन भौंसिला भूप धरे सब भू है। मेरु कछू न कछू दिगदंति न कुंडलि कोल कछु न कछू है ॥ ५२ ॥

[उपमेयोपमा]

(लक्षण-दोहा)

जहाँ परस्पर होत है उपमेयो उपमान।
'भूषन' उपमेयोपमा ताहि बखानत जान ॥ ५३ ॥

(उदाहरण-मनहरण)

तेरो तेज, सरजा समत्थ ! दिनकर सो है, दिनकर सोहै तेरे तेज के निकर सो। भौंसिला भुवाल ! तेरो जस हिमकर सो है हिमकर सोहै तेरे जस के अकर सो ॥ 'भूषन' भनत तेरो हियो रतनाकर सो, रतनाकरौ है तेरे हिय सुखकर सो। साहि के सपूत सिव साहि दानि ! तेरो कर सुरतरु सो है, सुरतरु तेरे कर सो ॥ ५४ ॥

[मालोपमा]

(लक्षण-दोहा)

जहाँ एक उपमेय के होत बहुत उपमान।
ताहि कहत मालोपमा 'भूषन' सुकवि सुजान ॥ ५५ ॥

(उदाहरण-मनहरण)

इंद्र जिमि जंभ पर, बाडव सुअंभ पर, रावन सदंभ पर रघुकुलराज है। पौन बारिबाह पर, संभु रतिनाह पर, ज्यों सहस्रबाहु पर राम द्विजराज है ॥ दावा द्रुम-दंड पर, चीता मृगझुंड पर, 'भूषन' वितुंड पर जैसे मृगराज है। तेज तम-अंस पर, कान्ह जिमि कंस पर त्यों मलिच्छ-बंस पर सेर सिवराज है ॥ ५६ ॥

[ललितोपमा]

(लक्षण-दोहा)

जहँ समता को दुहुन की लीलादिक पद होत।
ताहिँ कहत ललितोपमा सकल कविन के गोत॥ ५७॥
बिहसत, निदरत, हँसत जहँ, छवि अनुसरत बखानि।
सत्रु-मित्र इमि औरऊ लीलादिक पद जानि॥ ५८॥

(उदाहरण-मनहरण)

साहि-तनै सरजा सिवा की सभा जामधि है मेरु-वारी सुर की सभा को निदरति है। 'भूषन' भनत जाके एक एक सिखर ते केते धौं नदी-नद की रेल उतरति है॥ जोन्ह को हँसति जोति हीरा-मनि-मंदिरन कंदरन में छवि कुहू की उछरति है। ऐसो ऊँचो दुरग महाबली को जामैं नखतावली सों बहस दिपावली धरति है॥ ५९॥

[रूपक]

(लक्षण-दोहा)

जहाँ दुहुन को भेद नहिँ बरनत सुकवि सुजान।
रूपक 'भूषन' ताहि को 'भूषन' करत बखान॥ ६०॥

(उदाहरण-छप्पय)

कलिजुग-जलधि अपार उदध अधरम्म उम्मिमय। लच्छनि लच्छ मलिच्छ-कच्छ अरु मच्छ-मगर-चय॥ नृपति नदीनद-वृन्द होत जाको मिलि नीरस। भनि 'भूपन' सब भुम्मि घेरि किन्निय सुअप्प वस॥ हिँदुवान-पुन्य-गाहक-बनिक तासु निबाहक साहि-सुव। वर बादबान किरवान धरि जस-जहाज सिवराज तुव॥ ६१॥

साहिन मन समरत्थ, जासु नवरंग साहि सिरु। हृदय जासु अब्बास साहि बहुबल बिलास थिरु॥ एदिल साहि कुतुब्ब जासु जुग भुज 'भूषन' भनि। पाय म्लेच्छ उमराय, काय तुरकानि आन गनि॥ यह रूप अवनि अवतार धरि जेहि जालिम जग दंडियव। सरजा सिव साहस खग्ग गहि कलिजुग सोइ खल खंडियव॥ ६२॥

(कवित्त मनहरण)

सिंह थरि जाने बिन जावली जँगल भठी हठी गज एदिल पठाय करि भटक्यो। 'भूषन' भनत देखि भभरि भगाने सब हिम्मति हिये में धारि काहुवै न हटक्यौ॥ साहि के सिवा जी गाजी सरजा समत्थ महा मदगल अफजलै पंजा बल पटक्यो। ता त्रिगिरि ह्वै करि निकाम निज धाम कहँ आकुत महाउत सुआँकुस लै सटक्यो॥ ६३॥

[रूपक के भेद—न्यून तथा अधिक]

(लक्षण—दोहा)

घटि बढ़ि जहँ बरनन करै करिकै दुहुन अभेद।
'भूषन' कवि औरौ कहत द्वै रूपक के भेद॥ ६४॥

(उदाहरण न्यून—मनहरण)

साहि-तनै सिवराज 'भूषन' सुजस तव बिगिर कलंक चंद उर आनियतु है। पंचानन एक ही बदन गनि तोहि गजानन गज-बदन-बिना बखानियतु है॥ एक सीस ही सहससीस कला करिबे को दुहूँ दृग सों सहसदृग मानियतु है। दुहूँ कर सों सहसकर मानियतु तोहि दुहूँ बाहु सों सहसबाहु जानियतु है॥ ६५॥

(उदाहरण अधिक)

जेतं हैं पहार भुव माहिं पारावार तिन सुनि के अपार कृपा गहे सुख फैल है। 'भूषन' भनत साहि-तनै सरजा के पास आइवे को चढ़ी उर हौंसनि की पैल है ॥ किरवान वज्र सों विपच्छ करिवे के डर आनिकै कितेक आए सरन की गैल है। मघवा मही में तेजवान सिवराज वीर कोट करि सकल सपच्छ किए सैल है ॥ ६६ ॥

[परिणाम]

(लक्षण-दोहा)

जहँ अभेद करि दुहुन सों करत और से काम।
भनि 'भूषन' सब कहत हैं तासु नाम परिनाम ॥ ६७ ॥

(उदाहरण—मालती सवैया)

भौंसिला भूप बली भुव को भुज भारी भुजंगम सों भरु लीनो।
'भूषन' तीखन तेज-तरन्नि सों वैरिन को कियो पानिप हीनो ॥
दारिद-दौ करि-वारिद सों दलि त्यों धरनीतल सीतल कीनो।
साहि-तनै कुल-चंद सिवा जस-चंद सों चंद कियो छवि छीनो ॥ ६८ ॥

(कवित्त मनहरण)

वीर विजैपुर के उजीर-निसिचर गोलकुंडा-वारे घूघू ते उड़ाए हैं जहान सों। मंद करी मुखरुचि चंद-चकता की, कियो 'भूषन' भूषित द्विज चक्र खानपान सों ॥ तुरकान मलिन कुमुदिनी करी है हिंदुवान-नलिनी खिलायो विविध विधान सों। चारु सिवा नाम को प्रतापी सिवा साहि-सुव तापी सब भूमि यों कृपान भासमान सों ॥ ६९ ॥

[उल्लेख]

(लक्षण-दोहा)

कै बहुतै कै एक जहँ एक वस्तु को देखि ।
बहु बिधि करि उल्लेख हैं सो उल्लेख उलेखि ॥ ७० ॥

(उदाहरण—मालती सवैया)

एक कहैं कलपद्रुम है इमि पूरत है सब की चित चाहै । एक कहैं अवतार मनोज को यों तन में अति सुंदरता है । 'भूषन' एक कहैं महि-इंदु यों राज बिराजत बाढ्यौ महा है । एक कहैं नरसिंह है संगर, एक कहैं नर-सिंह सिवा है ॥ ७१ ॥

(मनहरण दंडक)

कवि कहै करन, करनजीत कमनैत, अरिन के उर माहिं कीन्ह्यो इमि छेव है । कहत धरेस सब, धराधर सेस ऐसो और धराधरन को मेट्यौ अहमेव है ॥ 'भूषन' भनत महाराज सिवराज तेरो राज-काज देखि कोऊ पावत न भेव है । कहरी यदिल, मौज लहरी कुतुब कहै, बहरी निजाम को जितैया कहै देव है ॥ ७२ ॥

पैज प्रतिपाल, भूमिभार को हमाल, चहुँचक्क को अमाल, भयो दंडक जहान को । साहिन को साल भयो, ज्वाल को जवाल भयो, हर को कृपाल भयो हार के विधान को ॥ बीर रस ख्याल सिवराज भुवपाल तुव हाथ को बिसाल भयो 'भूषन' बखान को ? तेरा करवाल भयो दच्छिन को ढाल, भयो हिंदु को दिवाल, भयो काल तुरकान को ॥ ७३ ॥

[स्मृति]

(लक्षण-दोहा)

सम सोभा लखि आन की सुधि आवति जेहि ठौर ।
स्मृति भूषन तेहि कहत हैं 'भूषन' कवि-सिरमौर ॥ ७४ ॥

(उदाहरण—मनहरण दंडक)

तुम सिवराज ब्रजराज-अवतार आजु तुम ही जगत-काज पोषत भरत हो। तुम्हैं छोड़ि याते काहि विनती सुनाऊँ मैं तुम्हरे गुन गाऊँ तुम ढीले क्यों परत हौ? 'भूषन' भनत वहि कुल मैं नयो गुनाह नाहक समुझि यह चित मैं धरत हौ। और बाभनन देखि करत सुदामा सुधि मोहिँ देखि काहे सुधि भृगु की करत हौ॥ ७५॥

[भ्रम]

(लक्षण-दोहा)

आन बात को आन मैं होत जहाँ भ्रम आय।
तासों भ्रम सब कहत हैं 'भूषन' सुकवि बनाय॥ ७६॥

(उदाहरण—मालती सवैया)

पीय पहारन पास न जाहु यों तीय बहादुर सों कहैं सोपै। कौन बचैहै नवाब तुम्हैं भनि 'भूषन' भौंसिला भूप के रोपै? बंदि सहस्तखँहू को कियो जसवंत से भाऊ करन्न से दोपै। सिंह सिवा के सुबीरन सों गो अमीर न बाचि गुनीजन धोपै॥ ७७॥

[संदेह]

(लक्षण-दोहा)

कै यह कै वह यों जहाँ होत आनि संदेह।
'भूषन' सो संदेह है या मैं नहिं संदेह॥ ७८॥

(उदाहरण—कवित्त मनहरण)

आवत गुसुलखाने ऐसे कछु त्योर ठाने जाने अवरंग जू के प्रानन को लेवा है। रस खोट भए ते अगोट आगरे मैं सातौ

चौकी डाँकि आनि घर कीन्हीं हद्द रेवा है ॥ 'भूषण' भनत वह चहूँ चक्क चाहि कियो पातसाहि चकता की छाती माहिं छेवा है। जान्यो न परत ऐसे काम है करत कोऊ गंधरब देवा है कि सिद्ध है कि सेवा है ॥ ७९ ॥

[शुद्ध अपन्हुति]

(लक्षण-दोहा)

आन बात आरोपिये साँची बात दुराय।
शुद्धापन्हुति कहत है 'भूषन' सुकवि बनाय ॥ ८० ॥

(उदाहरण—मनहरण दंडक)

चमकतीं चपला न फेरत फिरंगैं भट, इन्द्र को न चाप रूप वैरष समाज को। धाए धुरवा न छाये धूरि के पटल, मेघ गाजिबो न बाजिबो है दुंदुभि दराज को ॥ भौंसिला के डरन डरानी रिपु-रानी कहैं, पिय भजौ, देखि उदै पावस के साज को। घन की घटा न गज-घटनि-सनाह-साज, 'भूषन' भनत आयो सेन शिवराज को ॥ ८१ ॥

[हेत्वपन्हुति]

(लक्षण-दोहा)

जहाँ जुगुति सों आन को कहिये आन छपाय।
हेतु अपन्हुति कहत हैं ताकहँ कवि समुदाय ॥ ८२ ॥

(उदाहरण-दोहा)

सिव सरजा के कर लसै सो न होय किरवान।
भुज-भुजगेस-भुजंगिनी भखति पौन-अरि-प्रान ॥ ८३ ॥

(कवित्त मनहरण)

भाषत सकल सिव जी को करवाल पर 'भूषन' कहत यह करि कै विचार को। लीन्हों अवतार करतार के कहे तें कलि-म्लेच्छन-हरन उद्धरन भुव-भार को॥ चंडी ह्वै घुमंडि अरि-चंडमुंड चाबि करि पीवत रुधिर कछु लावत न वार को। निज भरतार-भूत-भूतन की भूखि मेटि भूषित करत भूतनाथ भरतार को॥ ८४॥

[पर्य्यस्त अपन्हुति]

(लक्षण-दोहा)

वस्तु गोय ताको धरम आन वस्तु में रोपि।
पर्यस्तापन्हुति कहत कवि 'भूषन' मति वोपि॥ ८५॥

(उदाहरण—दोहा)

काल करत कलिकाल में नहिं तुरकन को काल।
काल करत तुरकान को सिव-सरजा-करवाल॥ ८६॥

(कवित्त मनहरण)

तेरे ही भुजन पर भूतल को भार कहिवे को सेसनाग दिग-नाग हिमाचल है। तेरो अवतार जग-पोसन-भरन-हार कछु करतार को न तामधि अमल है॥ साहिन में सरजा समत्थ सिवराज कवि 'भूषन' कहत जीवो तेरोई सफल है। तेरो करवाल भयो म्लेच्छन को काल बिनु काज होत काल बदनाम धरातल है॥ ८७॥

[भ्रांत अपन्हुति]

(लक्षण—दोहा)

संक आन को होत ही जहँ भ्रम कीजै दूरि।
भ्रांतापन्हुति कहत हैं तहँ 'भूषन' कवि भूरि॥ ८८॥

(उदाहरण—कवित्त मनहरण)

साहि-तनै सरजा के भय सों भगाने भूप मेरु में लुकाने ते लहत जाय वोत हैं। 'भूषन' तहाऊँ मरहट्टपति के प्रताप पावत न कल अति कौतुक उदोत हैं॥ "सिव आयो, सिव आयो" संकर के आगमन सुनि कै परान ज्यों लगत अरि गोत हैं। "सिव सरजा न यह सिव है महेस" करि यों ही उपदेस जच्छ रच्छक से होत हैं॥ ८९॥

(मालती सवैया)

एक समै सजि कै सब सैन सिकार को आलमगीर सिधाये।
"आवत है सरजा सम्हरौ" यक ओर ते लोगन बोल जनाए॥
'भूषन' भो भ्रम औरँग के सिव भौंसिला भूप की धाक धुकाये।
धायकै "सिंह" कह्यौ समुझाय करौलनि आय अचेत उठाये॥९०॥

[छेक अपन्हुति]

(लक्षण—दोहा)

जहाँ और को संक करि साँच छिपावत बात।
छेकापन्हुति कहत हैं 'भूषन' कवि-अवदात॥ ९१॥

(उदाहरण-दोहा)

तिमिर-वंस-हर अरुन-कर आयो, सजनी भोर?।
सिव सरजा, चुप रहि सखी, सूरज-कुल-सिरमौर॥ ९२॥
दुरगहि बल पंजन प्रबल सरजा जिति रन मोहिं।
औरँग कहै दिवान सों सपन सुनावत तोहिं॥ ९३॥
सुनि सु उजीरन यों कह्यो "सरजा, सिव महराज?"।
'भूषन' कहि चकत्ता सकुचि "नहिँ, सिकार मृगराज"॥९४॥

[कैतव अपन्हुति]

(लक्षण-दोहा)

जहँ कैतव, छल, व्याज मिसि, इन सों होत दुराव।
कैतवपन्हुति ताहि सों 'भूषन' कहि सति भाव ॥ ६५ ॥

(उदाहरण—दंडक मनहरण)

साहिन के सिच्छक, सिपाहिन के पातसाह, संगर में सिंह कैसे जिनके सुभाव हैं। 'भूषन' भनत सिव सरजा की धाक ते वै काँपत रहत चित्त गहत न चाव हैं॥ अफ़जल की अगति, सासता की अपगति, बहलोल विपति सों डरे उमराव हैं। पक्का मतो करि कै मलिच्छ मन सब छोड़ि मक्का ही के मिस उतरत दरियाव हैं॥ ६६ ॥

साहि-तनै सरजा खुमान सलहेरि पास कीन्हों कुरुखेत खीझि मीर अचलन सों। 'भूषन' भनत बलि करी है अरीन धर धरनी पै डारि नभ प्रान दै बलन सों॥ अमर के नाम के बहाने गो अमरपुर चंदावत लरि सिवराज के दलन सों। कालिका-प्रसाद के बहाने तें खवायो महि बाबू उमराव राव पसु के छलन सों॥ ६७॥

[उत्प्रेक्षा]

(लक्षण—दोहा)

आन बात को आन में जहँ संभावन होय।
वस्तु, हेतु, फल युत कहत उत्प्रेक्षा है सोय ॥ ६८ ॥

(उदाहरण वस्तूत्प्रेक्षा—मालती सवैया)

दानव आयो दगा करि जावली दीह भयारो महामद भार्‌यो।
'भूषन' बाहुबली सरजा तेहि भेंटिवे को निरसंक पधार्‌यो॥ बीछू

के घाय गिरे अफजलहि ऊपर ही सिवराज निहार्‌यो। दाबि यों बैठो नरिंद अरिंदहि मानो मयंद गयंद पछार्‌यो ॥ ९९ ॥

साहि-तनै सिव साहि निसा में निसाँक लियो गढ़सिंह सोहानौ। राठिवरों को सँहार भयो लरिकै सरदार गिर्‌यौ उदभानौ॥ 'भूषन' यों घमसान भो भूतल घेरत लोथिन मानौ मसानौ। ऊँचे सुछज्ज छटा उचटी प्रगटी परभा परभात की मानौ ॥ १०० ॥

(कवित्त मनहरण)

दुरजन-दार भजि भजि बेसम्हार चढ़ीं उत्तर पहार डरि सिवजी नरिंद ते। 'भूषन' भनत बिन भूषन बसन, साधे भूखन पियासन हैं नाहन को निंदते॥ बालक अयाने बाट बीच ही बिलाने कुम्हिलाने मुख कोमल अमल अरबिंद ते। दृगजल कज्जल कलित बढ़्यौ कढ़्यौ मानो दूजो सोत तरनि-तनूजा को कलिंद ते ॥ १०१ ॥

(दोहा)

महाराज सिवराज तव सुभ्र धवल ध्रुव कित्ति।
छवि छटान सों छुवति सी छिति अंगन दिग भित्ति॥ १०२ ॥

(हेतूत्प्रेक्षा-कवित्त मनहरण)

लूट्यो खानदौराँ जोरावर सफजंग अरु लूट्यो कार तलब खाँ मनहुँ अमाल है। 'भूषन' भनत लूट्यो पूना में सइस्त खान गढ़न में लूट्यो त्यों गढ़ोइन को जाल है॥ हेरि हेरि कूटि सलहेरि बीच सरदार घेरि घेरि लूट्यो सब कटक कराल है। मानो हय हाथी उमराव करि साथी अवरंग डरि सिवाजी पै भेजत रिसाल है॥ १०३ ॥

(फलोत्प्रेक्षा-मनहरण दंडक)

जाहि पास जात सो तौ राखि ना सकत याते तेरे पास अचल सुप्रीति नाधियतु है। 'भूषन' भनत सिवराज तव कित्ति

सम और को न कित्ति कहिबे को काँधियतु है ॥ इंद्र कौ अनुज तैं उपेंद्र-अवतार याते तेरो बाहुबल लै सलाह साधियतु है। पाय तर आय नित निडर बसायबे को कोट बाँधियतु मानो पाग बाँधियतु है ॥ १०४ ॥

(दोहा)

दुवन-सदन सब के बदन सिव सिव आठौ याम।
निज बचिबे को जपत जनु तुरकौ हर को नाम ॥ १०५ ॥

[गम्योत्प्रेक्षा]

(लक्षण—दोहा)

मानो इत्यादिक बचन आवत नहिं जेहि ठौर।
उत्प्रेक्षा गम गुप्त सो 'भूषन' कहत अमौर ॥ १०६ ॥

(उदाहरण—मनहरण)

देखत उँचाई उदरत पाग, सूधी राह द्योस हू में चढ़ै ते जे साहस-निकेत हैं। सिवाजी हुकुम तेरो पाय पैदलन सलहेरि परनालो ते वै जीते जनु खेत हैं ॥ सावन भादौं की भारी कुहू की अँध्यारी चढ़ि दुग्ग पर जात मावलीदल सचेत हैं। 'भूषन' भनत ताकी बात मैं विचारी तेरे परताप-रवि की उज्यारो गढ़ लेत हैं ॥ १०७ ॥

(दोहा)

और गढ़ोई नदीनद सिव गढ़पति दरयाव।
दौरि दौरि चहुँ ओर ते मिलत आनि यहि भाव ॥ १०८ ॥

[रूपकातिशयोक्ति]

(लक्षण-दोहा)

ज्ञान करत उपमेय को जहँ केवल उपमान।
रूपकातिशय-उक्ति सो 'भूषन' कहत सुजान ॥ १०९ ॥

(उदाहरण— मनहरण दंडक)

वासव से विसरत बिक्रम की कहा चली, बिक्रम लखत वीर बखत-बुलंद के। जागे तेज-वृन्द सिवाजी नरिंद मसनंद मालमकरंद-कुलचंद-साहिनंद के ॥ 'भूषन' भनत देस देस बैरि- नारिन में होत अचरज घर घर दुख दंद के। कनकलतानि इंदु, इंदु माहिं अरविंद, झरैं अरविंदन ते बुंद मकरंद के ॥ ११० ॥

[भेदकातिशयोक्ति]

(लक्षण—दोहा)

जेहि थर आनहि भाँति को बरनत बात कछूक।
भेदकातिसय-उक्ति सो 'भूषन' कहत अचूक ॥ १११ ॥

(उदाहरण—कवित्त मनहरण)

श्रीनगर, नयपाल जुमिला के छितिपाल भेजत रिसाल चौरगढ़ कुही बाज की। मेवार, ढुँढार, मारवाड़ औ बुँदेलखंड झारखंड बाँधो-धनी चाकरी इलाज की ॥ 'भूषन' जे पूरब पछाँह नरनाह ते वै ताकत पनाह दिलीपति सिरताज की। जगत को जैतवार जीत्यो अवरंगज़ेब न्यारी रीति भूतल निहारी सिवराज की ॥ ११२ ॥

[अक्रमातिशयोक्ति]

(लक्षण—दोहा)

जहाँ हेतु अरु काज मिलि होत एक ही साथ।
अक्रमातिसय-उक्ति सो कहि 'भूषन' कविनाथ ॥ ११३ ॥

(उदाहरण—कवित्त मनहरण)

उद्धत अपार तव दुंदुभी-धुकार साथ लंघै पारावार बाल- वृन्द रिपुगन के। तेरे चतुरंग के तुरङ्गन के रँगरेजे साथ ही उड़ात

रजपुंज हैं परन के ॥ दच्छिन के नाथ सिवराज ! तेरे हाथ चढ़ैं धनुष के साथ गढ़ कोट दुरजन के। 'भूषन' असीसै, तोहिं करत कसीसैं पुनि बानन के साथ छूटैं प्रान तुरकन के ॥ ११४ ॥

[चंचलातिशयोक्ति]

(लक्षण-दोहा)

जहाँ हेतु चरचाहि में काज होत ततकाल।
चंचलातिसय-उक्ति सो 'भूषन' कहत रसाल ॥ ११५ ॥

(उदाहरण—दोहा)

आयो आयो सुनत ही सिव सरजा तुव नाँव।
वैरि-नारि-दृग-जलन सों बूड़ि जात अरि गाँव ॥ ११६ ॥

(कवित्त मनहरण)

गढ़नेर गढ़ चाँदा भागनेर बीजापुर-नृपन की नारी रोय हाथन मलति हैं। करनाट-हबस-फिरंगहू विलायत बलख रूम-अरि तिय छतियाँ दलति हैं ॥ 'भूषन' भनत साहि-तनै सिवराज एते मान तव धाक आगे दिसा उबलति हैं। तेरी चमू चलिवे की चरचा चले ते चक्रवर्तिन की चतुरंग-चमू विचलति हैं ॥ ११७ ॥

[अत्यंतातिशयोक्ति]

(लक्षण-दोहा)

जहाँ हेतु ते प्रथम ही प्रगट होत है काज।
अत्यंतातिसयोक्ति सो कहि 'भूषन' कविराज ॥ ११८ ॥

(उदाहरण कवित्त मनहरण)

मंगन मनोरथ के प्रथमहि दाता तोहिं कामधेनु कामतरु सो गनाइयतु है। याते तेरे गुन सब गाय को सकत कवि, बुद्धि

अनुसार कछु तऊ गाइयतु है। 'भूषन' भनत साहि-तनै सिव-राज निज बखत बढ़ाय करि तोहि ध्याइयतु है। दीनता को डारि औ अधीनता बिडारि दीह दारिद को मारि तेरे द्वार आइयतु है ॥ ११६ ॥

(दोहा)

कवि तरुवर सिव सुजस रस सींचे अचरज मूल।
सुफल होत है प्रथम ही पीछे प्रगटत फूल ॥ १२० ॥

[सामान्य-विशेष]

(लक्षण-दोहा)

कहिये जहँ सामान्य है कहै जु तहाँ विशेष।
सो सामान्य-विशेष है बरनत सुकवि अशेष ॥ १२१ ॥

(उदाहरण—दोहा)

और नृपति 'भूषन' कहै करैं न सुगमौ काज।
साहि-तनै सिव सुजस तो करै कठिनऊ आज ॥ १२२ ॥

(मालती—सवैया)

जीति लई वसुधा सिगरी घमसान घमंड कै बीरन हू की।
'भूषन' भौंसिला छीनि लई जगती उमराव-अमीरन हू की ॥
साहितनै सिवराज की धाकनि छूटि गई धृति धीरन हू की।
मीरन के उर पीर बढ़ी यों जु भूलि गई सुधि पीरन हू की ॥ १२३ ॥

[तुल्ययोगिता]

(लक्षण—दोहा)

तुल्ययोगिता तहँ धरम जहँ बरन्यन को एक।
कहुँ अबरन्यन को कहत 'भूषन' बरनि बिवेक ॥ १२४ ॥

(उदाहरण—मनहरण दंडक)

चढ़न तुरंग चतुरंग साजि सिवराज चढ़त प्रताप दिन दिन अति जंग में। 'भूषन' चढ़त मरहट्टन के चित्त चाव खग्ग खुलि चढ़त है अरिन के अंग में॥ भौंसिला के हाथ गढ़ कोट हैं चढ़त अरि जोट ह्वै चढ़त एक मेरुगिरि शृंग में। तुरकान-गन व्योमयान हैं चढ़त विनु मान है चढ़त वदरंग अवरंग में॥ १२५॥

(दोहा)

सिव सरजा भारी भुजन भुव भरु धर्यौ सभाग।
'भूषन' अब निहचिंत हैं सेसनाग दिगनाग॥ १२६॥

(द्वितीय लक्षण-दोहा)

हित अनहित को एक सो जहँ बरनत व्यवहार।
तुल्ययोगिता और सो भूषन ग्रंथ विचार॥ १२७॥

(उदाहरण—कवित्त मनहरण)

गुनन सों इनहूँ को बाँधि लाइयतु पुनि गुनन सों उनहूँ को बाँधि लाइयतु है। पाय गहि इनहूँ को रोज ध्याइयतु अरु पाय गहि उनहूँ को रोज ध्याइयतु है॥ 'भूषन' भनत महराज सिवराज रस-रोस तो हिये में एक भाँति पाइयतु है। दोहाई कहे ते कवि लोग ज्याइयतु अरु दोहाई कहे ते अरि लोग ज्याइयतु है॥ १२८॥

[दीपक]

(लक्षण-दोहा)

वर्न्य अवर्न्यन को धरम जहँ वरनत हैं एक।
दीपक ताको कहत हैं 'भूषन' सुकवि विवेक॥ १२९॥

(उदाहरण—मालती सवैया)

कामिनी कंत सों, जामिनी चंद सों, दामिनी पावस-मेघ-घटा सों। कीरति दान सों, सूरति ज्ञान सों, प्रीति बड़ी सनमान महा सों॥ 'भूषन' भूषन सों तरुनी, नलिनी नव पूषनदेव प्रभा सों। जाहिर चारिहु ओर जहान लसै हिन्दुवान खुमान सिवा सों॥ १३०॥

[दीपकावृत्ति]

(लक्षण-दोहा)

दीपक पद के अरथ जहँ फिरि फिरि करत बखान।
आवृति दीपक तहँ कहत 'भूषन' सुकवि सुजान॥ १३१॥

(उदाहरण—दोहा)

सिव सरजा तव दान को करि को सकत बखान।
बढ़त नदीगन दान-जल उमड़त नद गजदान॥ १३२॥

(मालती—सवैया)

चक्रवती चकता-चतुरंगिनि चारिउ चापि लई दिसि चंका। भूप दरीन दुरे भनि 'भूषन' एक अनेकन बारिधि नंका॥ औरँगसाहि सों साहि को नंद लरो सिव साहि बजाय कै डंका। सिंह को सिंह चपेट सहैं गजराज सहै गजराज को धंका॥ १३३॥

(मनहरण—दंडक)

अटल रहे हैं दिगअंतन के भूप धरि रैयति को रूप निज देस पेस करि कै। राना रह्यो अटल बहाना करि चाकरी को बाना तजि 'भूषन भनत गुन भरि कै। हाड़ा रायठौर कछवाहे गौर और रहे अटल चकत्ता को चमाऊ धरि डरि कै। अटल सिवाजी रह्यो दिल्ली को निदरि धीर धरि ऐंड़ धरि तेग धरि गढ़ धरि कै॥ १३४॥

[प्रतिवस्तूपमा]

(लक्षण-दोहा)

वाक्यनि को जुग होत जहँ एकै अरथ समान।
जुदो जुदो करि भाषिए प्रतिवस्तूपम जान ॥ १३५ ॥

(उदाहरण—लीलावती छंद)

मद-जल धरत द्विरद-बल राजत, बहु-जल-धरन जलद छवि साजै। पुहुमि-धरन फनिनाथ लसत अति, तेज-धरन ग्रीपम-रवि छाजै॥ खरग धरन सोभा तहँ राजत, रुचि 'भूपन' गुन धरन समाजै। दिल्ली-दलन दक्खिन-दिसि-थम्भन, ऐंड़-धरन सिवराज विराजै ॥ १३६ ॥

[दृष्टांत]

(लक्षण-दोहा)

जुग वाक्यन को अरथ जहँ प्रतिविंवित सो होत।
तहाँ कहत दृष्टांत हैं 'भूपन' सुमति उदोत ॥ १३७ ॥

(उदाहरण-दोहा)

शिव औरंगहि जिति सकै और न राजा राव।
हत्थिमत्थ पर सिंह बिनु आन न घालै घाव ॥ १३८ ॥
चाहत निरगुन सगुन को ज्ञानवंत गुनधीर।
यही भाँति निरगुन गुनिहि सिवा नेवाजत वीर ॥ १३९ ॥

(मालती—सवैया)

देत तुरी-गन गीत सुने बिनु देत करीगन गीत सुनाए। 'भूपन' भावत भूप न आन जहान खुमान की कीरति गाए॥ मंगन को भुवपाल घने पै निहाल करै सिवराज रिझाए। आन ऋतैं बरसैं सरसैं उमड़ैं नदिया ऋतु पावस पाए ॥ १४० ॥

[निदर्शना]

(लक्षण-दोहा)

सदृश वाक्य जुग अरथ को करिए एक अरोप।
'भूषन' ताहि निदर्शना कहत बुद्धि दै ओप॥ १४१॥

(उदाहरण—मालती सवैया)

मच्छहु कच्छ में कोल नृसिंह में बावन में भनि 'भूषन' जो है। जो द्विजराम में जो रघुराम में जोव कह्यो बलरामहु को है॥ बौद्ध में जो अरु जो कलकी महँ विक्रम होवे को आगे सुनो है। साहस भूम-अधार सोई अब श्रीसरजा सिवराज में सो है॥ १४२॥

(कवित्त—मनहरण)

कीरति-सहित जो प्रताप सरजा में बर मारतंड मध्यतेज चाँदनी सो जानी मैं। सोहत उदारता औ सीलता खुमान में सो कंचन में मृदुता सुगंधता बखानी मैं॥ 'भूषन' कहत सब हिंदुन को भाग फिरै चढ़े ते कुमति चकता हू को निसानी मैं। सोहत सुबेस दान कीरति सिवा में सोई निरखी अनूप रुचि मोतिन के पानी मैं॥ १४३॥

(दोहा)

औरन को जो जनम है, सो याको यक रोज।
औरन को जो राज सो, सिव सरजा की मौज॥ १४४॥
साहिन सों रन माँडिबो कीबो सुकबि निहाल।
सिव सरजा को ख्याल है औरन को जंजाल॥ १४५॥

[व्यतिरेक]

(लक्षण-दोहा)

सम छबिवान दुहून में, जहँ बरनत बढ़ि एक।
'भूषन' कवि कोविद सबै, ताहि कहत व्यतिरेक॥ १४६॥

(उदाहरण-छप्पय)

त्रिभुवन में परसिद्ध एक अरि-बल वह खंडिय।
यहि अनेक अरि-बल बिहंडि रन-मंडल मंडिय॥
'भूषन' वह ऋतु एक पुहुमि पानिपहि बढ़ावत।
यह छहु ऋतु निसि दिन अपार पानिप सरसावत॥
सिवराज साहि सुव सत्थ नित हय गय लक्खन संचरइ।
यक्कइ गयंद यक्कइ तुरँग किमि सुरपति सरवरि करइ॥ १४७॥

(कवित्त मनहरण)

दारुन दुगुन दुरजोधन ते अवरंग 'भूषन' भनत जग राख्यो छल मढ़ि कै। धरम धरम, बल भीम, पैज अरजुन, नकुल अकिल, सहदेव तेज चढ़ि कै॥ साहि के सिवाजी गाजी, कर्‌यो दिली माँहि चंड पांडवनहू ते पुरुषारथ सु बढ़ि कै। सूने लाखभौन ते कढ़े वै पाँच राति, तैं जु द्योस लाख चौकी ते अकेलो आयो कढ़ि कै॥ १४८॥

[सहोक्ति]

(लक्षण-दोहा)

बस्तुन को भासन जहाँ, जन-रंजन सह भाव।
ताहि सहोक्ति बखानहीं, जे 'भूषन' कबिराव॥ १४९॥

(उदाहरण—मनहरण दंडक)

छूट्यो है हुलास आम खास एक संग छूट्यो हरम-सरम एक संग बिनु ढंग ही। नैनन ते नीर धीर छूट्यो एक संग छूट्यो सुख-रुचि मुख-रुचि त्योंही बिन रंग ही॥ 'भूषन' बखानै सिवराज मरदाने तेरी धाक बिललाने न गहत बल अंग ही। दक्खिन को सूबा पाय दिली के अमीर तजैं उत्तर की आस जीव-आस एक संग ही॥ १५०॥

[विनोक्ति]

(लक्षण-दोहा)

बिना कछू जहँ वरनिए कै हीनो कै नीक ।
ताको कहत विनोक्ति है कवि 'भूषन' मति ठीक ॥ १५१ ॥

(उदाहरण-दोहा)

सोभमान जग पर किए सरजा सिवा खुमान ।
साहिन सो बिनु डर अगड़ बिन गुमान को दान ॥ १५२ ॥

(मालती सवैया)

को कबिराज-बिभूषन होत बिना कबि साहि-तनै को कहाए ?
को कबिराज सभाजित होत सभा सरजा के बिना गुन गाए ?
को कबिराज भुवालन भावत भौंसिला के मन मैं बिनु भाए ?
को कबिराज चढ़ै गज बाजि सिवाजि कि मौज मही बिनु पाए ? ॥ १५३ ॥

(कवित्त मनहरण)

बिना लोभ को बिवेक बिना भय जुद्ध टेक साहिन सों सदा साहि-तनै सिरताज के । बिना ही कपट प्रीति बिना ही कलेस जीति बिना ही अनीति रीति लाज के जहाज के ॥ सुकबि-समाज बिन अरजस-काज भनि 'भूषन' भुसिल भूप गरिबनेवाज के । बिना ही बुराई ओज बिना काज बनी फौज बिना अभिमान मौज राजै सिवराज के ॥ १५४ ॥

कीरति को ताजी करी बाजि चढ़ि लूटि कीन्हीं भई सब सेना बिनु बाजी बिजैपुर की । 'भूषन' भनत भौंसिला भुवाल धाक ही सों धीर धरबी न फौज कुतुब के धुर की ॥ सिंह

उदैभान बिन अमर सुजान बिन मान बिन कीन्ही साहिबी त्यों दिलीसुर की। साहि-सुव महाबाहु सिवाजी-सलाह बिन कौन पातसाह की न पातसाही मुरकी ॥ १५५ ॥

[समासोक्ति]

(लक्षण-दोहा)

बरनन कीजै आन को ज्ञान आन को होय।
समासोक्ति भूषन कहत कवि कोविद सब कोय ॥ १५६ ॥

(उदाहरण-दोहा)

बड़ो डील लखि पील को सबन तज्यो बन थान।
धनि सरजा तू जगत में ता को हर्‌यौ गुमान ॥ १५७ ॥
तुही साँच द्विजराज है तेरी कला प्रमान।
तो पर सिव किरपा करी जानत सकल जहान ॥ १५८ ॥

(कवित्त मनहरण)

उत्तर पहार बिधनोल खँडहर झारखंडहु प्रचार चारु केली है बिरद की। गौर गुजरात अरु पूरब पछाँह ठौर जंतु जंगलीन को बसति मारि रद की ॥ 'भूषन' जो करत न जाने बिनु घोर सोर भूलि गयो आपनो ऊँचाई लखे कद की। खोइयो प्रबल मदगल गजराज एक सरजा सों बैर कै बड़ाई निज मद की ॥ १५९ ॥

[परिकर तथा परिकरांकुर]

(लक्षण-दोहा)

साभिप्राय विशेषननि 'भूषन' परिकर मान।
साभिप्राय विशेष्य ते परिकर अंकुर जान ॥ १६० ॥

(उदाहरण परिकर-कवित्त मनहरण)

बचैगा न समुहाने बहलोल खाँ अयाने 'भूषन' बखाने दिल आनि मेरा बरजा। तुझ ते सवाई तेरा भाई सलहेरि पास कैद किया साथ का न कोई वीर गरजा॥ साहिन के साहि उसी औरँग के लीन्हे गढ़ जिसका तू चाकर औ जिसकी है परजा। साहि का ललन दिल्ली-दल का दलन अफजल का मलन सिवराज आया सरजा॥ १६१॥

जाहिर-जहान जाके धनद-समान पेखियतु पासवान यों खुमान चित चाय है। 'भूषन' भनत देखे भूप न रहत सब आप ही सों जात दुख-दारिद्र बिलाय है॥ खीझे ते खलक माहिं खलभल डारत है रीझे ते पलक माहिं कीन्हे रंक राय है। जंग जुरि अरिन के अंग को अनंग कीबो दीबो सिव साहब के सहज सुभाय है॥ १६२॥

(दोहा)

सूर-सिरोमनि सूर-कुल सिव सरजा मकरंद।
'भूषन' क्यों औरँग जितै कुल मलिच्छ कुल चंद॥ १६३॥

(परिकरांकुर-दोहा)

'भूषन' भनि सबही तबहि जीत्यो हो जुरि जंग।
क्यों जीतै सिवराज सों अब अंधक अवरंग ? ॥ १६४॥

[श्लेष]

(लक्षण-दोहा)

एक वचन में होत जहँ बहु अर्थन को ज्ञान।
स्लेष कहत हैं ताहि को 'भूषन' सुकवि सुजान॥ १६५॥

(उदाहरण—कवित्त मनहरण)

सीता संग सोभित सुलच्छन सहाय जाके भू पर भरत नाम भाई नीति चारु है। 'भूषन' भनत कुल सूर कुल-भूषन हैं दासरथी सब जाके भुज भुव भारु है॥ अरि लंक तोर जोर जाके संग वानर हैं सिंधुर हैं बाँधे जाके दल को न पारु है। तेगहि कै भेंटै जैान राकस मरद जाने सरजा सिवाजी राम ही के अवतारु है॥ १६६॥

देखत सरूप को सिहात न मिलन काज जग जीतिवे की जामें रीति छल वल की। जाके पास आवै ताहि निधन करति वेगि 'भूषन' भनत जाकी संगति न फल की॥ कीरति कामिनी राच्यो सरजा सिवा की एक वस कै सकै न वस-करनी सकल की। चंचल सरस एक काहू पै न रहै दारी गनिका-समान सूवेदारी दिली-दल की॥ १६७॥

[अप्रस्तुतप्रशंसा]

(लक्षण-दोहा)

प्रस्तुति लीन्हें होत जहँ, अप्रस्तुत परसंस।
अप्रस्तुति परसंस सो कहत सुकवि अवतंस॥ १६८॥

(उदाहरण-दोहा)

हिंदुनि सों तुरकिनि कहैं तुम्हैं सदा संतोष।
नाहिन तुम्हरे पतिन पर सिव सरजा कर रोष॥ १६९॥
अरि-तिय भिल्लिनि सों कहैं धन वन जाय इकंत।
सिव सरजा सों वैर नहिं सुखी तिहारे कंत॥ १७०॥

(मालती सवैया)

काहू पै जात न 'भूषन' जे गढ़पाल कि मौज निहाल रहे हैं।
आवत हैं जु गुनी जन दच्छिन भौंसिला के गुन गीत लहे हैं॥

राजन राव सबै उमराव खुमान कि धाक धुके यों कहे हैं। संक नहीं, सरजा सिवराज सों आजु दुनी में गुनी निरभै हैं॥ १७१ ॥

[पर्य्यायोक्ति]

(लक्षण-दोहा)

वचनन की रचना जहां वर्णनीय पर जानि।
परजायोकति कहत हैं 'भूषन' ताहि बखानि ॥ १७२ ॥

(उदाहरण—मनहरण दंडक)

महाराज सिवराज तेरे वैर देखियतु घन बन है रहे हरम हबसीन के। 'भूषन' भनत तेरे वैर रामनगर जवारि परवाह बहे रुधिर नदीन के॥ सरजा समत्थ वीर तेरे वैर बीजापुर वैरी-बैयरनि कर चीन्ह न चुरीन के। तेरे रोस देखियत आगरे दिल्ली के बीच सिंदुर के बुंद मुख इंदु जमनीन के ॥ १७३ ॥

[व्याजस्तुति]

(लक्षण-दोहा)

सुस्तुति में निंदा कहै निंदा में स्तुति होय।
व्याजस्तुति ताको कहत कवि 'भूषन' सब कोय॥ १७४ ॥

(उदाहरण-कवित्त मनहरण)

पीरी पीरी ह्वै तुम देत हो मँगाय हमैं सुबरन हम सों परखि करि लेत हो। एक पलही में लाख रूखन सों लेत लोग तुम राजा ह्वै के लाख दीबे को सचेत हो॥ 'भूषन' भनत महराज सिवराज बड़े दानी दुनी ऊपर कहाए केहि हेत हौ? रीझि हँसि हाथी हमैं सब कोऊ देत कहा रीझि हँसि हाथी एक तुमहियो देत हौ? ॥ १७५ ॥

तू तो राते दिन जग जागत रहत वेऊ जागत रहत रातो दिन वन रत हैं । 'भूषन' भनत तू विराजै रज भरो वेऊ रज भरे देहिन दरी में विचरत हैं ॥ तूतौ सूर गन को बिदारि विहरत सूर-मंडलै बिदारि वेऊ सुरलोक रत हैं । काहे ते सिवाजी गाजी ऐसेई सुजस होत तोसों अरिवर सरिवर सी करत हैं ॥ १७६ ॥

[आक्षेप]

(लक्षण-दोहा)

पहिले कहिये बात कछु, पुनि ताको प्रतिषेध ।
ताहि कहत आच्छेप हैं 'भूषन' सुकवि सुमेध ॥ १७७ ॥

(उदाहरण—मालती सवैया)

जाय भिरौ न भिरे बचिहौ भनि 'भूषन' भौंसिला भूप सिवा सों । जाय दरीन दुरौ दरिऔ तजिकै दरियाव लँघौ लघुता सों ॥ सौऊन काज वजीरन को कहै बोल यों एदिल साहि सभा सों । छूटि गयो तो गयो परनाला सलाह कि राह गहो सरजा सों ॥ १७८ ॥

(द्वितीय—लक्षण-दोहा)

जेहि निषेध आभास ही भनि 'भूषन' सो और ।
कहत सकल आच्छेप हैं जे कबिकुल-सिरमौर ॥ १७९ ॥

(उदाहरण—कवित्त मनहरण)

पूरब के उत्तर के प्रबल पछाहँहू के सब बादसाहन के गढ़ कोट हरते । 'भूषन' कहैं यों अवरंग सों वजीर जीति लीबे को पुरतगाल सागर उतरते ॥ सरजा सिवा पर पठावत मुहीम काज हजरत हम मरिबे को नाहिंन हैं डरते । चाकर हैं उजुर कियो न जाय नेक पै कछू दिन उबरते तो घने काज करते ॥ १८० ॥

[विरोध—द्वितीय विषम]

(लक्षण-दोहा)

द्रव्य क्रिया गुन में जहाँ उपजत काज-विरोध।
ताको कहत विरोध हैं 'भूषन' सुकवि सुबोध ॥ १८१ ॥

(उदाहरण—मालती सवैया)

श्रीसरजा सिव तो जस सेत सों होत हैं वैरिन के मुँह कारे। 'भूषन' तेरे अरुन्न प्रताप सपेद लखे कुनवा नृप सारे ॥ साहितनै तव कोप कृसानु ते वैरि गरे सब पानिप वारे। एक अचंभव होत बड़ो तिन ओंठ गहे अरि जात न जारे ॥ १८२ ॥

[विरोधाभास]

(लक्षण-दोहा)

जहँ विरोध सो जानिये, साँच विरोध न होय।
तहाँ विरोधाभास कहि, बरनत हैं सब कोय ॥ १८३ ॥

(उदाहरण—मालती सवैया)

दच्छिन नायक एक तुही, भुव-भामिनि को अनुकूल ह्वै भावै। दीनदयाल न तो सो दुनी पर म्लेच्छ के दीनहिं मारि मिटावै ॥ श्रीसिवराज भनै कवि 'भूषन' तेरे सरूप को कोउ न पावै। सूर सुवंस में सूर-सिरोमनि ह्वै करि तू कुलचंद कहावै ॥ १८४ ॥

[विभावना]

(लक्षण-दोहा)

भयो काज बिनु हेतुहीं, बरनत हैं जेहि ठौर।
तहँ विभावना होत है, कवि 'भूषन' सिरमौर ॥ १८५ ॥

(उदाहरण—मालती सवैया)

बीर बड़े बड़े मीर पठान खरो राजपूतन के। गन भारो।
'भूषन' आय तहाँ सिवराज लयो हरि औरँगज़ेब को गारो॥
दीन्हों कुज्वाब दिलीपति के। अरु कीन्हों वजीरन को मुँह कारो।
नायो न माथहि दक्खिननाथ न साथ में फौज न हाथ हथ्यारो॥ १८६॥

(दोहा)

साहितनै सिवराज की सहज टेव यह ऐन।
अनरीझे दारिद हरै, अनखीझे अरि-सैन॥ १८७॥

[और दो विभावना]

(लक्षण-दोहा)

जहाँ हेतु पूरन नहीं, उपजत है पर काज।
कै अहेतु तें और यों द्वै विभावना साज॥ १८८॥

(उदा०—अपूर्ण कारण से कार्य की उत्पत्ति—कवित्त मनहरण)

दच्छिन के। दाबि करि बैठो है सइस्त खान पूना महिं दूना करि जोर करवार के। । हिंदुवान-खंभ गढ़पति दलथंभ भनि 'भूषन' भरैया कियो सुजस अपार के।॥ मनसबदार चौकीदारन गँजाय महलन में मचाय महाभारत के भार के। । ते। से। के। सिवाजी जेहि दे। सै। आदमी सें। जीत्यो जंग सरदार सौ हजार असवार के।॥ १८९॥

(अहेतु से कार्य की उत्पत्ति)

ता दिन अखिल खलभलै खल खलक में जा दिन सिवाजी गाजी नेक करखत हैं। सुनत नगारन अगार तजि अरिन की दारगन भाजत न बार परखत हैं॥ छूटे बार बार छूटे बारन तें

लाल देखि 'भूषन' सुकवि वरनत हरखत हैं। क्यों न उतपात होंहि वैरिन के भुंडन में कारे घन उमड़ि अँगारे वरखत हैं॥ १९०॥

[और विभावना]

(लक्षण-दोहा)

जहाँ प्रगट 'भूषन' भनत हेतु काज ते होय।
सो विभावना औरऊ कहत सयाने लोय॥ १९१॥

(उदाहरण-दोहा)

अचरज 'भूषन' मन बढ़यो, श्रीसिवराज खुमान।
तव कृपान-धुव-धूम ते, भयो प्रताप कृसान॥ १९२॥

(कवित्त मनहरण)

साहि-तनै सिव! तेरो सुनत पुनीत नाम धाम धाम सब ही को पातक कटत है। तेरो जस काज आज सरजा निहारि कवि मन भोज विक्रम कथा ते उचटत है॥ 'भूषन' भनत तेरो दान-संकलप-जल अचरज सकल मही में लपटत है। और नदी नदन ते कोकनद होत तेरो कर-कोकनद नदी नद प्रगटत है॥ १९३॥

[विशेपोक्ति]

(लक्षण-दोहा)

जहाँ हेतु समरथ भयहु प्रगट होत नहिं काज।
तहाँ विसेसोकति कहत 'भूषन' कवि-सिरताज॥ १९४॥

(उदाहरण—मालती सवैया)

दै दस पाँच रुपैयन को जग कोउ नरेस उदार कहायो। 'भूषन' कोउ गरीबन सों भिरि भीमहुँ ते बलवंत गनायो। कोटिन दान सिवा, सरजा के सिपाहिन साहिन को विचलायो॥ दौलति इंद्र समान बढ़ी पै खुमान के नेक गुमान न आयो॥ १९५॥

[असंभव]

(लक्षण-दोहा)

अनहूवे की बात कछु प्रगट भई सी जानि।
तहाँ असंभव बरनिए सोई नाम बखानि ॥ १९६ ॥

(उदाहरण—दोहा)

औरँग यों पछितात मैं करतो जतन अनेक।
सिवा लेइगो दुरग सब को जानै निसि एक ॥ १९७ ॥

(कवित्त मनहरण)

जसन के रौज यों जलूस गहि बैठो जोऽब इंद्र आवै सोऊ लागै औरँग की परजा। 'भूषन' भनत तहाँ सरजा सिवाजी गाज़ी तिनको तुजुक देखि नेकहू न लरजा ॥ ठान्यो न सलाम भान्यो साहि को इलाम धूम धाम कै न मान्यो राम सिंहहू को बरजा। जासों बैर करि भूप बचै न दिगन्त ताके दंत तोरि तखत तरे ते आयो सरजा ॥ १९८ ॥

[असंगति, प्रथम]

(लक्षण-दोहा)

हेतु अनत ही होय जहँ काज अनत ही होय।
ताहि असंगति कहत हैं 'भूषन' सुमति समोय ॥ १९९ ॥

(उदाहरण—कवित्त मनहरण)

महाराज सिवराज चढ़त तुरंग पर ग्रीवा जात नै करि गनीम अतिबल की। 'भूषन' चलत सरजा की सैन भूमि पर छाती दरकत है खरी अखिल खल की ॥ कियो दौरि घाव उमरावन अमीरन पै गई कटि नाक सिगरेई दिली-दल की। सूरत जराई कियो दाह पातसाह उर स्याही जाय सब पात-साही मुख झलकी ॥ २०० ॥

[असंगति, द्वितीय]

(लक्षण-दोहा)

आन ठौर करनीय सो करै और ही ठौर।
ताहि असंगति और कवि 'भूषन' कहत सगौर ॥ २०१ ॥

(उदाहरण—मनहरण दंडक)

भूपति सिवाजी तेरी धाक सों सिपाहिन के राजा पात-साहिन के मन ते अहं गली। भौंसिला अभंग तू तौ जुरतो जहाँई जंग तेरी एक फते होत मानो सदा संग ली ॥ साहि के सपूत पुहुमी के पुरहूत कवि 'भूषन' भनत तेरी खरगऊ दंगली। सत्रुन की सुकुमारी थहरानी सुंदर औ सत्रु के अगारन में राखे जंतु जंगली ॥ २०२ ॥

[असंगति, तृतीय]

(लक्षण-दोहा)

करन लगै औरै कछू करै औरई काज ॥
तहाँ असंगति होत है कहि 'भूषन' कविराज ॥ २०३ ॥

(उदाहरण-मालती सवैया)

साहि-तनै सरजा सिव के गुन नेकहु भाषि सक्यो न प्रवीनो। उद्यत होत कछू करिबे को करै कछु वीर महा रस भीनो ॥ छाँति गयो चकतै सुख देन को गोसलखाने गयो दुख दीनो। जाय दिली दरगाह सुसाह को 'भूषन' बैरि बनाय ही लीनो ॥ २०४ ॥

[विषम]

(लक्षण-दोहा)

कहाँ बात यह कहँ वहै, यों जहँ करत बखान।
तहाँ विषम भूषन कहत 'भूषन' सुकवि सुजान ॥ २०५ ॥

(उदाहरण—मालती सवैया)

जावलि वार सिंगारपुरी औ जवारि को राम के नैरि को गाजि। 'भूषन' भौंसिला भूपति ते सब दूरि किए करि कीरति ताजी॥ वैर कियो सिवाजी सों खवास खाँ डौंड़िये सैन विजैपूर वाजी। वापुरो एदिल साहि कहाँ कहाँ दिल्लि को दामनगीर सिवाजी॥ २०६॥

लै परनालो सिवा सरजा करनाटक लौं सब देस विगूँचे। वैरिन के भगे वालक वृन्द कहै कवि 'भूषन' दूरि पहूँचे॥ नांघत नांघत घोर घने वन हानि परे यों कटे मनो कूँचे। राजकुमार कहां सुकुमार कहाँ विकरार पहार वे ऊँचे ?॥ २०७॥

[सम]

(लक्षण-दोहा)

जहाँ दुहूँ अनुरूप को करिए उचित बखान।
सम भूषन तासों कहत 'भूषन' सकल सुजान॥ २०८॥

(उदाहरण—मालती सवैया)

पंजहजारिन वीच खड़ा किया मैं उसका कुछ भेद न पाया। 'भूषन' यों कहि औरँगजेब उजीरन सों वेहिसाव रिसाया॥ कम्मर की न कटारी दई इसलाम ने गोसलखाना वचाया। जोर सिवा करता अनरत्थ भली भई हत्थ हथ्यार न आया॥ २०९॥

(दोहा)

कछु न भयो केता गयो, हार्‌यो सकल सिपाह।
भली करै सिवराज सों, औरँग करै सलाह॥ २१०॥

[विचित्र]

(लक्षण-दोहा)

जहाँ करत हैं जतन फल, चित्त चाहि विपरीत।
'भूषण' ताहि विचित्र कहि, बरनत सुकवि विनीत॥ २११॥

(उदाहरण-दोहा)

तैं जयसिंहहिं गढ़ दिये, सिव सरजा जस-हेत ।
लीन्हें कैयो बरस मैं, बार न लागी देत ॥ २१२ ॥

(कवित्त मनहरण)

बीदर कल्यान दै परेंडा आदि कोट साहि एदिल गँवाय है नवाय निज सीस को । 'भूषन' भनत भागनगरी कुतुब साह दै करि गँवायो रामगिरि से गिरीस को ॥ भौंसिला भुवाल साहि-तने गढ़पाल दिन दोउ ना लगाए गढ़ लेत पँचतीस को । सरजा सिवाजी जयसाह मिरजा को लीने सौ गुनी बड़ाई गढ़ दीन्हे हैं दिलीस को ॥ २१३ ॥

[प्रहर्षण]

(लक्षण-दोहा)

जहँ मन वांछित अरथ तें प्रापति कछु अधिकाय ।
तहाँ प्रहरषन कहत हैं 'भूषन' जे कविराय ॥ २१४ ॥

(उदाहरण—मनहरण दंडक)

साहि-तने सरजा की कीरति सों चारों ओर चाँदनी वितान छिति-छोर छाइयतु है । 'भूषन' भनत ऐसो भूप भौंसिला है जाको द्वार भिच्छुकन सों सदाई भाइयतु है ॥ महादानि सिवाजी खुमान या जहान पर दान के प्रमान जाके यों गनाइयतु है । रजत की हौंस किए हेम पाइयतु जासों हयन की हौंस किए हाथी पाइयतु है ॥ २१५ ॥

[विषादन]

(लक्षण-दोहा)

जहँ चिन्ताहि काज तें उपजत काज विरुद्ध ।
ताहि विषादन कहत हैं 'भूषन' बुद्धि विसुद्ध ॥ २१६ ॥

(उदाहरण—मालती सवैया)

दारहि दारि मुरादहि मारि कै संगर साह सुजै बिचलायो। कै कर मैं सब दिल्लि की दौलति औरहु देस घने अपनायो॥ बैर कियो सरजा सिव सों यह नौरँग के न भयो मन भायो। फौज पठाई हुती गढ़ लेन को गाँठिहु के गढ़ कोट गँवायो॥ २१७॥

(दोहा)

महाराज सिवराज तव बैरी तजि रस रुद्र।
बचिबे को सागर तिरे बूड़े सोक-समुद्र॥ २१८॥

[अधिक]

(लक्षण-दोहा)

जहाँ बड़े आधार ते बरनत बढ़ि आधेय।
ताहि अधिक 'भूषन' कहत जानि सुग्रंथ प्रमेय॥ २१९॥

(उदाहरण—दोहा)

सिव सरजा तव हाथ को नहिँ बखान करि जात।
जाको बासी सुजस सब त्रिभुवन मैं न समात॥ २२०॥

(कवित्त मनहरण)

सहज सलील सील जलद से नील डील पब्बय से पील देत नाहिं अकुलात है। 'भूषन' भनत महाराज सिवराज देत कंचन को ढेरु जो सुमेरु सो लखात है॥ सरजा सवाई कासों करि कबिताई तव हाथ की बड़ाई को बखान करि जात है? जाको जस टंक साती दीप नव खंड महि-मंडल की कहा ब्रह्मंड ना समात है॥ २२१॥

[अन्योन्य]

(लक्षण-दोहा)

अन्योन्या उपकार जहँ यह बरनन ठहराय।
ताहि अन्योन्या कहत हैं अलंकार कविराय॥ २२२॥

(उदाहरण—मालती सवैया)

तो कर सों छिति छाजत दान है दान हू सों अति तो कर छाजै। तैंही गुनी की बड़ाई सजै अरु तेरी बड़ाई गुनी सब साजै॥ 'भूषन' तोहि सों राज बिराजत राज सों तू सिवराज बिराजै। तो बल सों गढ़ कोट गजै अरु तू गढ़ कोटन के बल गाजै॥ २२३॥

[विशेष]

(लक्षण-दोहा)

बरनत हैं आधेय को, जहँ बिनही आधार।
ताहि विसेष बखानहीं, 'भूषन' कवि-सरदार॥ २२४॥

(उदाहरण—दोहा)

सिव सरजा सों जंग जुरि, चंदावत रजवंत।
राव अमर गो अमरपुर, समर रही रजतंत॥ २२५॥

(कवित्त मनहरण)

सिवाजी खुमान सलहेरि में दिलीस-दल कीन्हों कतलाम करवाल गहि कर में। सुभट सराहे चंदावत कछवाहे मुगलौ पठान ढाहे फरकत परे फर में। 'भूषन' भनत भौंसिला के भट उद्‌भट जीति घर आए धाक फैली घर घर में। मारु के करैया अरि अमरपुरै गे तऊ अजौं मारु मारु सोर होत है समर में॥ २२६॥

[व्याघात]

(लक्षण-दोहा)

और काज करता जहाँ, करै औरई काज।
ताहि कहत व्याघात हैं, 'भूषन' कवि-सिरताज॥ २२७॥

(उदाहरण—मालती सवैया)

ब्रह्म रचै पुरुषोत्तम पोसत संकर सृष्टि सँहारन हारे। तू हरि को अवतार सिवा नृप काज सँवारे सबै हरि वारे॥ 'भूषन' यों अवनी यवनी कहैं कोऊ कहै सरजा सों हहारे। तू सबको प्रतिपालनहार विचारे भतार न मारु हमारे॥ २२८॥

(कवित्त मनहरण)

कसत मैं बार बार वैसोई बलंद होत वैसोई सरस रूप समर भरत है। 'भूषन' भनत महराज सिव राज-मनि, सघन सदाई जस फूलन धरत है॥ बरछी कृपान गोली तीर केते मान जोरावर गोला बान तिनहू को निदरत है। तेरो करवाल भयो जगत की ढाल, अब सोई हाल म्लेच्छन के काल को करत है॥ २२९॥

[कारणमाला, गुम्फ]

(लक्षण-दोहा)

पूरब पूरब हेतु कै, उत्तर उत्तर हेतु।
या विधि धारा वरनिए गुम्फ कहावत नेतु॥ २३०॥

(उदाहरण—मालती सवैया)

शंकर की किरपा सरजा पर जोर बढ़ी कवि 'भूषन' गाई। ता किरपा सों सुबुद्धि बढ़ी भुव भौंसिला साहि-तनै की सवाई॥ राज-सुबुद्धि सों दान बढ़्यो अरु दान सों पुन्य-समूह सदाई। पुन्य सों बाढ़्यो सिवाजी खुमान खुमान सों बाढ़ी जहान-भलाई॥२३१॥

(दोहा)

सुजस दान अरु दान धन, धन उपजै किरवान।
सो जग मैं जाहिर करी, सरजा सिवा खुमान॥ २३२॥

(उदाहरण—मालती सवैया)

तो कर सों छिति छाजत दान है दान हू सों अति तो कर छाजै। तैंही गुनी की बड़ाई सजै अरु तेरी बड़ाई गुनी सब साजै॥ 'भूषन' तोहि सों राज बिराजत राज सों तू सिवराज बिराजै। तो बल सों गढ़ कोट गजैं अरु तू गढ़ कोटन के बल गाजै॥ २२३॥

[विशेष]

(लक्षण-दोहा)

बरनत हैं आधेय को, जहँ बिनही आधार।
ताहि बिसेष बखानहीं, 'भूषन' कबि-सरदार॥ २२४॥

(उदाहरण—दोहा)

सिव सरजा सों जंग जुरि, चंदावत रजवंत।
राव अमर गो अमरपुर, समर रही रजतंत॥ २२५॥

(कवित्त मनहरण)

सिवाजी खुमान सलहेरि मैं दिलीस-दल कीन्हों कतलाम करवाल गहि कर मैं। सुभट सराहे चंदावत कछवाहे मुगलौ पठान ढाहे फरकत परे फर मैं। 'भूषन' भनत भौंसिला के भट उद्‌भट जीति घर आए धाक फैली घर घर मैं। मारु के करैया अरि अमरपुरै गे तऊ अजौं मारु मारु सोर होत है समर मैं॥ २२६॥

[व्याघात]

(लक्षण-दोहा)

और काज करता जहाँ, करै औरई काज।
ताहि कहत व्याघात हैं, 'भूषन' कबि-सिरताज॥ २२७॥

[एकावली]

(लक्षण-दोहा)

प्रथम बरनि जहँ छोड़िए, जहां अरथ की पाँति।
बरनत एकावलि अहै कवि 'भूषन' यहि भाँति॥ २३३॥

(उदाहरण—हरिगीतिका छंद)

तिहुँ भुवन मैं 'भूषन' भनै नरलोक पुन्य सुसाज मैं। नरलोक मैं तीरथ लसै महि तीरथों की समाज मैं॥ महि मैं बड़ी महिमा भली महिमैं महारज लाज मैं। रज-लाज राजत आजु है मह-राज श्रीसिवराज मैं॥ २३४॥

[मालादीपक एवं सार]

(लक्षण-दोहा)

दीपक एकावलि मिले, मालादीपक होय।
उत्तर उत्तर उतकरष, सार कहत हैं सोय॥ २३५॥

(उदाहरण, माला दीपक—कवित्त मनहरण)

मन कवि 'भूषन' को सिव की भगति जीत्यो सिव की भगति जीत्यो साधु-जन-सेवा ने। साधु-जन जीते या कठिन कलिकाल कलिकाल महाबीर महाराज महिमेवा ने॥ जगत में जीते महाबीर महाराजन ते महाराज बावन हू पातसाह लेवा ने। पातसाह बावनौ दिली के पातसाह दिल्लीपति पातसाहै जीत्यो हिंदूपति सेवा ने॥ २३६॥

(उदा० सार, मालती सवैया)

आदि बड़ी रचना है बिरंचि की जामैं रह्यौ रचि जीव जड़ो है। ता रचना महँ जीव बड़ो अति काहे ते ता उर ज्ञान गड़ो है। जीवन मैं नर लोग बड़े कवि 'भूषन' भाषत पैज अड़ो है। है नर लोग मैं राज बड़ो सब राजन में सिवराज बड़ो है॥ २३७॥

[यथासंख्य]

(लक्षण-दोहा)

क्रम सों कहि तिनके अरथ, क्रम सों बहुरि मिलाय।
यथासंख्य ताको कहैं 'भूषन' जे कविराय ॥ २३८ ॥

(उदाहरण—कवित्त मनहरण)

जेई चहौ तेई गहौ सरजा सिवाजी देस संके दल दुवन के जे वै बड़े उर के। 'भूषन' भनत भौंसिला सों अब सनमुख कोऊ ना लरैया है धरैया धीर धुर के ॥ अफजल खान, रुस्तमे-जमान, फत्ते खान कूटे कूटे लूटे जूटे ए उजीर विजैपुर के। अमर सुजान मोहकम बहलोल खान खाँड़े छाँड़े डाँड़े उमराव दिलीसुर के ॥ २३९ ॥

[पर्य्याय]

(लक्षण-दोहा)

एक अनेकन में रहै, एकहि में कि अनेक।
ताहि कहत परयाय हैं, 'भूषन' सुकवि विवेक ॥२४०॥

(उदाहरण—दोहा)

जीति रही अवरंग मैं, सवै छत्रपति छाँड़ि।
तजि ताहू कौ अव रही शिव सरजा कर माँड़ि ॥ २४१ ॥

(कवित्त मनहरण)

कोट गढ़ दै कै माल मुलुक मैं बीजापुरी गोलकुंडा-वारो पीछे ही को सरकतु है। 'भूषन' भनत भौंसिला-भुवाल-भुजबल रेवा ही के पार अवरंग हरकतु है। पेसकसैं भेजत इरान फिरँगान पति उनहू के उर याकी धाक धरकतु है। साहितनै सिवाजी खुमान या जहान पर कौन पातसाह के न हिए खर-कतु है ? ॥ २४२ ॥

[एकावली]

(लक्षण-दोहा)

प्रथम बरनि जहँ छोड़िए, जहाँ अरथ की पाँति ।
बरनत एकावलि अहै कवि 'भूषन' यहि भाँति ॥ २३३ ॥

(उदाहरण—हरिगीतिका छंद)

तिहुँ भुवन मैं 'भूषन' भनै नरलोक पुन्य सुसाज मैं । नरलोक मैं तीरथ लसै महि तीरथों की समाज मैं ॥ महि मैं बड़ी महिमा भली महिमैं महारज लाज मैं । रज-लाज राजत आजु है महराज श्रीसिवराज मैं ॥ २३४ ॥

[मालादीपक एवं सार]

(लक्षण-दोहा)

दीपक एकावलि मिले, मालादीपक होय ।
उत्तर उत्तर उतकरष, सार कहत हैं सोय ॥ २३५ ॥

(उदाहरण, माला दीपक—कवित्त मनहरण)

मन कवि 'भूषन' को सिव की भगति जीत्यो सिव की भगति जीत्यो साधु-जन-सेवा ने । साधु-जन जीते या कठिन कलिकाल कलिकाल महाबीर महाराज महिमेवा ने ॥ जगत में जीते महाबीर महाराजन ते महाराज बावन हू पातसाह लेवा ने । पातसाह बावनौ दिली के पातसाह दिल्लीपति पातसाहै जीत्यो हिंदूपति सेवा ने ॥ २३६ ॥

(उदा० सार, मालती सवैया)

आदि बड़ी रचना है बिरंचि की जामैं रह्यौ रचि जीव जड़ो है । ता रचना महँ जीव बड़ो अति काहे ते ता उर ज्ञान गड़ो है । जीवन मैं नर लोग बड़े कवि 'भूपन' भाषत पैज अड़ो है । है नर लोग मैं राज बड़ो सब राजन मैं सिवराज बड़ो है ॥ २३७ ॥

[यथासंख्य]

(लक्षण-दोहा)

क्रम सों कहि तिनके अरथ, क्रम सों बहुरि मिलाय।
यथासंख्य ताको कहैं 'भूषन' जे कबिराय ॥ २३८ ॥

(उदाहरण—कवित्त मनहरण)

जेई चहौ तेई गहौ सरजा सिवाजी देस संके दल दुवन के जे वै बड़े उर के। 'भूषन' भनत भौंसिला सों अब सनमुख कोऊ ना लरैया है धरैया धीर धुर के ॥ अफजल खान, रुस्तमै-जमान, फत्ते खान खूटे कूटे लूटे जूटे ए उजीर बिजैपुर के। अमर सुजान मोहकम बहलोल खान खांड़े छांड़े डांड़े उमराव दिलीसुर के ॥ २३९ ॥

[पर्य्याय]

(लक्षण-दोहा)

एक अनेकन में रहै, एकहि में कि अनेक।
ताहि कहत परयाय हैं, 'भूषन' सुकवि विवेक ॥२४०॥

(उदाहरण—दोहा)

जीति रही अवरंग मैं, सबै छत्रपति छांड़ि।
तजि ताहू कौ अब रही शिव सरजा कर मांड़ि॥ २४१ ॥

(कवित्त मनहरण)

कोट गढ़ दै के माल मुलुक में बीजापुरी गोलकुंडा-वारो पीछे ही को सरकतु है। 'भूषन' भनत भौंसिला-भुवाल-भुजबल रेवा ही के पार अवरंग हरकतु है। पेसकसैं भेजत इरांन फिरँगान पति उनहू के उर याकी धाक धरकतु है। साहितनै सिवाजी खुमान या जहान पर कौन पातसाह के न हिए खरकतु है? ॥ २४२ ॥

अगर के धूप धूम उठत ज़हाँई तहाँ उठत बगूरे अब अति ही अमाप हैं। जहाँई कलावँत अलापैं मधुर स्वर तहाँ भूत प्रेत अब करत बिलाप हैं॥ 'भूषन' सिवाजी सरजा के वैर वैरिन के डेरन मैं परे मनो काहु के सराप हैं। बाजत रहे जिन महलन में मृदंग तहाँ गाजत मतंग सिंघ बाघ दीह दाप हैं ॥२४३॥

[परिवृत्ति]

(लक्षण-दोहा)

एक बात को दै जहाँ आन बात को लेत।
ताहि कहत परिवृत्ति है 'भूषन' सुकबि सचेत ॥ २४४ ॥

(उदाहरण—कवित्त मनहरण)

दच्छिन-धरन धीर-धरन खुमान गढ़ लेत गढ़-धरन सों धरम दुवारु दै। साहि नरनाह को सपूत महाबाहु लेत मुलुक महान छीनि साहन को मारु दै॥ संगर मैं सरजा सिवाजी अरि सैनन को सारु हरि लेत हिंदुवान-सिर सारु दै। 'भूषन' भुँसिल जय जस को पहारु लेत हरजू को हारु हरगन को अहारु दै ॥२४५ ॥

[परिसंख्या]

(लक्षण-दोहा)

अनत वरजि कछु वस्तु जहँ बरनत एकहि ठौर।
तेहि परिसंख्या कहत हैं 'भूषन' कबि दिलदौर ॥ २४६ ॥

(उदाहरण—मनहरण दंडक)

अति मतवारे जहाँ दुरदै निहारियत तुरगन ही में चंचलाई परकीति है। 'भूषन' भनत जहाँ पर लगैं वानन मैं कोक पच्छि-नहि माहिँ विछुरन रीति है। गुनिगन चोर जहाँ एक चित्त

ही के, लोक वँधैं जहाँ एक सरजा की गुन प्रीति है। कंप कद्‌ली मैं वारि वुंद वद्‌ली मैं सिवराज अद्‌ली के राज मैं यों राजनीति है ॥ २४७ ॥

[विकल्प]

(लक्षण-दोहा)

कै वह कै यह कीजिये जहँ कहनावति होय।
ताहि विकल्प वखानहीं 'भूषन' कवि सव कोय ॥२४८॥

(उदाहरण—मालती सवैया)

मोरँग जाहु कि जाहु कुमाऊँ सिरीनगरै कि कवित्त वनाए। वांधव जाहु कि जाहु अमेरि कि जोधपुरै कि चितौरहि धाए ॥ जाहु कुतुव्व कि एदिल पै कि दिलीसहु पै किन जाहु वोलाए। 'भूषन' गाय फिरो महि मैं वनिहै चित चाह सिवाहि रिझाए ॥ २४६ ॥

(मालती सवैया)

देसन देसन नारि नरेसन 'भूषन' यों सिख देहिं दया सों। मंगन ह्वै करि, दंत गहो तिन, कंत तुम्हैं हैं अनंत महा सों ॥ कोट गहौ कि गहौ वन ओट कि फौज की जोट सजौ प्रभुता सों। और करौ किन कोटिक राह सलाह विना वचिहौ न सिवा सों ॥२५०॥

[समाधि]

(लक्षण-दोहा)

और हेतु मिलि कै जहाँ होत सुगम अति काज।
ताहि समाधि वखानहीं 'भूषन' जे कविराज ॥ २५१ ॥

(उदाहरण—मालती सवैया)

वैर कियो सिव चाहत हो तव लौं अरि वाह्यो कटार कठैठो। योंहीं मलिच्छहि छाँड़े नहीं सरजा मन तापर रोस मैं

अगर के धूप धूम उठत जहाँई तहाँ उठत बगूरे अब अति ही अमाप हैं। जहाँई कलावँत अलापैं मधुर स्वर तहाँ भूत प्रेत अब करत बिलाप हैं॥ 'भूषन' सिवाजी सरजा के वैर वैरिन के डेरन मैं परे मनो काहु के सराप हैं। बाजत रहे जिन महलन में मृदंग तहाँ गाजत मतंग सिंघ बाघ दीह दाप हैं॥२४३॥

[परिवृत्ति]

(लक्षण-दोहा)

एक बात को दै जहाँ आन बात को लेत।
ताहि कहत परिवृत्ति है 'भूषन' सुकबि सचेत॥ २४४॥

(उदाहरण—कवित्त मनहरण)

दच्छिन-धरन धीर-धरन खुमान गढ़ लेत गढ़-धरन सों धरम दुवारु दै। साहि नरनाह को सपूत महाबाहु लेत मुलुक महान छीनि साहन को मारु दै॥ संगर मैं सरजा सिवाजी अरि सैनन को सारु हरि लेत हिंदुवान-सिर सारु दै। 'भूषन' भुँसिल जय जस को पहारु लेत हरजू को हारु हरगन को अहारु दै॥२४५॥

[परिसंख्या]

(लक्षण-दोहा)

अनत वरजि कछु वस्तु जहँ बरनत एकहि ठौर।
तेहि परिसंख्या कहत हैं 'भूषन' कवि दिलदौर॥ २४६॥

(उदाहरण—मनहरण दंडक)

अति मतवारे जहाँ दुरदै निहारियत तुरगन ही में चंचलाई परकीति है। 'भूषन' भनत जहाँ पर लगैं बानन मैं कोक पच्छि-नहि माहिँ विछुरन रीति है। गुनिगन चोर जहाँ एक चित्त

ही के, लोक बँधैं जहाँ एक सरजा की गुन प्रीति है। कंप कदली मैं वारि बुंद बदली मैं सिवराज अदली के राज मैं यों राजनीति है ॥ २४७ ॥

[विकल्प]

(लक्षण-दोहा)

कै वह कै यह कीजिये जहँ कहनावति होय।
ताहि बिकल्प बखानहीं 'भूषन' कवि सब कोय ॥२४८॥

(उदाहरण—मालती सवैया)

मोरँग जाहु कि जाहु कुमाऊँ सिरीनगरै कि कवित्त बनाए। बांधव जाहु कि जाहु अमेरि कि जोधपुरै कि चितौरहि धाए ॥ जाहु कुतुब्ब कि एद्दिल पै कि दिलीसहु पै किन जाहु बोलाए । 'भूषन' गाय फिरो महि मैं बनिहै चित चाह सिवाहि रिझाए ॥ २४९ ॥

(मालती सवैया)

देसन देसन नारि नरेसन 'भूषन' यों सिख देहिं दया सों। मंगन ह्वै करि, दंत गहो तिन, कंत तुम्हैं हैं अनंत महा सों ॥ कोट गहौ कि गहौ बन ओट कि फौज की जोट सजौ प्रभुता सों। और करौ किन कोटिक राह सलाह बिना बचिहौ न सिवा सों ॥२५०॥

[समाधि]

(लक्षण-दोहा)

और हेतु मिलि कै जहाँ होत सुगम अति काज।
ताहि समाधि बखानहीं 'भूषन' जे कविराज ॥ २५१ ॥

(उदाहरण—मालती सवैया)

बैर कियो सिव चाहत हो तब लौं अरि बाह्यो कटार कठैठो। यौंहीं मलिच्छहि छोंडै नहीं सरजा मन तापर रोस मैं

पैठो ॥ 'भूषन' क्यों अफजल्ल बचैं अठपाव कै सिंह को पाँव उमैठो । बीछू के घाय धुक्योई धरक है तौ लगि धाय धराधर बैठो ॥ २५२ ॥

[समुच्चय]

(लक्षण-दोहा)

एक बारही जहँ भयो बहु काजन को बंध ।
ताहि समुच्चय कहत हैं 'भूषन' जे मतिबंध ॥ २५३ ॥

(उदाहरण—मालती सवैया)

मांगि पठायो सिवा कछु देस वजीर अजानन बोल गहे ना ।
दौरि लियो सरजा परनालो यों 'भूषन' जो दिन दोय लगे ना ॥
धाक सों खाक बिजैपुर भो मुख आयगो खान खवास के फेना ।
भै भरकी करकी धरकी दरकी दिल एदिल साहि कि सेना ॥२५४॥

[द्वितीय समुच्चय]

(लक्षण-दोहा)

वस्तु अनेकन को जहाँ बरनत एकहि ठौर ।
दुतिय समुच्चय ताहि को कहि 'भूषन' कविमौर ॥ २५५ ॥

(उदाहरण—मालती सवैया)

सुन्दरता गुरुता प्रभुता भनि 'भूषन' होत है आदर जा में । सज्जनता औ दयालुता दीनता कोमलता झलकै परजा मैं ॥ दान कृपानहु को करिवो करिवो अभै दीनन को बर जा मैं । साहन सों रन-टेक विवेक इते गुन एक सिवा सरजा मैं ॥ २५६ ॥

[प्रत्यनीक]

(लक्षण—दोहा)

जहँ जोरावर सत्रु के पच्छी पै कर जोर ।
प्रत्यनीक तासों कहैं 'भूषन' बुद्धि अमोर ॥ २५७ ॥

(उदाहरण—अलसा सवैया)

लाज धरौ सिवजू सो लरौ सव सैयद सेख पठान पठाय कै।
'भूषन' ह्याँ गढ़ कोटन हारे उहाँ तुम क्यों मठ तोरे रिसाय कै ? ॥
हिंदुन के पति सों न विसात सतावत हिंदु गरीबन पाय कै। लीजै
कलंक न दिल्लि के वालम आलम आलमगीर कहाय कै ॥ २५८ ॥

(कवित्त मनहरण)

गैार गरबीले अरबीले राठवर गह्यो लोहगढ़ सिंहगढ़ हिम्मति हरष ते। कोट के कँगूरन मैं गोलंदाज तीरंदाज राखे हैं लगाय गोलो तीरन वरषते ॥ कै कै सावधान किरवान कसि कम्मरन सुभट अमान चहुँ ओरन करषते। 'भूषन' भनत तहाँ सरजा सिवा तैं चढ़ो राति के सहारे ते अराति-अमरष ते ॥ २५६ ॥

[अर्थापत्ति]

(लक्षण-दोहा)

"वह कीन्ह्यो तौ यह कहा" यों कहनावति होय।
अर्थापत्ति वखानहीं तहाँ सयाने लोय ॥ २६० ॥

(उदाहरण—कवित्त मनहरण)

सयन मैं साहन को सुन्दरी सिखावैं ऐसे सरजा सों वैर जनि करौ महावली है। पेसकसैं भेजत विलायती पुरतगाल सुनिकै सहमि जात करनाट थली है ॥ 'भूषन' भनत गढ़कोट माल मुलुक दै सिवा सों सलाह राखिए तौ वात भली है। जाहि देत दंड सव डरिकै अखंड सोई दिल्ली दलमली तौ तिहारी कहा चली है ? ॥ २६१ ॥

[काव्यलिंग]

(लक्षण-दोहा)

है दिढ़ाइवे जोग जो ताको करत दिढ़ाव।
काव्यलिंग तासों कहैं भूषन जे कविराव ॥ २६२ ॥

[मिथ्याध्यवसित]

(लक्षण-दोहा)

झूठ अरथ की सिद्धि को झूठो बरनत आन।
मिथ्याध्यवसित कहत हैं 'भूषन' सुकवि सुजान ॥ २७१ ॥

(उदाहरण—दोहा)

पग रन मैं चल यों लसै ज्यों अंगद पग पैन।
ध्रुव सो भुव सो मेरु सो सिव सरजा कै बैन ॥ २७२ ॥

(कवित्त मनहरण)

मेरु-सम छोटो पन, सागर सो छोटो मन, धनद को धन ऐसो छोटो जग जाहि को। सूरज सो सीरो तेज, चाँदनी सी कारी कित्ति, अमिय सो कटु लागै दरसन ताहि को ॥ कुलिस सो कोमल कृपान अरि भंजिबे को 'भूषन' भनत भारी भूप भौंसिलाहि को। भुव सम चल पद सदा महि-मंडल में, ध्रुव सो चपल ध्रुव-बल सिव साहि को ॥ २७३ ॥

[उल्लास]

(लक्षण-दोहा)

एकहि के गुन-दोष ते, औरै को गुन-दोस।
बरनत हैं उल्लास सो सकल सुकवि मतिपोस ॥ २७४ ॥

(उदाहरण, गुण से दोष-मालती सवैया)

काज मही सिवराज बली हिँदुवान बढ़ाइबे को उर ऊटै। 'भूषन' भू निरम्लेच्छ करी चहै, म्लेच्छन मारिबे को रन जूटै ॥ हिंदु बचाय बचाय यही अमरेस चँदावत लौं कोइ टूटै। चंद अलोक ते लोक सुखी यहि कोक अभागे को सोक न छूटै ॥२७५॥

(दोष से गुण-मनहरण दंडक)

देस दहपट्ट कीने, लूटि कै खजाने लीने, बचै न गढ़ोई काहू गढ़ सिरताज के। तोरादार सकल तिहारे मनसबदार डौंड़े

जिनके सुभाय जंग दै मिजाज के। 'भूषन' भनत बादशाह को रौं लोग सब वचन सिखावत सलाह को इलाज के। डावरे की बुद्धि है कै बावरे न कीजै बैरु रावरे के वैर होत काज सिवराज के॥ २७६ ॥

(गुण से गुण दोहा)

नृप-सभान में आपनी होन बड़ाई काज।
साहितनै सिवराज के करत कवित कविराज ॥ २७७ ॥

(दोष से दोष दोहा)

सिव सरजा के वैर को यह फल आलमगीर।
छूटे तेरे गढ़ सबै कूटे गए वजीर ॥ २७८ ॥

(मनहरण दंडक)

दौलति दिल्ली को पाय औ कहाय आलमगीर बब्बर अकब्बर के विरद विसारे तैं। 'भूषन' भनत लरि लरि सरजा सों जंग निपट अभंग गढ़ कोट सब हारे तैं॥ सुधर्यो न एको साज भेजि भेजि वे ही काज बड़े बड़े बे इलाज उमराव मारे तैं। मेरे कहे मेर करु, सिवाजी सों वैर करि गैर करि नैर निज नाहक उजारे तैं॥२७६॥

[अवज्ञा]

(लक्षण-दोहा)

औरै के गुन दोस ते होत न जहँ गुन दोस।
तहाँ अवज्ञा होत है भनि 'भूषन' मतिपोस ॥ २८० ॥

(उदाहरण—मालती सवैया)

औरन के अनवाढ़े कहा अरु बाढ़े कहा नहिं होत चहा है।
औरन के अनरीझे कहा अरु रीझे कहा न मिटावत हा है॥
'भूषन' श्री सिवराजहि माँगिए एक दुनी विच दानि महा है।
मंगन औरन के दरबार गए तौ कहा न गए तौ कहा है ? ॥२८१॥

[अनुज्ञा]

(लक्षण दोहा)

जहाँ सरस गुन देखि कै करै दोस की हौस।
तहाँ अनुज्ञा होत है 'भूषन' कवि यहि रौस ॥ २८२ ॥

(उदाहरण—कवित्त मनहरण)

जाहिर जहान सुनि दान के बखान आजु महादानि साहि-तनै गरिबनेवाज के। 'भूषन' जवाहिर जलूस जरबाफ जोति देखि देखि सरजा की सुकवि समाज के॥ तप करि करि कमलापति सों माँगत यों लोग सब करि करि मनोरथ ऐसे साज के। वैपारी जहाज के न राजा भारी राज के भिखारी हमैं कीजै महाराज सिवराज के॥ २८३ ॥

[लेश]

(लक्षण-दोहा)

जहँ बरनत गुन दोष कै कहै दोष गुन रूप।
'भूषन' ताको लेस कहि गावत सुकवि अनूप ॥२८४॥

(उदाहरण—दोहा)

उदैभानु राठौर वर धरि धीरज, गढ़, पैंड़।
प्रगटै फल ताको लह्यौ परिगो सुर-पुर-पैंड़ ॥ २८५ ॥
कोऊ बचत न सामुहें सरजा सों रन साजि।
भली करी पिय! समर ते जिय लै आए भाजि ॥२८६॥

[तद्गुण]

(लक्षण-दोहा)

जहाँ आपनो रंग तजि गहै और को रंग।
ताको तद्गुन कहत हैं 'भूषन' बुद्धि उतंग ॥ २८७ ॥

(उदाहरण—मनहरण दंडक)

पंपा मानसर आदि अगन तलाव लागे जेहि के परन मैं अकथ युत गथ के। 'भूषन' यों साज्यों रायगढ़ सिवराज रहे देव ऋक चाहि कै बनाए राजपथ के॥ बिन अवलंब कलिकानि आसमान मैं ह्वै होत बिसराम जहाँ इंदु औ उदथ के। महत उतंग मनि-जोतिन के संग आनि कैयो रंग चकहा गहत रवि-रथ के॥ २८८॥

[पूर्वरूप]

(लक्षण-दोहा)

प्रथम रूप मिटि जात जहँ फिरि वैसोई होय।
'भूषन' पूरब रूप सो कहत सयाने लोय॥२८९॥

(उदाहरण—मालती सवैया)

ब्रह्म के आनन ते निकसे ते अत्यंत पुनीत तिहूँ पुर मानी। राम युधिष्ठिर के बरने बलमीकिहु-व्यास के अंग सोहानी॥ 'भूषन' यों कलि के कबिराजन राजन के गुन पाय नसानी। पुन्य चरित्र सिवा सरजै सर न्हाय पवित्र भई पुनि बानी॥२९०॥

यों सिर पै छहरावत छार हैं जाते उठैं असमान बगूरे। 'भूषन' भूधरऊ धरकैं जिनके धुनि धक्कन यों बल रूरे॥ ते सरजा सिवराज दिए कबिराजन को गजराज गरूरे। सुंडन सों पहिले जिन सोखि कै फेरि महामद सों नद पूरे॥२९१॥

श्रीसरजा सलहेरि के जूझ घने उमरावन के घर घाले। कुंभ चँदावत सैद पठान कबंधन धावत भूधर हाले॥ 'भूषन' यों सिवराज कि धाक भए पियरे अरुने रँग वाले। लोहै कटे लपटे अति लोहु भए मुँह मीरन के पुनि लाले॥२९२॥

[उन्मीलित]

(लक्षण-दोहा)

सदृस वस्तु मैं मिलत पुनि जानत कौनेहु हेत।
उनमीलित तासों कहत 'भूषन' सुकबि सचेत ॥३०२॥

(उदाहरण-दोहा)

सिव सरजा तव सुजस मैं मिले धौल छवि तूल।
बोल बास ते जानिए हंस चमेली फूल ॥ ३०३ ॥

[सामान्य]

(लक्षण-दोहा)

भिन्न रूप जहँ सदृस ते भेद न जान्यो जाय।
ताहि कहत सामान्य हैं 'भूषन' कवि समुदाय ॥३०४॥

(उदाहरण—मालती सवैया)

पावस की यक राति भली सु महाबली सिंह सिवा गमके ते। म्लेच्छ हजारन ही कटि गे दस ही मरहट्टन के झमके ते॥ 'भूषन' हालि उठे गढ़ भूमि पठान-कबंधन के धमके ते। मीरन के अवसान गये मिलि धोपनि सों चपला चमके ते ॥३०५॥

[विशेषक]

(लक्षण-दोहा)

भिन्न रूप सादृस्य में लहिए कछू विसेख।
ताहि विशेषक कहत हैं 'भूषन' सुमति उलेख ॥३०६॥

(उदाहरण—कवित्त मनहरण)

अहमदनगर के थान किरधान लै कै जब नवसेरी खान ते गुमान भिर्‌यो बल ते। प्यादन सों प्यादे पखरैतन सों पखरैत बखतरवारे बखतरवारे हल ते ॥ 'भूषन' भनत एते

मान घमसान भयो जान्यो न परत कौन आयो कौन दल ते। सम वेष ताके, तहाँ सरजा सिवा के बाँके वीर जाने हाँके देत, मीर जाने चलते ॥३०७॥

[पिहित]

(लक्षण-दोहा)

परके मन की जानि गति ताको देत जनाय।
कछू क्रिया करि, कहत हैं पिहित ताहि कविराय ॥३०८॥

(उदाहरण—दोहा)

गैर मिसिल ठाढ़ो सिवा अंतरजामी नाम।
प्रकट करी रिस साह को सरजा करि न सलाम ॥३०९॥
आनि मिल्यो अरि यों गह्यो चखन चकत्ता चाव।
साहि-तनै सरजा सिवा दियो मुच्छ पर ताव ॥३१०॥

[प्रश्नोत्तर]

(लक्षण-दोहा)

कोऊ बूझै बात कछु कोऊ उत्तर देत।
प्रश्नोत्तर ताको कहत 'भूषन' सुकवि सचेत ॥ ३११ ॥

(उदाहरण—मालती सवैया)

लोगन सों भनि 'भूषन' यों कहै खान खवास कहा सिख दैहौ। आवत देसन लेत सिवा सरजै मिलिहौ भिरिहौ कि भगैहौ ॥ एदिल की सभा बोलि उठी यों सलाह करौऽब कहाँ भजि जैहौ। लीन्हो कहा लरिके अफजल्ल कहा लरिकै तुमहू अब लैहौ ? ॥ ३१२ ॥

(दोहा)

को दाता को रन चढ़ो, को जग-पालनहार ?।
कवि 'भूषन' उत्तर दियो सिव नृप हरि-अवतार ॥ ३१३ ॥

[व्याजोक्ति]

(लक्षण-दोहा)

आन हेतु सों आपनो जहाँ छिपावै रूप।
व्याज-उकुति तासों कहत 'भूषन' सुकवि अनूप ॥ ३१४ ॥

(उदाहरण—मालती सवैया)

साहिन के उमराव जितेक सिवा सरजा सब लूटि लए हैं। 'भूषन' ते बिन दौलति ह्वै कै फकीर ह्वै देस बिदेस गए हैं ॥ लोग कहैं इमि दच्छिन जेय सिसौदिया रावरे हाल ठए हैं। देत रिसाय कै उत्तर यों हमहीं दुनियां ते उदास भए हैं ॥ ३१५ ॥

(दोहा)

सिवा-बैर औरँग-बदन लगी रहै नित आहि।
कवि 'भूषन' बूझे सदा कहै देत दुख साहि ॥ ३१६ ॥

[लोकोक्ति एवं छेकोक्ति]

(लक्षण-दोहा)

कहनावति जो लोक की लोक-उकुति सो जानि।
जहां कहत उपमान है छेक-उकुति तेहि मानि ॥ ३१७ ॥

(उदाहरण—लोकोक्ति, दोहा)

सिव सरजा की सुधि करौ भली न कीन्ही पीव।
सूबा है दच्छिन चले धरे जात कित जीव ? ॥ ३१८ ॥

(छेकोक्ति, दोहा)

जे सोहात सिवराज को ते कवित्त रसमूल।
जे परमेश्वर पै चढ़ैं तेई आछे फूल ॥ ३१९ ॥

(किरीटी सवैया)

औरँग जो चढ़ि दक्खिन आवै तो ह्यांते सिधावै सोऊ बिनु कप्पर। दीनो मुहीम को भार बहादुर छागो सहै क्यों गयंद को

झप्पर ? ॥ सासता खाँ सँग वे हठि हारे जे साहब सातएँ ठीक भुवप्पर । ये अब सूबहु आवैं सिवा पर "कालिह के जोगी कलींदे को खप्पर" ॥ ३२० ॥

[वक्रोक्ति]

(लक्षण-दोहा)

जहाँ श्लेष सों काकु सों अरथ लगावै और ।
वक्र-उकुति ताको कहत 'भूषन' कवि सिरमौर ॥ ३२१ ॥

(उदा० श्लेष से वक्रोक्ति—कवित्त मनहरण)

साहि-तनै तेरे वैर वैरिन को कौतुक सों बूझत फिरत कहौ काहे रहे तचि हौ ? । सरजा के डर हम आए इतै भाजि तव सिंह सों डराय याहू ठौर ते उकचि हौ ॥ 'भूषन' भनत वै कहैं कि हम सिव कहैं तुम चतुराई सों कहत बात रचि हौ । सिव जापै रूठैं तौ निपट कठिनाई तुम वैर त्रिपुरारि के त्रिलोक मैं न बचिहौ ॥ ३२२ ॥

(काकु से वक्रोक्ति—कवित्त मनहरण)

सासता खाँ दक्खिन को प्रथम पठायो तेहि बेटा के समेत हाथ जाय कै गँवायो है । 'भूषन' भनत जौलौं भेजौ उत औरै तिन वे ही काज बरजोर कटक कटायो है ॥ जोई सूबेदार जात सिवाजी सो हारि तासों अवरंग साहि इमि कहै मन भायो है । मुलुक लुटायो तौ लुटायो, कहा भयो ? तन आपनो बचायो महाकाज करि आयो है ॥ ३२३ ॥

(दोहा)

करि मुहीम आये कहत हजरत मनसब दैन ।
सिव सरजा सो जंग जुरि पैहैं बचिकै है न ॥ ३२४ ॥

[स्वभावोक्ति]

(लक्षण-दोहा)

साँचो तैसो बरनिए जैसो जाति स्वभाव।
ताहि सुभावोकति कहत 'भूषन' जे कबिराव॥ ३२५॥

(उदाहरण—मनहरण दंडक)

दान समै द्विज देखि मेरहू कुबेरहू की संपति लुटायबे को हियो ललकत है। साहि के सपूत सिव साहि के वदन पर सिव की कथान में सनेह झलकत है॥ 'भूषन' जहान हिंदुवान के उबारिबे को तुरकान मारिबे को बीर बलकत है। साहिन सों लरिबे की चरचा चलत आनि सरजा के दृगन उछाह छलकत है॥ ३२६॥

काहू के कहे सुने ते जाही ओर चाहैं ताही ओर इकटक घरी चारिक चहत हैं। कहे ते कहत बात, कहे ते पियत खात, 'भूषन' भनत ऊँची साँसन लहत हैं॥ पौढ़े हैं तौ पौढ़े, बैठे बैठे, खरे खरे, हम को हैं? कहा करत? यों ज्ञान न गहत हैं। साहि के सपूत सिव साहि तव बैर इमि साहि सब रातौ दिन सोचत रहत हैं॥ ३२७॥

उमड़ि कुड़ाल में खवास खान आए भनि 'भूषन' त्यों धाए सिवराज पूरे मन के। सुनि मरदाने बाजे हय हिहनाने घोर मूछें तरराने मुख बीर धीर जन के॥ एकै कहैं मार मार, सम्हरि समर एकै म्लेच्छ गिरे मार बीच बेसम्हार तन के। कुंडन के ऊपर कड़ाके उठें ठौर ठौर जीरन के ऊपर खड़ाके खड़गन के॥ ३२८॥

आगे आगे तरुन तरायले चलत चले तिनके अमोद मंद मंद मोद सकसै। अड्‌दार बड़े गड्‌दारन के हाँके सुनि अड़े गैर गैर माहि रोस रस अकसै॥ तुंडनाय सुनि गरजत गुंजरत

भौंर 'भूषन' भनत तेऊ महा मद छकसै। कीरति के काज
महाराज सिवराज सब ऐसे गजराज कविराजन को बकसै ॥३२६॥

[भाविक]

(लक्षण-दोहा)

भयो होनहारो अरथ बरनत जहँ परतच्छ।
ताको भाविक कहत हैं 'भूषन' कवि मति स्वच्छ ॥३३०॥

(उदाहरण—कवित्त मनहरण)

अजौं भूतनाथ मुंडमाल लेत हरषत भूतन अहार लेत
अजहूँ उछाह है। 'भूषन' भनत अजौं काटे करवालन के कारे
कुंजरन परे कठिन कराह है ॥ सिंह सिवराज सलहेरि के
समीप ऐसो कीन्हों कतलाम दिली-दल को सिपाह है। नदी
रन मंडल रुहेलन-रुधिर अजौं अजौं रविमंडल रुहेलन की
राह है ॥ ३३१ ॥

गजघटा उमड़ी महा घनघटा सी घोर भूतल सकल मदजल
सौं पटत है। बेला छाँड़ि उछलत सातौ सिंधु बारि मन मुदित
महेस मग नाचत कढ़त है ॥ 'भूषन' बढ़त भौंसिला भुवाल
को यों तेज जेतो सब बारहौ तरनि मैं बढ़त हैं। सिवाजी
खुमान दल दौरत जहान पर आनि तुरकान पर प्रलै प्रगटत
है ॥ ३३२ ॥

[भाविक छबि]

(लक्षण-दोहा)

जहँ दूर स्थित बस्तु को देखत बरनत कोय।
भूषन 'भूषन' राज भनि भाविक छबि सो होय ॥ ३३३ ॥

(उदाहरण—मालती सवैया)

सूबन साजि पठावत है नित फौज लखे मरहट्टन केरी।
श्रौरँग आपनि दुग्ग-जमाति विलोकत तेरियै फौज दरेरी॥
साहि तनै सिव साहि भई भनि 'भूषन' यों तुव धाक घनेरी।
रातहु-दौस दिलीस तकै तुव सैन कि सूरति सूरति घेरी॥ ३३४॥

[उदात्त]

(लक्षण-दोहा)

अति संपति बरनन जहाँ तासों कहत उदात।
कै आनै सु लखाइये बड़ी आन को बात॥ ३३५॥

(उदाहरण—कवित्त मनहरण)

द्वारन मतंग दीसैं आँगन तुरंग हीसैं बंदीजन बारन असीसैं जसरत हैं। 'भूषन' बखानै जरबाफ के सम्याने ताने झालरन मोतिन के झुंड झलरत हैं॥ महाराज सिवा के नेवाजे कविराज ऐसे साजि कै समाज तेहि ठौर विहरत हैं। लाल करैं प्रात तहाँ नीलमनि करैं रात याही भाँति सरजा की चरचा करत हैं॥ ३३६॥

जाहु जनि आगे खता खाहु मति यारो गढ़नाह के डरन कहै खान यों बखान कै। 'भूषन' खुमान यह सो है जेहि पूना माहि लाखन में सासता खाँ डार्‌यो बिन मान कै॥ हिंदुवान द्रुपदी की इजति बचैबे काज झपटि विराटपुर बाहर प्रमान कै। यहै है सिवा जी जेहि भीम ह्वै अकेले मार्‌यो अफजल कीचक को कीच घमसान कै॥ ३३७॥

(दोहा)

या पूना में मनि टिको खान बहादुर आय।
ह्याँई साइत खान को दीन्हीं सिवा सजाय॥३३८॥

[अत्युक्ति]

(लक्षण-दोहा)

जहाँ सूरतादिकन की अति अधिकाई होय।
ताहि कहत अति उक्ति हैं 'भूषन' जे कवि लोय ॥ ३३९ ॥

(उदाहरण—मनहरण दंडक)

साहि तनै सिवराज ऐसे देत गजराज जिन्हैं पाय होत कविराज वे फिकिरि हैं। भूलत झलमलात झूलै जरबाफन की जकरे जँजीर जोर करत किरिरि हैं॥ 'भूषन' भँवर भननात घननात घंट पग झननात मनो घन रहे घिरि हैं। जिनकी गरज सुने दिग्गज वे आब होत मद ही के आब गड़काब होत गिरि हैं॥ ३४० ॥

आजु यहि समै महाराज सिवराज तुही जगदेव जनक जजाति अम्बरीक सो। 'भूषन' भनत तेरे दान-जल जलधि मैं गुनिन को दारिद गयो बहि खरीक सो॥ चंद-कर किंजलक चाँदनी पराग उडुवृन्द मकरंद वुंद पुंज के सरीक सो। कंद सम कयलास नाक गंग नाल तेरे जस पुंडरीक को अकास चंचरीक सो॥ ३४१ ॥

(दोहा)

महाराज सिवराज के जेते सहज सुभाय।
औरन को अति उक्ति से 'भूषन' कहत बनाय ॥ ३४२ ॥

[निरुक्ति]

(लक्षण-दोहा)

नामन को निज बुद्धि सों कहिए अरथ बनाय।
ताको कहत 'निरुक्ति' हैं भूषन जे कविराय ॥ ३४३ ॥

(उदाहरण-दोहा)

कविगन को दारिद-द्विरद याही दल्यो अमान।
याते श्रीसिवराज को सरजा कहत जहान ॥ ३४४ ॥
हर्‌यो रूप इन मदन को याते भो सिव नाम।
लियो बिरद सरजा सबल अरि गज दलि संग्राम ॥ ३४५ ॥

(कवित्त मनहरण)

आजु सिवराज महराज एक तुही सरनागत जनन को दिवैया अभैदान को। फैली महिमंडल बड़ाई चहुँओर ताते कहिए कहाँ लौं ऐसे बड़े परिमान को ?॥ निपट गँभीर कोऊ लाँघि न सकत बीर जोधन को रन देत जैसे भाऊ-खान को। दिल दरियाव क्यों न कहैं कविराव तोहिं तो मैं बहिरात आनि पानिप जहान को ॥ ३४६ ॥

[हेतु]

(लक्षण-दोहा)

"या निमित्त यहई भयो" यों जहँ बरनन होय।
'भूषन' हेतु बखानहीं कवि कोबिद सब कोय ॥३४७॥

(उदाहरण—मनहरण दंडक)

दानव दइन हरनाकुस बिदारिबे को भयो नरसिंह रूप तेज बिकरार है। 'भूषन' भनत त्योंही रावन के मारिबे को रामचन्द्र भयो रघुकुल-सरदार है॥ कंस के कुटिल बल बंसन बिधंसिबे को भयो जदुराय बासुदेव को कुमार है। पृथ्वी-पुरहूत साहि के सपूत सिवराज म्लेच्छन के मारिबे को तेरो अवतार है ॥ ३४८ ॥

[अनुमान]

(लक्षण-दोहा)

जहाँ काज ते हेतु कै जहाँ हेतु ते काज।
जानि परत, अनुमान तहँ कहि 'भूषन' कविराज ॥३४६॥

(उदाहरण—मनहरण दंडक)

चित्त अनचैन आँसू उमगत नैन देखि बीबी कहैं बैन मियाँ कहियत काहिं नै? । 'भूषन' भनत बूझे आए दरबार तें कँपत बार बार क्यों सम्हार तन नाहिंनै? ॥ सीनो धकधकत पसीनो आयो देह सब हीनो भयो रूप न चितौत बाएँ दाहिनै। सिवा जी की संक मानि गए हौ सुखाय तुम्हैं जानियत दक्खिन को सूबा करो साहि नै ॥ ३५० ॥

झंझा सी दिन की भई संझा सी सकल दिसि गगन लगन रही गरद छवाय है। चील्ह-गीध-बायस-समूह घोर रोर करैं ठौर ठौर चारों ओर तम मड़राय है। 'भूषन' अँदेस देस देस के नरेस गन आपुस मैं कहत यों गरब गँवाय है। बड़ो बड़वा को जितवार चहुँधा को दल सरजा सिवा को जानियत इत आय है ॥ ३५१ ॥

[अथ शब्दालंकार]

(दोहा)

जे अरथालंकार ते 'भूषन' कहे उदार।
अब शब्दालंकार ये कहत सुमति अनुसार ॥ ३५२ ॥

[छेक एवं लाट अनुप्रास]

(लक्षण-दोहा)

स्वर-समेत अच्छर-पदनि आवत सदृस प्रकास।
भिन्न अभिन्नन पदन सों छेक लाट अनुप्रास ॥ ३५३ ॥

(उदाहरण अमृतध्वनि छंद)

दिल्लिय दलन दबाय करि सिव सरजा निरसंक।
लूटि लियो सूरति सहर बंकक्करि अति डंक॥
बंकक्करि अति डंकक्करि अस संकक्कुलि खल।
सोचच्चकित भरोचच्चलिय विमोचच्चखजल।
तट्टट्टइमन कट्टट्टिक सोइ रट्टट्टिल्लिय।
सद्दद्दिसि दिसि भद्दद्दबिभइ रद्दद्दिल्लिय॥ ३५४॥
गत बल खानदलेल हुव खान बहादुर मुद्ध।
सिव सरजा सलहेरि ढिग कुद्धद्धरि किय युद्ध॥
कुद्धद्धरि किय युद्धद्धुधरि अरि अद्धद्धरि करि।
मुंडड्डरि तहँ डुंडड्डकरत रुंडड्डग भरि॥
खेदिद्दर वर छेदिद्दय करि मेदद्दधि दल।
जंगग्गति सुनि रंगग्गलि अवरंगग्गत बल॥ ३५५॥
लिय धरि मोहकम सिंह कहँ अरु किसोर नृपकुम्भ।
श्रीसरजा संग्राम किय भुम्मिम्मधि करि धुम्म।
भुम्मिम्मधि किय धुम्मम्मड़ि रिपु जुम्मम्मलिकरि।
जंगग्गरजि उतंगग्गरब मतंगग्गन हरि॥
लक्कक्खन रन दक्खक्खलनि अलक्खक्खिति भरि।
मोलक्लहि जस नोलल्लरि बहलोलल्लिय धरि॥ ३५६॥
लिय जिनि दिल्ली मुलुक सब सिव सरजा जुरि जंग।
भनि 'भूषन' भूपति भजे भंगग्गरब तिलंग॥
भंगग्गरब तिलंगग्गयउ कलिंगग्गति प्रति।
दुंदद्धिय दुहु दंदद्दलनि बुलंदद्धसति॥
लच्छच्छिन करि म्लेच्छच्छय किय रच्छच्छवि छिति।
छल्लल्लगि नरपल्लल्लरि परनल्लल्लिय जिति॥ ३५७॥

(छप्पय)

मुंड कटत कहुँ रुंड नटत कहुँ सुंड पटत घन। गिद्ध लसत

कहुँ सिद्ध हँसत सुख वृद्धि रसत मन ॥ भूत फिरत करि बूत भिरत सुर-दूत घिरत तहँ। चंडि नचत गन मंडि रचत धुनि डंडि मचत जहँ। इमि ठानि घोर घमसान अति 'भूषन' तेज कियो अटल। सिवराज साहि-सुव खग्ग-बल दलि अडोल बहलोल-दल ॥ ३५८ ॥

क्रुद्ध फिरत, अति जुद्ध जुरत, नहिँ रुद्ध मुरत भट। खग्ग बजत अरि वग्ग तजत सिर पग्ग सजत चट ॥ ढुकि फिरत मद झुकि भिरत करि कुक्कि गिरत गनि। रंक रकत हरसंग छकत चतुरंग थकत भनि ॥ इमि करि संगर अति ही विषम 'भूषन' सुजस कियो अचल। सिवराज साहि-सुव खग्ग बल दलि अडोल बहलोल-दल ॥ ३५९ ॥

(कवित्त मनहरण)

वानर वरार बाघ वैहर बिलार बिग बगरे बराह जानवरन के जोम हैं। 'भूषन' भनत भारे भालुक भयानक हैं भीतर भवन भरे लीलगऊ लोम हैं ॥ पैंड़ायल गज गन गैंड़ा गररात गनि गेहन में गोहन गरूर गहे गोम हैं। सिवाजी को धाक मिले खल-कुल खाक, बसे खलन के खेरन खबीसन के खोम हैं ॥ ३६० ॥

तुरमती तहखाने तीतर गुसुलखाने सूकर सिलहखाने कूकर करीस हैं। हिरन हरमखाने स्याही हैं सुतुरखाने पाढ़े पीलखाने औ करंजखाने कीस हैं ॥ 'भूषन' सिवाजी गाजी खग्ग सों खपाए खल, खाने खाने खलन के घेरे भये खीस हैं। खड़गी खज़ाने खरगोस खिलवतखाने खीसैं खोले खसखाने खाँसत खबीस हैं ॥ ३६१ ॥

(दोहा)

औरन के जाँचे कहा नहिं जांच्यो सिवराज ?।
औरन के जाँचे कहा जो जांच्यो सिवराज ? ॥ ३६२ ॥

[यमक अनुप्रास]

(लक्षण-दोहा)

भिन्न अरथ फिरि फिरि जहाँ ओई अच्छर-वृन्द ।
आवत हैं, सो जमक करि बरनत बुद्धि-बुलंद ॥ ३६३ ॥

(उदाहरण—कवित्त मनहरण)

पूनावारी सुनि कै अमीरन की गति लई भागिबे को मीरन समीरन की गति है। मार्‌यो जुरि जंग जसवंत जसवंत जाके संग केते रजपूत रजपूत पति है ॥ 'भूषन' भनै यों कुलभूषन भुसिल सिवराज ! तेहि दीन्ही सिव राज बरकति है। नौहू खंड दीप भूप भूतल के दीप आजु समै के दिलीप दिलीपति को सिदति है ॥ ३६४ ॥

[पुनरुक्तिवदाभास]

(लक्षण-दोहा)

भासति है पुनरुक्ति सी नहिं निदान पुनरुक्ति ।
वदाभास-पुनरुक्ति सो 'भूषन' बरनत युक्ति ॥ ३६५ ॥

(उदाहरण—कवित्त मनहरण)

अरिन के दल सैन संग रमैं समुहाने टूक टूक सकल के डारे घमसान मैं। वार वार करो महानद परवाह पूरो बहत है हाथिन के मदजल दान मैं ॥ 'भूषन' भनत महाबाहु भौंसिला भुवाल सूर रवि कैसो तेज तीखन कृपान मैं। मालमकरंद जू के नंद कलानिधि तेरो सरजा सिवाजी जस जगत जहान मैं ॥ ३६६ ॥

[चित्र]

(लक्षण-दोहा)

लिखे सुने अचरज भरे रचना होय विचित्र ।
कामधेनु आदिक घने 'भूषन' बरनत चित्र ॥ ३६७ ॥

(उदाहरण, कामधेनु चित्र-माधवी सवैया)

धुव जो	गुरता	तिनको	गुरु भूषन	दानि बड़ो	गिरजा	पिव है।
हुव जो	हरता	रिन को	तरु भूषन	दानि बड़ो	सिरजा	छिव है॥
भुव जो	भरता	दिन को	नरु भूषन	दानि बड़ो	सरजा	सिव है।
तुम जो	करता	इनको	अरु भूषन	दानि बड़ो	बर जा	निवहै२६८

[संकर]

(लक्षण-दोहा)

'भूषन' एक कवित्त में भूषन होत अनेक।
संकर ताको कहत हैं जिन्हैं कवित्त की टेक॥ २६९ ॥

(उदाहरण—मनहरण दंडक)

ऐसे बाजिराज देत महाराज सिवराज 'भूषन' जे बाज की समाजैं निदरत हैं। पौन पाय हीन, हग घूँघट में लीन, मीन जल में विलीन, क्यों बराबरी करत हैं॥ सबते चलाक चित तेऊ कुलि आलम के रहैं उर अंतर में धीर न धरत हैं। जिन चढ़ि आगे को चलाइयतु तीर, तीर एक भरि तऊ तीर पीछे ही परत हैं॥ २७० ॥

[अलंकार-नामावली]

(गीतिका छंद)

उपमा अनन्वै कहि बहुरि उपमा प्रतीप प्रतीप। उपमेय-उपमा है बहुरि मालोपमा कवि दीप॥ ललितोपमा रूपक बहुरि परिनाम पुनि उल्लेख। सुमिरन भ्रमौ संदेह सुद्धापन्हुत्यौ सुभ बेख॥ २७१ ॥

हेतुअपन्हुत्यौ बहुरि परजस्तपन्हुति जान । सुभ्रांतपूर्ण अपन्हुत्यौ छेकाअपन्हुति मान ॥ वर कैतवापन्हुति गनौ उतप्रेक्ष बहुरि बखानि । पुनि रूपकातिसयोक्ति भेदक-अतिसयोक्ति सुजानि ॥ ३७२ ॥

अरु अक्रमातिसयोक्ति चंचल-अतिसयोक्तिहि लेखि । अत्यंत-अतिसै उक्ति पुनि सामान्य चारु बिसेखि ॥ तुलियोगिता दीपक अवृति प्रतिवस्तुपम दृष्टांत । सुनिदर्सना व्यतिरेक और सहोक्ति बरनत शांत ॥ ३७३ ॥

सुबिनोक्ति भूषन समासोक्तिहु परिकरौ अरु वंस । परिकर सुअंकुर श्लेष त्यों अप्रस्तुतोपरसंस ॥ परयायउक्ति गनाइए व्याजस्तुतिहु आक्षेप । बहुरो विरोध विरोधभास विभावना सुख खेप ॥ ३७४ ॥

सुविशेषउक्ति असंभवौ बहुरे असंगति लेखि । पुनि विषम सम सुबिचित्र प्रहपन अरु विषादन पेखि ॥ कहि अधिक अन्योन्यहु बिसेष व्यघात भूषन चारु । अरु गुंफ एकावली मालादीपकहु पुनि सारु ॥ ३७५ ॥

पुनि यथासंख्य बखानिए परजाय अरु परिवृत्ति । परिसंख्य कहत बिकल्प हैं जिनके सुमति संपत्ति ॥ बहुर्‌यो समाधि संमुच्चयो पुनि प्रत्यनीक बखानि । पुनि कहत अर्थापत्ति कविजन काव्यलिंगहि जानि ॥ ३७६ ॥

अरु अर्थअंतरन्यास भूषन प्रौढ़उक्ति गनाय । संभावना मिथ्याध्यवसितऽरु यो उलासहि गाय ॥ अवज्ञा अनुज्ञा लेस तद्गुन पूर्वरूप उलेखि । अनुगुन अतद्गुन मिलित उन्मीलितहि पुनि अवरेखि ॥ ३७७ ॥

सामान्य और विशेष पिहितौ प्रश्न उत्तर जानि । पुनि व्याज-उक्तिऽरु लोकउक्ति सु छेकउक्ति बखानि ॥ बक्रोक्ति जान सुभाव

उक्तिहु भाविकौ निरधारि । भाविकछविहु सुउदात्त कहि अत्युक्ति बहुरि बिचारि ॥ ३७८ ॥

बरने निरुक्तिहु हेतु पुनि अनुमान कहि अनुप्रास । 'भूषन' भनत पुनि जमक गनि पुनरुक्तिवदाभास ॥ युत चित्र संकर एक सत भूषन कहे अरु पाँच । लखि चारु ग्रंथन निज मतो युत सुकवि मानहु साँच ॥ ३७९ ॥

(दोहा)

सुभ सत्रह सै तीस पर सुचि बदि तेरस भान ।
'भूषन' सिव-भूषन कियो पढ़ियौ सकल सुजान ॥ ३८० ॥

(आशीर्वाद—मनहरण दंडक)

एक प्रभुता कैा धाम, सजे तीनौ वेद काम, रहैं पंच आनन षडानन सरबदा । सातौ बार आठौ याम जाचक नेवाजै नव अवतार थिर राजै कृपन हरि गदा । सिवराज 'भूषन' अटल रहै तौलौं जौलौं त्रिदस भुवन सब गंग औ नरमदा । साहितनै साहसिक भौंसिला सुरजवंस दासरथि-राज तौलौं सरजा थिर सदा ॥ ३८१ ॥

(दोहा)

पुहुमि पानि रवि ससि पवन जब लौं रहै प्रकास ।
सिव सरजा तब लौं जियौ 'भूषन' सुजस प्रकास ॥ ३८२ ॥

इति श्रीकविभूषणविरचिते शिवराजभूषणे
अलंकार-वर्णनं समाप्तम् ।

॥ शुभमस्तु ॥

श्री शिवा बावनी

(छप्पय)

कौन करै बस वस्तु कौन यहि लोक बड़ो अति ? को साहस को सिंधु कौन रज-लाज धरे मति ? को चकवा को सुखद बसै को सकल सुमन महि ? अष्ट सिद्धि नव निद्धि देत माँगे को सो कहि ? जग बूझत उत्तर देत इमि कवि 'भूषन' कवि-कुल-सचिव। दच्छिन-नरेस सरजा सुभट साहिनंद मकरंद सिव ॥ १ ॥

(कवित्त मनहरण)

साजि चतुरंग वीर रंग मैं तुरंग चढ़ि सरजा सिवाजी जंग जीतन चलत है। 'भूषन' भनत नाद बिहद नगारन के, नदी नद मद गैबरन के रलत है ॥ पेल फैल खैल-भैल खलक मैं गैल गैल गजन की ठेल पेल सैल उसलत है। तारा सो तरनि धूरि धारा मैं लगत, जिमि थारा पर पारा पारावार यों हलत है ॥ २ ॥

बाने फहराने घहराने घंटा गजन के नाहीं ठहराने राव राने देस देस के। नग भहराने ग्राम नगर पराने सुनि बाजत निसाने सिवराज जू नरेस के ॥ हाथिन के हौदा उकसाने, कुंभ कुंजर के भौन कै भजाने अलि छूटे लट केस के। दल के दरारे हिते कमठ करारे फूटे केरा केसे पात बिहराने फन सेस के ॥ ३ ॥

प्रेतिनी पिसाचऽरु निसाचर निसाचरिहु मिलि मिलि आपुस मैं गावत बधाई है। भैरो भूत प्रेत भूरि भूधर भयंकर से जुत्थ जुत्थ जोगिनी जमाति जुरि आई है। किलकि किलकि कै कुतूहल

---

(१) पाठां०—बाजत निसाने दानसाहजू नरेस के। ककुभ के कुंजर कसमसाने 'गंग' भनै भौन के भजाने अलि छूटे लट केस के।

करति काली, डिम डिम डमरू दिगंबर बजाई है। सिवा पूँछैं सिव सों समाज आजु कहाँ चली, काहू पै सिवा नरेस भृकुटी चढ़ाई है ॥ ४ ॥

बद्दल न होहिं दल दच्छिन घमंड माहिं घटा हू न होहिं दल सिवाजी हँकारी के। दामिनी दमक नाहिं खुले खग वीरन के, वीर-सिर छाप लखु तीजा असवारी के ॥ देखि देखि मुगलों की हरमैं भवन त्यागैं उझकि उझकि उठै बहत बयारी के। दिल्ली मति-भूली कहै बात घनघोर घोर बाजत नगारे जे सितारे-गढ़-धारी के ॥ ५ ॥

बाजि गजराज सिवराज सैन साजत ही दिल्ली दिलगीर दसा दीरघ दुखन की। तनियाँ न तिलक सुथनियाँ पगनियाँ न घामैं घुमरात छोड़ि सेजियाँ सुखन की ॥ 'भूषन' भनत पतिबाँह बहियाँ न तेऊ छहियाँ छबीली ताकि रहियाँ रुखन की। बालियाँ बिथुरि जिमि आलियाँ नलिन पर लालियाँ मलिन मुगलानियाँ मुखन की ॥ ६ ॥

कत्ता की कराकनि चकत्ता को कटक काढ़ि कीन्ही सिव-राज वीर अकह कहानियाँ। 'भूषन' भनत तिहुँ लोक मैं तिहारी धाक दिल्ली औ बिलाइत सकल बिललानियाँ ॥ आगरे अगा-रन ह्वै फाँदती कगारन छ्वै बाँधती न बारन मुखन कुम्हिलानियाँ। कीबी कहैं कहा औ गरीबी गहे भागी जाहिं बीबी गहे सूथनी सु नीबी गहे रानियाँ ॥ ७ ॥

ऊँचे घोर मंदर के अंदर रहन वारी ऊँचे घोर मंदर के अंदर रहाती हैं। कंद मूल भोग करैं कंद मूल भोग करैं, तीन बेर खातीं सो तौ तीन बेर खाती हैं ॥ भूषन सिथिल अंग भूषन सिथिल अंग बिजन डुलातीं तेऽब बिजन डुलाती हैं।

'भूषन' भनत सिवराज वीर तेरे त्रास नगन जड़ातीं ते वै नगन जड़ाती हैं ॥ ८ ॥

उतरि पलंग ते न दियो है धरा पै पग तेऊ सगबग निसि दिन चली जाती हैं। अति अकुलातीं मुरझातीं ना छिपातीं गात बात ना सोहाती बोल अति अनखाती हैं॥ 'भूषन' भनत सिंह साहि के सपूत सिवा तेरी धाक सुने अरि-नारी बिललाती हैं॥ कोऊ करैं घाती कोऊ रोतीं पीटि छाती घरैं तीनि बेर खातीं ते वै तीनि बेर खाती हैं ॥ ९ ॥

अंदर ते निकसीं न मंदिर को देख्यो द्वार बिन रथ पथ ते उघारे पाँव जाती हैं। हवा हू न लागती ते हवा ते बिहाल भईं लाखन की भीर में सम्हारती न छाती हैं॥ 'भूषन' भनत सिवराज तेरी धाक सुनि हयादारी चीर फारि मन झुँझलाती हैं। ऐसी परी नरम हरम बादसाहन की नासपाती खाती ते बनासपाती खाती हैं॥ १० ॥

अतर गुलाब रस चोवा घनसार सब सहज सुवास की सुरति बिसराती हैं। पल भरि पलँग ते भूमि न धरति पाँव भूली खानपान फिरैं बन बिललाती हैं॥ 'भूषन' भनत सिवराज तेरी धाक सुनि दारा हार-बार न सम्हारैं अकुलाती हैं। ऐसी परीं नरम हरम बादसाहन की नासपाती खाती ते बनासपाती खाती हैं ॥ ११ ॥

सोंधे को अधार किसमिस जिनको अहार चारि को सो अंक लंक चंद सरमाती हैं। ऐसी अरि-नारी सिवराज बीर तेरे

---

(८) पाठा०—घोर के स्थान पर धौल। 'मूल' तथा 'खाती ते वै' के स्थान पर 'पान' और 'खानवारी' है। तीसरी पंक्ति यों है—मैननारी सी प्रमान मैन नारी सी प्रमान। चौथी पंक्ति इस प्रकार है—कहैं कवि 'इन्दु' महाराज आज बैरि नारि।

(९) पाठा०—जोन्ह में न जातीं वे ही धूपें चलि जातीं पुनि कोऊ करै घाती कोऊ रोतीं पीटि छाती हैं।

त्रास पायन मैं छाले परे कंद मूल खाती हैं॥ ग्रीषम तपनि एती तपती न सुनी कान कंज कैसी कली विनु पानी मुरझाती हैं। तोरि तोरि आछे से पिछौरा सों निचोरि, मुख कहैं "अब कहाँ पानी मुकतों मैं पाती हैं?" ॥ १२ ॥

साहि सिरताज औ सिपाहिन मैं पातसाह अचल सुसिंधु के से जिनके सुभाव हैं। 'भूषन' भनत परी शस्त्र रन सेवा धाक काँपत रहत न गहत चित चाव हैं॥ अथह विमल जल कालिंदी के तट केते परे जुद्ध विपति के मारे उमराव हैं॥ नाव भरि बेगम उतारैं बाँदी डोंगा भरि साहि मक्का मिस उतरत दरियाव हैं॥ १३ ॥

कैयक हजार जहाँ गुर्ज-बरदार ठाढ़े करि कै हुस्यार नीति पकरि समाज की। राजा जसवंत को बुलाय कै निकट राख्यो तेऊ लखैं नीरे जिन्हैं लाज स्वामि-काज की॥ 'भूषन' तबहुँ ठठकत ही गुसुलखाने सिंह लौं झपट गुनि साहि महराज की। हटकि हथ्यार फड़ बाँधि उमरावन की कीन्ही तब नौरँग ने भेंट सिवराज की॥ १४ ॥

सबन के ऊपर ही ठाढ़ो रहिबे के जोग ताहि खरो कियो जाय जारन के नियरे। जानि गैर मिसिल गुसीले गुसा धारि उर कीन्ही ना सलाम न बचन बोले सियरे॥ 'भूषन' भनत महावीर बलकन लाग्यो सारी पातसाही के उड़ाय गये जियरे। तमक ते लाल मुख सिवा को निरखि भयो स्याह मुख नौरँग सिपाह मुख पियरे॥ १५ ॥

राना भो केतकी और बेला सब राजा भए ठौर ठौर रस लेत नित यह काज है। सिगरें अमीर भए कुंद मकरंद भरे

---

(१३) शिवराज-भूषण का ६६ वाँ पद यहाँ कुछ पाठांतर के साथ दिया हुआ है।

भ्रमत भ्रमर जैसे फूलन को साज है॥ 'भूषन' भनत सिवराज बीर तैंही देस देसन में राखी सब दच्छिन की लाज है। त्यागे सदा पटपद-पद अनुमानि यह अलि नवरंगजेब चम्पा सिवराज है॥ १६॥

कूरम कमल कमधुज है कदमफूल गौर है गुलाब राना केतकी बिराज हैं। पाँडरि पँवार जुही सोहत है चंद्रावत सरस बुँदेला सो चमेली साजबाज है॥ 'भूषन' भनत मुचकुंद बड़गूजर हैं बघेले बसंत सब कुसुम-समाज है। लेइ रस एतेन को बैठि न सकत अहै अलि नवरंगजेब चंपा सिवराज है॥ १७॥

देवल गिरावते फिरावते निसान अली ऐसे डूबे राव-राने सबी गए लबकी। गौरा गनपति आप औरँग को देख ताप आप के मकान सब मारि गये दबकी॥ पीरा पयगंबरा दिगंबरा दिखाई देत सिद्ध की सिधाई गई रही बात रब की। कासिहु ते कला जाती मथुरा मसीद होती सिवाजी न होतो तौ सुनति होत सब की॥ १८॥

साँच को न मानै देवी देवता न जानै अरु ऐसी उर आनै मैं कहत बात जब की। और पातसाहन के हुती चाह हिंदुन की अकबर साहिजहाँ कहैं साखि तब की॥ बब्बर के तब्बर हुमायूँ हद्द बाँधि गये दो मैं एक करी ना कुरान बेद ढब की। कासिहु की कला जाती मथुरा मसीद होती सिवाजी न होतो तौ सुनति होत सब की॥ १९॥

कुंभकर्न असुर औतारी अवरंगज़ेब कीन्ही कत्ल मथुरा दोहाई फेरी रब की। खोदि डारे देवी देव सहर मुहल्ला बाँके लाखन तुरुक कीन्हे छूटि गई तबकी॥ 'भूषन' भनत भाग्यो कासीपति विश्वनाथ और कौन गिनती मैं भूली गति भब की। चारौ बर्न धर्म छोड़ि कलमा नेवाज पढ़ि सिवा जी न होतो तौ सुनति होत सब की॥ २०॥

दावा पातसाहन सों कीन्हो सिवराज वीर जेर कीन्हो देस हद्द बाँध्यों दरबारे से । हठी मरहठी तामैं राख्यो ना मवास कोऊ छीने हथियार डोलैं बन बनजारे से ॥ आमिष अहारी माँसहारी दै दै तारी नाचै खाँड़े तोड़ किरचैं उड़ाये सब तारे से । पील सम डील जहाँ गिरि से गिरन लागे मुंड मतवारे गिरैं झुंड मतवारे से ॥ २१ ॥

छूटत कमान और तीर गोली बानन के मुसकिल होत मुरचान हू की ओट में । ताही समै सिवराज हुकुम कै हल्ला कियो दावा बाँधि पर्‌यो हल्ला वीर भट जोट में ॥ 'भूषन' भनत तेरी हिम्मति कहाँ लौं कहैां किम्मति इहाँ लगि है जाकी भट झोट मैं । ताव दै दै मूँछन कँगूरन पै पाँव दै दै अरि-मुख घाव दै दै कूद परैं कोट मैं ॥ २२ ॥

उतै पातसाह जू के गज्जन के ठट्ट छूटे उमड़ि घुमड़ि मतवारे घन भारे हैं । इतै सिवराज जू के छूटे सिंहराज औ बिदारे कुंभ करिन के चिक्करत कारे हैं ॥ फौजैं सेख सैयद मुगल औ पठानन की मिलि इखलास काहू मीर न सम्हारे हैं । हद्द हिंदुवान की बिहद्द तरवारि राखि कैयो बार दिल्ली के गुमान झारि डारे हैं ॥ २३ ॥

जीत्यो सिवराज सलहेरि को समर सुनि सुनि असुरन के सुसीने धरकत हैं । देवलोक नागलोक नरलोक गावैं जस अजहूँ लौं परे खग्ग दाँत खरकत हैं ॥ कंटक कटक काटि कीट से उड़ाये केते 'भूषन' भनत मुख मोरि सरकत हैं । रनभूमि लेटे अधकटे फरलेटे परे रुधिर लपेटे पठनेटे फरकत हैं ॥ २४ ॥

(मालती सवैया)

केतिक देस दल्यो दल के बल दच्छिन चंगुल चाँपि कै चाख्यो । रूप-गुमान हर्‌यो गुजरात को सूरत को रस चूसि कै

नाख्यो ॥ पंजन पेलि मलिच्छ मले सब सोई बच्यो जेहि दीन ह्वै भाख्यो । सो रँग है सिवराज बली जेहिं नौरँग मैं रँग एक न राख्यो ॥ २५ ॥

सूब निरानँद ब्हादुरखान गे लोगन बूझत ब्योंत बखानो । दुग्ग सबै सिवराज लिये धरि चारु बिचारु हिये यह आनो ॥ 'भूषन' बोलि उठे सिगरे हुतो पूना मैं साइतखान को थानो । जाहिर है जग मैं जसवंत लियो गढ़सिंह मैं गीदर बानो ॥ २६ ॥

(कवित्त मनहरण)

जोरि करि जैहैं जुमिला हू के नरेस पर तोरि अरि खंड खंड सुभट समाज पै । 'भूषन' असाम रूम बलख बुखारे जैहैं चीन सिलहट तरि जलधि जहाज पै ॥ सब उमरावन की हठ कूरताई देखौ कहैं नवरंगजेब साहि सिरताज पै । भीख माँगि खैहैं बिनु मनसब रैहैं पै न जैहैं हजरत महाबली सिवराज पै ॥ २७ ॥

चंद्राव चूर करि जावली जपत कीन्ही मारे सब भूप औ सँहारे पुर धाय कै । 'भूषन' भनत तुरकान दलथंभ काटि अफजल मारि डारे तबल बजाय कै ॥ एदिल सौं बेदिल हरम कहैं बार बार अब कहा सोवो सुख सिंहहि जगाय कै । भेजना है भेजो सो रिसालैं सिवराज जू की बाजीं करनालैं परनालै पर आय कै ॥ २८ ॥

(मालती सवैया)

साजि चमू जनि जाहु सिवा पर सोवत जाय न सिंह जगावो । तासों न जंग जुरौ न भुजंग महाविष के मुख मैं कर नावो ॥ 'भूषन' भाषत बैरिबधू जनि एदिल औरंग लौं दुख पावो । तासु सलाह की राह तजौ मति, नाह दिवाल की राह न धावो ॥ २९ ॥

छप्पय

विज्जपूर विदनूर सूर सर धनुप न संधहिं । मंगल विनु मल्लारि नारि धम्मिल्ल न वंधहिं ॥ गिरत गब्भ कोटै गरब्भ चिंजी चिंजा-उर । चालकुंड दलकुंड गोलकुंड संका उर॥ 'भूपन' प्रताप सिवराज तव इमि दच्छिन दिसि संचरहि । मधुराधरेस धकधकत सो द्रविड़ निविड़ डर दवि डरहि ॥ ३० ॥

(कवित्त मनहरण)

अफजल खान को जिन्हों ने मयदान मारा वीजापुर गोलकुंडा मारा जिन आज है। 'भूपन' भनत फरासीस त्यों फिरंगी मारि हबसी तुरक डारे उलटि जहाज है ॥ देखत मैं रुसतम खाँ को जिन खाक किया सालति सुरति आजु सुनी जो अवाज है। चौंकि चौंकि चकता कहत चहुँधा ते यारो लेत रहौ खबरि कहाँ लौं सिवराज है ॥ ३१ ॥

फिरँगाने फिकिर औ हदसनि हवसाने 'भूपन' भनत कोऊ सोवत न घरी है । वीजापुर-विपति विडरि सुनि भाज्यो सव दिल्ली दरगाह वीच परी खरभरी है ॥ राजन के राज सव साहिन के सिरताज आज सिवराज पातसाही चित धरी है । बलख वुखारे कसमीर लौं परी पुकार धाम धाम धूमधाम रूम साम परी है ॥ ३२ ॥

गरुड़ को दावा सदा नाग के समूह पर, दावा नाग-जूह पर सिंह सिरताज को । दावा पुरहूत को पहारन के कूल पर, पच्छिन के गोल पर दावा सदा बाज को ॥ 'भूपन' अखंड नवखंड महिमंडल मैं तम पर दावा रवि-किरन-समाज को ॥ पूरब पछाँह देस दच्छिन ते उत्तर लौं जहाँ पादसाही तहाँ दावा सिवराज को ॥ ३३ ॥

दारा की न दौर यह, रारि नहीं खजुवे की, बाँधिवो नहीं है किधौं मीर सहवाल को । मठ विश्वनाथ को न बास ग्राम

गोकुल को देवी को न देहरा न मंदिर गोपाल को ॥ गाढ़े गढ़ लीन्हे अरु वैरी कतलाम कीन्हे ठौर ठौर हासिल उगाहत है साल को। बूड़ति है दिल्ली सो सम्हारै क्यो न दिल्लीपति धक्का आनि लाग्यो सिवराज महाकाल को ॥ ३४ ॥

गढ़न गँजाय गढ़धरन सजाय करि छाँड़ि केते धरम दुवार दै भिखारी से । साहि के सपूत पूत बीर सिवराज सिंह केते गढ़धारी किये बन बनचारी से ॥ 'भूषन' बखानै केते दीन्हे बंदीखाने सेख सैयद हजारी गहे रैयति बजारी से । महतो से मुगल महाजन से महाराज डाँड़ि लीन्हे पकरि पठान पटवारी से ॥ ३५ ॥

सक्र जिमि सैल पर, अर्क तम फैल पर, बिघन की रैल पर लंबोदर लेखिये । राम दसकंध पर, भीम जरासंध पर, 'भूषन' ज्यों सिंधु पर कुंभज बिसेखिये ॥ हर ज्यों अनंग पर, गरुड़ भुजंग पर, कौरव के अंग पर पारथ ज्यों पेखिये। बाज ज्यों बिहंग पर, सिंह ज्यों मतंग पर, म्लेच्छ चतुरंग पर सिवराज देखिये ॥ ३६ ॥

बारिधि के कुंभभव, घन-बन-दावानल, तरुन-तिमिर हू के किरन-समाज हो। कंस के कन्हैया, कामधेनु हू के कंटकाल, कैटभ के कालिका, बिहंगम के बाज हो ॥ 'भूषन' भनत जग जालिम के सचीपति, पन्नग के कुल के प्रबल पच्छिराज हो। रावन के राम, कार्तबीज के परसुराम, दिल्लीपति दिग्गज के सेर सिवराज हो ॥ ३७ ॥

दरबर दौरि करि नगर उजारि डारि कटक कटाये। कोटि दुजन दरब की। जाहिर जहान जंग जालिम है जोरावर चलै न कछूक अब एक राजा रब की ॥ सिवराज तेरे त्रास दिल्ली भयो भुवकंप थर थर काँपत बिलायति अरब की । हालत

---

(३७) पाठां०—चिन्तामनि ।

दहलि जात काबुल कँधार बीर रोष करि काढ़े समसेर ज्यों करब की ॥ ३८ ॥

'सेवा की बड़ाई औ हमारी लघुताई क्यों कहत बार बार' कहि पातसाह गरजा । 'सुनिये खुमान हरि तुरुक गुमान महि देवन जेंवायो' कवि 'भूषन' यों अरजा ॥ तुम बाको पाय कै जरूर रन छोरो वह रावरे वजीर छोरि देत करि परजा । मालुम तिहारो होत याहि में निवेरो रनु कायर सो कायर औ सरजा सो सरजा ॥ ३९ ॥

कोट गढ़ ढाहियतु एकै पातसाहन के एकै पातसाहन के देस दाहियतु है । 'भूषन' भनत महाराज सिवराज एकै साहन की फौज पर खग्ग बाहियतु है ॥ क्यों न होहिं बैरिन की बौरी सुनि बैर बधू दौरनि तिहारे कहैा क्यों निबाहियतु है । रावरे नगारे सुने बैरवारे नगरन नैनवारे नदन निवारे चाहियतु है ॥ ४० ॥

चकित चकत्ता चौंकि चौंकि उठै बार बार दिल्ली दहसति चित चाह खरकति है । बिलखि बदन बिलखात बिजेपुर पति फिरत फिरंगिन की नारी फरकति है । थर थर काँपत कुतुबसाहि गोलकुंडा हहरि हबस भूप भीर भरकति है । राजा सिवराज के नगारन की धाक सुनि केते पातसाहन की छाती दरकति है ॥ ४१ ॥

मोरंग कुमाउँ औ पलाऊ बाँधे एक पल कहाँ लौं गनाऊँ जेऽब भूषन के गोत हैं । 'भूषन' भनत गिरि बिकट निवासी लोग, बावनी बवंजा नव कोटि धुंध जोत हैं ॥ काबुल कँधार खुरासान जेर कीन्हो जिन मुग़ल पठान सेख सैयदहू रोत हैं । अब लगि जानत हे बड़े होत पातसाह सिवराज प्रगटे ते राजा बड़े होत हैं ॥ ४२ ॥

दुग्ग पर दुग्ग जीते सरजा सिवाजी गाजी डग्ग नाचे डग्ग पर रुंड मुंड फरके। 'भूषन' भनत बाजे जीति के नगारे भारे सारे करनाटी भूप सिंहल को सरके॥ मारे सुनि सुभट पनारे वारे उद्‌भट तारे लगे फिरन सितारे गढ़धर के। बीजापुर बीरन के गोलकुंडा धीरन के, दिल्ली उर मीरन के दाड़िम से दरके ॥ ४३ ॥

मालवा उजैन भनि 'भूषन' भेलास ऐन सहर सिरोंज लौं परावने परत हैं। गोंडवानो तिलँगानो फिरँगानो करनाट रुहिलानो रुहिलन हिये हहरत हैं॥ साहि के सपूत सिवराज तेरी धाक सुनि गढ़पति बीर तेऊ धीर न धरत हैं। बीजापुर गोलकुंडा आगरा दिली के कोट बाजे बाजे रोज दरवाजे उघरत हैं ॥ ४४ ॥

मारि करि पातसाही खाकसाही कीन्ही जिन जेर कीन्हो जोर सों लै हद्द सब मारे की। खिसि गई सेखी फिसि गई सूरताई सब हिसि गई हिम्मत हजारों लोग सारे की॥ बाजत दमामे लाखौं धौंसा आगे घहरात गरजत मेघ ज्यों बरात चढ़े भारे की। दूलहो सिवाजी भयो दच्छिनी दमामे वारे दिल्ली दुलहिनि भई सहर सितारे की ॥ ४५ ॥

डाढ़ी के रखैयन की डाढ़ी सी रहति छाती बाढ़ी मरजाद जस हद्द हिंदुवाने की। कढ़ि गई रैयति के मन की कसक सब मिटि गई ठसक तमाम तुरुकाने की। 'भूषन' भनत दिल्लीपति दिल धकधका सुनि सुनि धाक सिवराज मरदाने की। मोटी भई चंडी बिनु चोटी के चबाय सीस खोटी भई संपति चकत्ता के घराने की ॥ ४६ ॥

---

(४६) पाठां०—कहत 'निवाज' दिल्लीपति दिल धकधकै धाक सुनि राजा छत्रसाल मरदाने की।

जिन फन फुतकार उड़त पहार भार कूरम कठिन जनु कमल बिदलि गो। बिषजाल ज्वालामुखी लवलीन होत जिन झारन चिकारि मद दिग्गज उगलि गो॥ कीन्हों जेहि पान पयपान सो जहान कुल कोल हू उछलि जल सिंधु खलभलि गो। खग्ग खगराज महाराज सिवराज जू को अखिल भुजंग मुगलद्दल निगलि गो॥ ४७॥

राखी हिंदुआनी हिंदुआन को तिलक राख्यो अस्मृति पुरान राखे वेद विधि सुनी मैं। राखी रजपूती राजधानी राखी राजन की धरा में धरम राख्यो राख्यो गुन गुनी मैं॥ 'भूषन' सुकबि जीति हद्द मरहट्टन को देस देस कीरति बखानी तब सुनी मैं। साहि के सपूत सिवराज समसेर तेरी दिल्ली दल दाबि कै दिवाल राखी दुनी मैं॥ ४८॥

साहि के सपूत रनसिंह सिवराज बीर बाढ़ी समसेर सिर सत्रुन पै कढ़ि कै। काटे वे कटक कटकिन के निकट भू में हम सों न जात कह्यो सेस सम पढ़ि कै॥ पारावार ताहि को न पावत है पार कोऊ सोनित समुद्र यहि भाँति रह्यो बढ़ि कै। नांदिया की पूँछ, गहि पौंरि के कपाली वचे काली बची माँस के पहारन पै चढ़ि कै॥ ४९॥

साहि के सपूत सिवराज वीर तेरे डर अडग अपार महा दिग्गज सो डोलिया। बंदर बिलायत सो उर अकुलाने अरु संकित सदाय रहे वेस बहलोलिया॥ 'भूषन' भनत कौल करत कुतुबशाह चारे चहुँ ओर इच्छा पदिल सा भोलिया। दाहि दाहि दिल कीने दुखदाई दाग ताते आहि आहि करत औरंगशाह औलिया॥ ५०॥

वेद राखे बिदित पुरान राखे सार युत रामनाम राख्यो अति रसना सुघर मैं। हिंदुन की चोटी रोटी राखी है सिपाहिन की कांधे मैं जनेऊ राख्यो माला राखी गर मैं॥ मीड़ि राखे मुगल

मरोड़ि राखे पातसाह बैरी पीसि राखे बरदान राख्यो कर मैं। राजन की हद्द राखी तेग बल सिवराज देव राखे देवल स्वधर्म राख्यो घर मैं ॥ ५१ ॥

सपत नगेस चारौं ककुभ गजेस कोल कच्छप दिनेस धरैं धरनि अखंड को। पापी घालै धरम, सुपथ चालै मारतंड, करतार प्रतिपालै प्रानिन के चंड को ॥ 'भूषन' भनत सदा सरजा सिवाजी गाज़ी म्लेच्छन को मारै करि कीरति घमंड को। जग काज वारे निहचिंत करि डारे सब भोर देत आसिष तिहारे भुजदंड को ॥ ५२ ॥

छत्रशाल दशक

(दोहा)

इक हाड़ा बूँदी-धनी मरद महेवा-वाल ।
सालत नौरंगजेब को ये दोनों छतसाल ॥ १ ॥
वै देखौ छत्ता पता ये देखो छतसाल ।
वै दिल्ली की ढाल ये दिल्ली-ढाहन-वाल ॥ २ ॥

भुज भुजगेस की वै संगिनी भुजंगिनी सी खेदि खेदि खाती दीह दारुन दलन के । बखतर पाखरनि बीच धँसि जाति मीन पैरि पार जात परवाह ज्यों जलन के ॥ रैया राय चंपति को छत्रसाल महाराज 'भूषन' सकत को बखानि यों बलन के । पच्छी पर छीने ऐसे परे पर छीने वीर तेरी बरछी ने बर छीने हैं खलन के ॥ ३ ॥

रैया राय चंपति को चढ़ो छत्रसालसिंह 'भूषन' भनत सम-सेर जोम जमकैं । भादौं की घटा सी उठीं गरदैं गगन घेरैं सेलैं समसेरैं फेरैं दामिनी सी दमकैं ॥ खान उमरावन के आन राजा रावन के सुनि सुनि उर लागैं घन कैसी घमकैं । वैहर बगारन की अरि के अगारन की नांघती पगारन नगारन की धमकैं ॥ ४ ॥

अत्र गहि छत्रसाल खीझ्यो खेत बेतवै के उत ते पठाननहू कीन्हीं झुकि झपटैं । हिम्मति बड़ी के गवड़ी के खिलवारन लौं देत से हजारन हजार बार चपटैं ॥ 'भूषन' भनत काली हुलसी असीनन को सीसन को ईस की जमाति जोर जपटैं । समद लौं समद की सेना त्यों बुँदेलन की सेलैं समसेरैं भईं बाड़व की लपटैं ॥ ५ ॥

हैबर हरट्ट साजि गैबर गरट्ट सम पैदर के ठट्ट फौज जुरी तुरकाने की। 'भूषन' भनत राय चंपति को छत्रसाल रोप्यो रन ख्याल ह्वै के ढाल हिंदुवाने की॥ कैयक हजार एक बार बैरी मारि डारे रंजक दगनि मानो अगिनि रिसाने की। सैद अफगन सेन सगर सुतन लागी कपिल सराप लौं तराई तोपखाने की॥ ६॥

चाक चक चमू के अचाक चक चहूँ ओर चाक सी फिरति धाक चंपति के लाल की। 'भूषन' भनत पातसाही मारि जेर कीन्हीं काहू उमराव ना करेरी करवाल की॥ सुनि सुनि रीति बिरदैत के बड़प्पन की थप्पन उथप्पन की बानि छत्रसाल की। जंग जीतिलेवा ते वै ह्वै कै दामदेवा भूप सेवा लागे करन महेवा महिपाल की॥ ७॥

राजत अखंड तेज छाजत सुजस बड़ो गाजत गयंद दिग्गजन हिय साल को। जाहि के प्रताप सों मलीन आफताप होत ताप तजि दुजन करत बहु ख्याल को॥ साज सजि गज तुरी पैदर कतार दीन्हें 'भूषन' भनत ऐसो दीन प्रतिपाल को। और राव राजा एक मन मैं न ल्याऊँ अब साहू को सराहौं कै सराहौं छत्रसाल को॥ ८॥

साँगन सों पेलि पेलि खग्गन सों खेलि खेलि समद सा जीता जो समद लौं बखाना है। भूषन बुँदेलामनि चंपत सपूत धन्य जाकी धाक बचा एक मरद मियाना है॥ जंगल के बल सें उदंगल प्रबल लूटा महमद अमी खाँ का कटक खज़ाना है। बीर रसमत्ता जाते काँपत चकत्ता यारो कत्ता ऐसा बाँधिए जो छत्ता बाँधि जाना है॥ ९॥

देस दहवट्टि आयो आगरे दिल्ली के मेंडे वरगी बहरि मानौ दल जिमि देवा को। 'भूपन' भनत छत्रसाल छितिपाल मनि ताके ते कियो

विहाल जंग जीति लेवा को ॥ खंड खंड सारे यों अखंड महि मंडल में मंडौ तें बुंदेलखंड मंडल महेवा को। दच्छिन के नाह को कटक रोक्यो महाबाहु ज्यों सहस्रबाहु ने प्रवाह रोक्यो रेवा को ॥ १० ॥

बड़ी औंड़ी उमड़ी नदी सी फ़ौज छेकी जहाँ मेंड़ वेड़ी छत्रसाल मेरु से खरे रहे। चंपति के चकवै मचायो घमासान वैरी मलियै मसान आनि सौंहैं जे अरे रहे ॥ 'भूषन' भनत भकरुंड रहे रुंड मुंड भव के भुसुंड तुंड लोहू से भरे रहे। कीन्हों जस पाठ हर पठनेटे ठाट पर काठ लौं निहारे कोस साठ लौं डरे रहे ॥ ११ ॥

स्फुट पद

[कवित्त मनहरण]

जानि पति बागवान मुग़ल पठान सेख,
बैल सम फिरत रहत दिन रात हैं।
ताते ह्वै अनेक कोई सामने चलत कोई,
पीठ दै चलत मुख नाहीं सरमात हैं॥
'भूषन' भनत जुरे जहाँ जहाँ जुद्ध भूमि,
सरजा सिवा के जस बाग न समात हैं।
रहँट की घड़ी जैसे औरँग के उमराव,
पानिप दिल्ली तें लाइ ढारि ढोरि जात हैं॥ १॥

तेग बरदार स्याह पंखा बरदार स्याह,
निखिल नकीब स्याह बोलत बिराह को।
पान पीकदानी स्याह सेनापति मुख स्याह,
जहाँ तहाँ ठाढ़े गिनें 'भूषन' सिपाह को॥
स्याह भये सारी पातसाही के अमीर खान,
काहू को न रह्यो जोम समर उमाह को।
सिंह सिवराज दल मुगल बिनास करि,
घास ज्यों पजार्‌यो आमखास पातसाह को॥ २॥

सिंधु के अगस्त और बाँस-बन-दावानल,
तिमिर पै तरनि की किरन-समाज हो।
कंस के कन्हैया और चूहा के बिड़ाल पुनि,
कैटभ की कालिका बिहंगम के बाज हो॥
'भूषन' भनत सब असुर के इन्द्र पुनि,
पन्नग के कुल के प्रबल पच्छिराज हो।
रावन के राम सहसबाहु के परसुराम,
दिल्ली-पति दिग्गज के सिंह सिवराज हो* ॥ ३॥

* शिवा बावनी के ३७ वें छंद से कुछ ही पाठभेद है।

बाप ते बिसाल भूमि जीत्यो दस दिसिन तें,
महि में प्रताप कीनों भारी भूप भान सों।
ऐसो भयो साहि के सपूत सिवराज बीर,
तैसो भयो होत है न ह्वै है कोऊ आन सों॥
एदिल कुतुबसाहु औरँग के मारिबे को,
'भूषन' भनत को है सरजा खुमान सों।
तीनपुर त्रिपुर के मारे शिव तीन बान,
तीन पातसाही हनी एक किरवान सों॥ ४॥

तेरी धाक ही ते नित हबसी फिरंगी औ,
बिलायती बिलन्दे करैं वारिधि-बिहरनौ।
'भूषन' भनत बीजापुर भागनेर दिल्ली,
तेरे बैर भयौ उमरावन कौ मरनौ॥
बीच बीच उहाँ केते जोर से मुलुक लूटे,
कहाँ लगि साहस सिवाजी तेरी बरनौ।
आठ दिगपाल त्रास आठ दिसि जीतिबे को,
आठ पातसाहन सों आठो जाम लरनौ॥ ५॥

भूप सिवराज कोप करी रनमंडल में,
खग्ग गहि कूद्यो चकता के दरबारे में।
काटे भट बिकट औ गजन के सुंड काटे,
पाटे उरभूमि काटे दुवन सितारे में॥
'भूषन' भनत चैन उपजे शिवा के चित्त,
चौंसठ नचाई जबै रेवा के किनारे में।
आंतन की तांत बाजी खाल की मृदंग बाजी,
खोपरी की ताल पसुपाल के अखारे में॥ ६॥

दौरि चढ़ि ऊँट फरियाद चहुँ खूँट कियो,
सूरत को कूट सिवा लूट धन लै गयो।

कहि ऐसे आप आमखास मधि साहन को,
कौन ठौर जायँ दाग छाती बीच दै गयो॥
सुनि सोइ साह कहे यारो उमराओ जाओ,
सो गुनाह राव एती बेर बीच कै गयो।
'भूषन' भनत मुगलान सबै चौथ दीनी,
हिन्द में हुकुम साहि-नंद जी को ह्वै गयो॥ ७॥

मारे दल मुगल तिहारी तलवार आज,
उछलि बिछलि म्यान बामी तें निकासती।
तेरी तलवार लागे दूसरी न माँगे कोऊ,
काटि के करेजा स्रोन पीवत बिनासती॥
साहि के सपूत महाराज सिवराज बीर,
तेरी तरवार स्याह नागिन ते जासती।
ऊँट हय पैदल सवारन के झुंड काटि,
हाथिन के मुण्ड तरबूज लौं तरासती॥ ८॥

तेरी स्वारी माँझ महाराज सिवराज बली,
केते गढ़पतिन के पंजर मचकि गे।
केते बीर मारि कै बिडारे किरवानन तें,
केते गिद्ध खाय केते अंबिका अचकि गे॥
'भूषन' भनत रुण्ड मुण्डन की माल करि,
चार पाँव नाँदिया के भार ते भचकि गे।
टूटिगो पहार विकराल भुव मंडल के,
सेस के सहस फन कच्छप कचकि गे॥ ९॥

तखत तखत पर तपत प्रताप पुनि,
नृपति नृपति पर सुनी है अवाज की।
दंड सातौ दीप नवखंडन अदंड पर,
नगर नगर पर छावनी समाज की॥

उदधि उदधि पर दावनी खुमान जू की,
थल थल ऊपर सुवानी कविराज की।
नग नग ऊपर निसान झरि जगमगे,
पग पग ऊपर दुहाई सिवराज की ॥१०॥

बारह हज़ार असवार जोरि दलदार,
ऐसे अफजल खान आयो सुरसाल है।
सरजा खुमान मरदान सिवराज वीर,
गंजन गनीम आयो गाढ़े गढ़पाल है॥
'भूषन' भनत दोऊ दल मिलि गये वीर,
भारत सो भारी भयो जुद्ध विकराल है।
पार जावली के वीच गढ़ परताप तलैं,
स्रोन भयो सोनित सो अजौं धरा लाल है ॥११॥

कत्ता के कसैया महावीर सिवराज तेरी,
रूम के चकत्ता तक संका सरसात है।
कासमीर कावुल कलिंग कलकत्ता अरु,
कुल करनाटक की हिम्मत हिरात है॥
विकट विराट वंग व्याकुल वलख वीर,
वारहो विलायत सकल विललात है।
तेरी धाक धुँधरि धरा में अरु धाम धाम,
अंधाधुन्ध आँधी सी हमेस हहरात है ॥१२॥

तेरी त्रास वैरी वधू पीवत न पानी कोऊ,
पीवत अचाय धाय उठे अकुलाई है।
कोऊ रही वाल कोऊ कामिनी रसाल सो तो,
भई वेहवाल भागी फिरै वनराई है॥
साहि के सपूत खुद आलम खुमान सुनो,
'भूषन' भनत तेरी कीरति बनाई है।

दिल्ली को तखत तजि नींद खान पान तजि,
सिवा सिवा बकत से सारी पातसाई है ॥१३॥

बंद कीने बलख सो बैर कीनो खुरासान,
कीनी हबसान पर पातसाही पलही।
बेदर कल्यान घमसान कै छिनाय लीने,
जाहिर जहान उपखान ये ही चलही॥
जंग करि जोर सों निज़ाम साहि ज़ेर कीनी,
रन में नमाय हैं बुँदेल छलबल ही।
ताके सब देस लूटि शाह जी के सिवराज,
कूटी फौज अजौं मुगलन हाथ मलहीं ॥१४॥

कूरम, कबंध, हाड़ा, तूँबर, बघेला बीर,
प्रबल बुँदेला हूते जेते दलमनी सों।
देवल गिरन लागे मूरति ले बिप्र भागे,
नेकहू न जागे सोई रहो रजधनी सों॥
सबने पुकार करी सुरन मनाइबे को,
सुर ने पुकार भारी कीनी बिश्वधनी सों।
धरम रसातल को डूबत उबार्‌यौ सिवा,
मारि तुरकान घोर बल्लम की अनी सों ॥१५॥

बैठतीं दुकान लै कै रानी रजवारन की,
तहाँ आइ बादशाह राह देखे सबकी।
बेटिन को यार और यार है लुगाइन को,
राहन के मार दावादार गये दबकी॥
ऐसी कीनी बात तौऊ कोऊ ए न कीनी घात,
भई है नदानी बंस छत्तिस में कबकी।
दच्छिन के नाथ ऐसी देखि धरे मूछों हाथ,
सिवाजी न होतो तो सुनत होती सबकी ॥१६॥

देह देह देह फिर पाइये न ऐसी देह,
जौन तौन जो न जानै कौन जौन ध्याइबो।
जेते मनमानिक हैं तेते मनमानि कहैं,
धराई में धरे ते तौ धराई में धराइबो॥
एक भूख राख भूख राखै मत भूषन की,
याहि भूख राख भूप 'भूषन' बनाइबो।
गगन के गौन जम न गिनन दैहैं नग,
नगन चलैगो साथ नग न चलाइबो ॥१७॥

जोर रूसियान को है तेग खुरासान की है,
नीति इंगलैंड चीन हुन्नर महादरी।
हिम्मत ग्रमान मरदान हिन्दुवान हू की,
रूम अभिमान हबसान हद कादरी॥
नेकी अरबान सान अदब इरान त्योंही,
क्रोध है तुरान ज्यों फरांस फंद आदरी।
'भूषन' भनत इमि देखिये महीतल पै,
बीर सिरताज सिवराज की बहादरी॥ १८॥

आपस की फूटही ते सारे हिन्दुवान टूटे,
टूट्यो कुल रावन अनीति अति करते।
पैठिगो पताल बलि वज्रधर-ईरषा तें,
टूट्यो हिरनाक्ष अभिमान चित्त धरते॥
टूट्यो शिशुपाल बासुदेव जू सों बैर करि,
टूट्यो है महिष दैत्य अधम विचरते।
राम कर छुवन ते टूट्यो ज्यों महेश चाप,
टूटी पातसाही सिवराज संग लरते॥ १९॥

साजि दल सहज सितारा महाराज चलै,
बाजत नगारा पढ़ै धाराधर साथ से।

राइ उमराइ राना देसदेसपति भागे,
तजि तजि गढ़न गढ़ोई दसमाथ से ॥
पैग पैग होत भारी डावाँडोल भूमि गोल,
पैग पैग होत दिग्ग मैगल अनाथ से ।
उलटत पलटत गिरत झुकत उझकत,
शेषफनि बेदपाठिन के हाथ से ॥ २० ॥

चोरी रही मन में ठगोरी रही रूप ही में,
नाहीं तो रही है एक मानिनी के मान में ।
केस में कुटिलताई नैन में चपलताई,
भौंह में बँकाई हीनताई कटियान में ॥
'भूषन' भनत पातसाह पातसाहन में,
तेरे सिवराज राज अदल जहान में ।
कुच में कठोरताई रति में निलजताई,
छाँड़ि सब ठौर रही आइ अन्नलान में ॥ २१ ॥

सुमन में मकरन्द रहत है साहि-नन्द,
मकरन्द सुमन रहत ज्ञान बोध है ।
मानस में हंस-बंस रहत हैं तेरे जल,
हंस में रहत करि मानस बिसोध है ॥
'भूषन' भनत भौंसिला भुवाल भूमि तेरी,
करतूति रही अद्भुत रस ओघ है ।
पानी में जहाज रहे लाज के जहाज,
महाराज सिवराज तेरे पानिप पयोध है ॥ २२ ॥

[सवैया]

अवरँग सा इक ओर सजे इक ओर सिवा नृप खेलन धारे ।
'भूषन' दच्छिन दिल्लिय देस किये दुहुँ ठीक ठिकान मिनारे ॥

साह सिपाह खुमानहि के खग लोग घटान समान निहारे।
आलमगीर के मीर वजीर फिरैं चहुगान-बटान से मारे॥ २३॥
श्रीसिवराज धरापति के यहि भांति पराक्रम होवत भारी।
दंड लिये भुवमंडल के नहिं कोऊ अदंड बच्यो छतधारी॥
बैठि सुदच्छिन 'भूषन' दच्छ खुमान सबै हिन्दुवान उँजारी।
दिल्ली तें गाजत आवत ताजि ये पोटत आपको पंज हजारी॥२४॥
यों पहिले उमराव लरे रन जेर किये * जसवन्त अजूबा।
साइत खाँ अरु † दाउद खां पुनि हारि दिलेर ‡ महम्मद डूबा॥
'भूषन' देखे बहादुर खाँ फिर होय महाबत खाँ अति ऊबा।
सूखत जानि शिवाजी के तेज सों पान से फेरत नौरँग सूबा॥२५॥

[छप्पय]

तहवरखान हराय एँड़ अनवर की जँग हरि।
सुलरुद्दीन बहलोल गये अबदुल समद मुरि॥
महमद को मद मेटि सैद अफ़गनहि ज़ेर किय।
अति प्रचंड भुजदंड बलन काहिनै दंड दिय॥
'भूषन' बुँदेल छतसाल डर, रंग तज्यो अवरंग लजि।
झुक्के निशान तजि समर सों मक्के तक्कि तुरुक भजि॥२६॥
सैयद मुग़ल पठान सेख चन्द्रावत भच्छन।
सोमसूर द्वै बंस राव राना रन रच्छन॥
इमि 'भूषन' अवरंग और पदिल दल जंगी।
कुल करनाटक कोट भोट कुल हवस फिरंगी॥
चहुँ ओर वैर महि मेरु लगि साहितनै साहस झलक।
फिर एक ओर शिवराज नृप एक ओर सारी खलक॥ २७॥

---

* पाठा०—कै पहिले उमराव अमीरुल् फेरि कियो।
† फेरि कुतुब्ब ख़ाँ। ‡ दलेल।

[कवित्त मनहरण]

सारस से सूबा करवानक से साहजादे,
मोर से मुग़ल मीर धीर ही धचैं नहीं।
बगुला से बंगस बलूचियो बतक ऐसे,
काबुली कुलंग याते रन में रचैं नहीं॥
'भूषन' जू खेलत सितारे में सिकार संभा,
सिवा को सुवन जाते दुवन सँचै नहीं।
बाजी सब बाज से चपेटैं चंगु चहूँ ओर,
तीतर तुरुक दिल्ली भीतर बचैं नहीं॥ २८॥

साहू जी की साहिबी दिखात कछू होनहार,
जाके रजपूत भरे जोम बमकत हैं।
भारे भारे नग्र वारे भागे घर तारे दै दै,
बाजे ज्यों नगारे घनघोर धमकत हैं॥
व्याकुल पठानी मुग़लानी अकुलानी फिरैं,
'भूषन' भनत माँग मोती दमकत हैं।
दच्छिन के आमिल भो सामिलही चहूँ ओर,
चम्बल के आर पार नेजा चमकत हैं॥ २९॥

बलख बुखारे मुलतान लों हहर पारे,
काबुल पुकारै कोऊ धरत न सार है।
रूम रूँदि डारे खुरासान खूँदि मारे खाक,
खादर लों झारे ऐसी साहू की बहार है॥
सक्खर लों भक्खर लों मक्कर लों चले जात,
टक्कर लेवैया कोऊ बार है न पार है।
'भूषन' सिरौंज लों परावने परत फेरि,
दिल्ली पर परति परिन्दन की छार है॥ ३०॥

[दोहा]

रेवा तें इत देत नहिं, पथिक म्लेच्छ निवास।
कहत लोग इन पुरनि में, है सरजा को त्रास ॥ ३१ ॥

[कवित्त मनहरण]

बाजी बम्बा चढ़ो साजि बाजि जब क़ला भूप,
गाजी महाराज राजी 'भूषन' बखानते।
चंडी की सहाय महि मंडी तेजताई पैंड़,
छंडी राय राजा जिन दंडी औनि आनते॥
मन्दीभूत रवि-रज बन्दीभूत हठ धर,
नन्दी भूतपति भो अनंदी अनुमान ते।
रङ्कीभूत दुवन करङ्कीभूत दिगदंती,
पंकीभूत समुद सुलंकी के पयान ते ॥३२॥

रहत अछक पै मिटै न धक पीवन की,
निपट जुनांगी डर काहू के डरै नहीं।
भोजन बनावै नित चोखे खानखानन के,
सोनित पचावै तऊ उदर भरै नहीं॥
उगिलत आसौ तऊ सुकल समर बीच,
राजै राव बुद्ध कर बिमुख परै नहीं।
तेग या तिहारी मतवारी है अछक तौलौं,
जौलौं गजराजन की गजक करै नहीं ॥ ३३ ॥

जा दिन चढ़त दल साजि अवधूतसिंह,
तादिन दिगन्त लौं दुवन दाटियतु है।
प्रलै कैसे धाराधर धमकैं नगारा धूरि,
धारा ते समुद्रन की धारा पाटियतु है॥

(३२) इस में 'भूषण' उपनाम नहीं आया है तथा याज्ञिक महाशय इसे लाल कलानिधि कृत लिखते हैं। यह छंद संदिग्ध अवश्य है।

'भूषन' भनत भुवगोल को कहर तहाँ,
हहरत तगा जिमि गज काटियतु है।
काँच से कचरि जात सेस के असेस फन,
कमठ की पीठि पै पिठी सी बाँटियतु है॥ ३४॥

मेचक कवच साजि वाहन बयारि वाजि,
गाढ़े दल गाजि रहे दीरघ बदन के।
'भूषन' भनत समसेर सोइ दामिनी है,
हेतु नर कामिनी के मान के कदन के॥
पैदरि बलाका धुरवान के पताका गहे,
घेरियत चहूँ ओर सूते ही सदन के।
ना करु निरादर पिया सों मिलु सादर यै,
आये वीर बादर बहादुर मदन के॥ ३५॥

उलदत मद अनुमद ज्यों जलधि जल बल हद,
भीम कद काहू के न आह के।
प्रबल प्रचंड गंड मंडित मधुप वृन्द,
विन्ध्य से बिलन्द सिन्धु सात हू के थाह के॥
'भूषन' भनत झूल झंपति झपान झुकि,
झूमत झुलत झहरात रथ डाह के॥
मेघ से घमंडित मजेजदार तेजपुंज,
गुंजरत कुंजर कुमाऊ नरनाह के॥ ३६॥

किबले की ठौर बाप बादसाह साहजहाँ,
ताको कैद कियो मानो मक्के आगि लाई है।
बड़ो भाई दारा वाको पकरि के कैद कियो,
मेहर हू नाहिं माँ को जायो सगो भाई है॥
बंधु तो मुराद बक्स बादि चूक करिबे को,
बीच दै कुरान खुदा की कसम खाई है।

'भूषन' सुकवि कहै सुनै नवरंगजेव,
ऐते काम कीन्हे फेरि पातसाही पाई है ॥ ३७ ॥
हाथ तसबीह लिए प्रात उठै बन्दगी को,
आप ही कपट रूप कपट सु जप के।
आगरे में जाय दारा चौक में चुनाय लीन्हों,
छत्र हू छिनायो मानो मरे बूढ़े बप के ॥
कीन्हों है सगोत घात सोमैं नहीं कहौं फेरि,
पील पै तोरायो चार चुगुल के गपके।
'भूषन' भनत छरछंदी मतिमंद महा,
सौ सौ चूहे खाय कै बिलारी बैठी तप कै ॥ ३८ ॥
जुद्ध को चढ़त दल बुद्ध को जसत तब,
लंक लौं अतंकन के पतरें पतारे से।
'भूषन' भनत भारे घूमत गयंद कारे,
बाजत नगारे जात अरि उर फारे से ॥
धसिकै धरा के गाढ़े कोल के कड़ाके डाढ़े,
आवत तरारे दिगपालन तमारे से।
फेन से फनीस-फन फूटि बिष छूटि जात,
उछरि उछरि सिंह पुरवै फुआरे से ॥ ३९ ॥
अकबर पायो भगवन्त के तनै सों मान,
बहुरि * जगतसिंह महा मरदाने सों।
'भूषन' त्यों पायो जहाँगीर महासिंह जू सों,
साहिजहाँ पायो जयसिंह जग जाने † सों ॥
अब अवरंगजेब पायो रामसिंह जू सों और,
दिन दिन पैहै कूरम के माने सों।

---

* पाठां०—तनय जू सों बहुरयो।
† बर बान।

केते राजा राय मान पावैं पातसाहन सों,
पावैं पातसाह मान मान के घराने सों ॥ ४० ॥

डंका के दिये ते दल डम्बर उमंड्यो,
उडमंड्यो उड़मंडल लौं खुर को गरद है।
जहां दारासाह बहादुर के चढ़त पैड़,
पैड़ में मड़त मारू राग बम्ब नद है॥
'भूषन' भनत घने घुम्मत हरौल वारे,
किम्मत अमोल बहु हिम्मत दुरद है॥
हद्न छपद महि मद फरनद होत,
कद्न भनद से जलद हलदद है ॥ ४१ ॥

भले भाई भासमान भासमान भान जाको,
भानत भिखारिन के भूरि भय जाल है।
भोगन को भोगी भोगि-राज कैसी भाँति भुजा,
भारि भूमिभार के उभारन को ख्याल है॥
भावतो समानि भूमि-भामिनी को भरतार,
'भूषन' भरतखंड भरत भुवाल है।
विभौ को भँडार औ भलाई को भवन भासे,
भाग भरे भाल जयसिंह भुवपाल है ॥ ४२ ॥

पौरच नरेस अमरेस जू के अनिरुद्ध,
तेरे जस सुने ते सुहात स्रौन सीतलैं।
चंदन सी चांदनी सी चादरैं सी चहूँ दिसि,
पथ पर फैलती है परम पुनीत लैं॥
'भूषन' बखानी कवि मुखन प्रमानी सोतो,
वानी जू के वाहन हरख हंस हीतलैं।
सरद के घन की घटान सी घमंडती हैं,
मेंहु ते उमंडती हैं मंडती महीतलैं ॥ ४३ ॥

कोकनद-नैनी केलि करी प्रानपति संग,
उठी परजंक ते अनंग जोति सोकी सी।
'भूषन' सकल दलमलि हलचल भये,
बिन्दु लाल भाल फैल्यो कान्ति रवि रोकी सी॥
छूटि रही गोरे गाल हाल पै अलक आछी,
कुसुम गुलाब के ज्यों लीक अलि दो की सी।
मोती सीसफूल ते बिथुरि फैलि रह्यो मानो,
चन्द्रमा ते छूटी है नछत्रन की चौकी सी॥ ४४॥

देखत ही जीवन बिडारौ तो तिहारौ जान्यो,
जीवनद नाम कहिबे ही को कहानी मैं॥
कैधौं घनश्याम जो कहावैं सो सतावैं मोहिं,
निहचै कै आजु यह बात उर आनी मैं॥
'भूषन' सुकवि कीजे कौन पर रोसु निज,
भागि ही को दोसु आगि उठति ज्यों पानी मैं।
रावरे हू आये हाय हाय मेघराय सब,
धरती जुड़ानी पै न बरती जुड़ानी मैं॥ ४५॥

मलय समीर परलै को जो करत अति जम की,
दिसा ते आयो जम ही को गोतु है।
साँपन को साथी न्याय चन्दन छूयो तो डसै,
सदा सहवासी विष गुन को उदोतु है॥
सिंधु को सपूत कलपद्रुम को बंधु दीनबंधु,
को है लोचन सुधा को तनुसोतु है।
'भूषन' भनै रे भुव-भूषन द्विजेस तैं,
कलानिधि कहाय कै कसाइ कत होतु है॥ ४६॥

बन उपवन फूले अंबनि के झौर झूले,
अवनि सहात सोभा और सरसाई है।

अलि मदमत्त भये केतकी बसंती फूली,
'भूषन' बखानै सोभा सबै सुखदाई है॥
विषम विडारिबे को बहत समीर मंद,
कोकिला की कूक कान कानन सुनाई है।
इतनो सँदेसो है जू पथिक तिहारे हाथ,
कहो जाय कन्त सों बसन्त ऋतु आई है॥ ४७॥

जिन किरनन मेरो अंग छुयो तिनहीं सों,
पिया अंग छुवै क्यों न मैन दुख दाहे को।
'भूषन' भनत तूतो जगत को भूषन है,
हौं कहा सराहौं ऐसे जगत सराहे को॥
चंद ऐसी चाँदनी तू प्यारे पै बरसि उतै,
रहि न सकै मिलाप होय चित चाहे को।
तूतो निसाकरै सब ही की निसा करै,
मेरी जो न निसा करै तो तू निसाकर काहे को॥४८॥

कारो जल जमुना को काल सो लगत आली,
छाइ रह्यो मानो यह विष कालीनाग को।
बैरिन भई है कारी कोयल निगोड़ी यह,
तैसो ही भँवर कारो बसि बन बाग को॥
'भूषन' भनत कारे कान्ह को वियोग हिये,
सबै दुखदाई जो करैया अनुराग को।
कारो घन घेरि घेरि मार्‌यो अब चाहत है,
एते पर करति भरोसो कारे काग को॥ ४९॥

[सवैया]

सोंधे भरी सुखमा सुखरी मुख ऊपर आइ रही अलकैं।
कवि 'भूषन' अंग नवीन विराजत मोतिन माल हिये झलकैं॥
उन दोउन की मनसा मनसी नित होत नई ललना ललकैं।
भरि भाजन बाहिर जात मनौं मुसुकानि किधौं छवि की छलकैं॥५०॥

[कवित्त मनहरण]

नैन जुग नैनन सो प्रथमै लड़े हैं धाय,
अधर कपोल तेऊ टरै नाहिं टेरे हैं।
अड़ि अड़ि पिलि पिलि लड़े हैं उरोज बीर,
देखो लगे सीसन पै घाव ये घनेरे हैं॥
पिय को चखायो स्वाद कैसो रति संगर को,
भये अंग अंगनि ते केते मुठभेरे हैं।
पाछे परे बारन कौ बाँधि कहै आलिन सो,
'भूषन' सुभट ये ही पाछे परे मेरे हैं॥ ५१॥

सुने ह्वै जै बेसुख सुने बिन रह्यो न जाय,
याही ते बिकल सी बिताती दिन राती हैं।
'भूषन' सुकवि देखि बावरी बिचार काज,
भूलिबे के मिस सास नन्द अनखाती हैं॥
सोई गति जानै जाके भिदी होय कानै सखि,
जेती कढ़ैं तानै लेती छेदि छेदि जाती हैं।
हूक पाँसुरी में क्यों भरौ न आँसुरी मैं,
थोरे छेद बाँसुरी मैं, घने छेद किये छाती हैं॥५२॥

सत युग द्वापर औ त्रेता कलियुग मधि,
आदि भयो नाहीं भूप तिनहू ते आ घरी।
अकबर बब्बर हुमायूँ साह सासन सों,
स्नेह ते सुधारी हेम हीरन तें सगरी॥
'भूषन' भनत ऐसी मुगलानी चहुँथ दीनी,
दौरि दौरि पौरि पौरि लूट ली चहूँ फिरी।
धूरि तन लाइ बैठि सूरत है रैन दिन,
सूरत को मोरि बदसूरत सिवा करी॥ ५३॥

सिंहल के सिंह सम रन सरजा की हाँक,
सुनि चौंक चलत बंधाइ पाट सादा के।

'भूषन' भनत भुवपाल दुरे द्राविड़ को,
पेल फैल गैल गैल भूले उनमादा के॥
उछलि उछलि ऊँचे सिंह गिरे लंक माँहि,
बूड़ गये महल विभीषन के दादा के।
महि हाले मेरु हाले अलका कुबेर हाले,
जा दिन नगारे बाजे सिव साहजादा के॥ ५४॥

पक्खर प्रबल दल भक्खर सौं दौर करि,
आय साह जी को नंद बांधी तेग बाँकरी।
सहर भोलायो मारि गरद मिलायो गढ़,
अजहूँ न आगे पाछे भूप किन ना करी॥
हीरा मनि मानिक की लाख पोट लादि गयो,
मजीद ढहायो जो पै काढ़ि मूल काँकरी।
आलम पुकार करे आलम पनाह जू पै,
होरी सी जराय सिवा सूरत फना करी॥ ५५॥

दिल्ली के हरोल भारी सुभट अडोल गोल,
चालिस हजार ले पठान धायो तुरकी।
'भूषन' भनत जाकी दौर ही को सोर मच्यो,
पदिल की सीमा पर फौज आन ढुरकी॥
भयो है उचाट करनाट नरनाहन की,
काँपि उठी छाती गोलकुंडा ही के धुर की।
साहि के सपूत सिवराज वीर तैंने तब,
बाहुबल राखी पातसाही बीजापुर की॥ ५६॥

घिरे रहे घाट और बाट सब घिरे रहे,
बरस दिना की गैल छिन माहि छ्वै गयो।
ठौर ठौर चौकी ठाढ़ी रही सब स्वारन की,
मीर उमरावन के बीच है चलो गयो॥

देखे में न आयो ऐसे कौन जाने कैसे गयो,
दिल्ली कर मीड़े कर झारत किते गयो।
सारी पातसाही के सिपाही सेवा सेवा करै,
पर्‌यो रह्यो पलंग परेवा सेवा ह्वै गयो ॥ ५७ ॥

वाजे वाजे राजे से निवाजे हैं निजर करी,
वाजे वाजे राजे काटि काटे असिमत्ता सों।
वाँके वाँके सूबा नालवंदी दै सलाह करैं,
वाँके वाँके सूबा करैं एक एक लत्ता सों॥
गाढ़े गाढ़े गढ़पति छांड़े रामद्वार दै दै गाढे,
गाढ़े गढ़पति आने तरे कत्ता सों।
बाजीराव गाजी तैं उबार्‌यौ आइ छत्रसाल,
आमिल विठायो वल करि कै चकत्ता सों ॥ ५८ ॥

भेंटि सुरजन तोहि मेटि गुरजन-लाज पंथ,
परिजन की न त्रास जिय जानी है।
नेह ही को तात गुन जीवन सकल गात,
भादो-तम-पुंजन निकुंजन सकानी है॥
सावन की रैनि कवि 'भूषन' भयावनी मैं,
भावत सुरति तेरी संकहू न मानी है।
आज रावरे की यहां वातैं चलिवे की मीत,
मेरे जान कुलिश घटा सी घहरानी है ॥ ५९ ॥

[सवैया]

मेरु को सोने कुवेर की संपति ज्यों न घटै विधि राति अमा की।
नीरधि नीर कहै कवि 'भूषन' छीरधि छीर छमा है छमा की॥
रीति महेस उमा की महा रस रीति निरंतर राम रमा की।
र न चलाए चलैं कम छोड़ि कठोर क्रिया औ तिया अधमा की ॥६०॥

परिशिष्ट (क)

टिप्पणी

शिवराजभूषण

१—भव पथ—संसार रूपी मार्ग, भवसागर। करन—कर्ण, कान। बिजना—पंखा। कोकनद—कमल। इह लोक—मृत्यु-लोक, संसार। द्विरद-मुख—गणेश जी।

२—जयंति—पार्वती जी। आदि-सकति—(आदि शक्ति) परमेश्वरी। कपर्दिनि—महादेव जी की स्त्री। चमुंड—(चामुंडा) पार्वती का एक नाम। दुर्गा जी ने मधुकैटभ, महिषासुर, चंड, मुण्ड, भंडासुर, रक्तबीज, बिड्डाल, निशुंभ, शुंभ आदि दैत्यों को मारा था, इससे उनकी स्तुति में इन दैत्यों के साथ विनाशिनि—वाचक शब्द लगाकर कहते हैं।

३—तरनि—सूर्य, नाव। ओक—गृह, स्थान। कोक—चक्रवाक। कोकनद—कमल। आलोक—प्रकाश। कवि ने सूर्य की स्तुति करके तब उसके वंश का वर्णन आरंभ किया है।

४—दिनराज—सूर्य। अवतंस—भूषण, श्रेष्ठ। कंसमथन—श्रीकृष्ण। प्रभु-अंस—परब्रह्म के अवतार श्रीकृष्ण जी यदुवंशी थे, जो चंद्रवंश की एक शाखा है। इस कारण ज्ञात होता है कि कवि ने श्रीकृष्ण जी को परब्रह्म स्वरूप माना है और उन्हीं का अंश लेकर इस सूर्यवंश में अनेक अवतार होने का उल्लेख किया है। इसलिए कंसमथन प्रभु शब्द का विशेषण हो कर आया है अर्थात् कंस को मारने वाले परब्रह्म परमेश्वर।

५—सीसौदिया—सीसोदे ग्राम के निवासी होने के कारण सीसौदिया कहलाए। कवि महाराज ने सीसौ+दिया अर्थ लगाया। एक भाट ने लिख मारा है कि एक महाराणा को उनके अनजान में दवा रूप में वैद्य जी ने मदिरा दे दिया, जिसे जान कर उन्होंने गला हुआ सीसा पी लिया इससे सिसौदिया कहलाए।

६—वख़त—(वख़्त) भाग्य, किसमत। बलंद—ऊँचा, अच्छा।

७—किरवान—कृपाण, तलवार। अंबु—जल। निजाम साहि—अहमदनगर के निज़ाम शाही सुलतान।

८—सरजा—(फा० सर+जाह) सर्दारिमर्तबः, बड़े रुतबे वाला, प्रतिष्ठित। रन+भू+सिला—युद्ध स्थल में चट्टान से दृढ़।

१०—विरंचि की तिया—सरस्वती जी। छिया—तुच्छ। तकिया—आश्रय, सहारा।

१२—अहमेव—अहंता, गर्व।

१३—भुसिल-भूप—शिवा जी भोंसला। करन-प्रवाह—हाथियों की सेना।

१४—सहार—सहारा, आश्रय। सिव—शिवजी, शिवाजी।

१५—साहि—शाह जी। जंपत—कहता है।

१६—उत्तंग—ऊँचा। मरकत—पन्ना, हरा रत्न। घन-समै—वर्षा ऋतु। पटल—परत, तह। गलगाजहीं—गरजते हैं।

१७—ऊरध—ऊपर।

१८—पुहुपराग—पुष्पराग, पुखराज। फटिक—स्फटिक, बिल्लौर।

२०—लवलीं—हरफारेवरी फल। यलानि—इलायची।

२१—करवीर—कनेर। द्राख—द्राक्षा, मुनक्का। दाड़िम—अनार। नृत—महतूत। जंभीर—बड़ा निबुआ। कदंब—एक फल। समूह—गुच्छा। हिंताल—जंगली खजूर। ताल—ताड़, खजूर। तमाल—आबनूस। रसाल—आम, रस भरे।

२२—पुन्नाग—सुलतानी चंपा, सफ़ेद कमल। वकुल—सुगंधि पुष्प। पाटल—कुंभी फूल, यह लाल और सफ़ेद दो प्रकार का होता है।

२३—लवनित—लावण्ययुत, सुन्दर। महरि—ग्वालिन नामक पत्ती। वटुल—चंचल, सुन्दर। मकरंद—पराग। घन—तीव्र।

२६—तरनि-तनूजा—सूर्य-तनया, यमुना।

२९—भूषननि—अलंकारों।

३३—सरवरि—समानता, सादृश्य।

३४—चकत्ता—मुग़ल सम्राटों के वंश का एक नाम चग़त्ताई भी था। कुमिस—झूठे बहाने। गैर मिसिल—जो बराबर के न थे। दाबदार—प्रतापी, रोबदार। दीह—दीर्घ, बड़ा। दल-राय—सेनापति। गड़दार—भाले वाले जो हाथियों को बिगड़ने पर उसे भाले दिखाकर आगे बढ़ाते हैं। अड़दार—अड़ने वाला, मस्त।

३५—बिगोय—नष्ट कर। क्षौनि—पृथ्वी, भूमि। भारथ—महा-भारत युद्ध।

३७—अमीत—शत्रु। मुधा—व्यर्थ। बंदन—पूजा, प्रतिष्ठा।

३८—जापता—(अ० ज़ाब्तः) नियम, अदब। मिनके—एक दम चुप रहे। तुज़ुक—(तु०) नियम, क़ानून।

३९—सकस—(फा० शख़्स) आदमी, मनुष्य।

४१—प्रेम—प्रिय, प्यारा।

४२—करारी—तेज़, अधिक। सौध—सफेद महल। बगारी—फैलाई।

४३—वर्ण्य—उपमेय।

४४—तूल—तुल्य, समान।

४५—अवर्ण्य—उपमान।

४८—नाग—सर्प, हाथी। अवस—(अ०) व्यर्थ। भोर-ठहरात न—
तुषार कण, ओस, जो सूर्य निकलते ही नष्ट हो जाती है।
वहरात—वलकर नष्ट हो जाता है। टंक—तीन माशे की
एक छोटी तौल।

५०—कैलासधर—महादेव जी।

५१—कहाऽब—कहा+अब।

५२—जोऽब—जो+अब। ध्रुव-निश्चय, अवश्य। ध्रू—ध्रुव नक्षत्र।
सुर-रूख—कल्पवृक्ष। देव-गऊ—कामधेनु। दिगदंति—दिक्
पाल हाथी। कुंडलि—सांप, शेषनाग।

५४—निकट—समूह। दिनकर—चंद्रमा। आकर—घर, खान।
रत्नाकर—समुद्र।

५६—जंभ—महिषासुर का पिता। वारिवाह—बादल। दंड—
पंक्ति, समूह। वितुंड—हाथी।

५६—रेल—रेला, प्रवाह। जोन्ह—चाँदनी। कुहू—अमावस्या।

६१—उद्ध—ऊपर। उम्मि—ऊर्मि, तरंग। बादवान—(फा०) जहाज़
का पाल।

६२—नवरंगसाहि—औरंगज़ेब बादशाह। पदिल—बीजापुर का
आदिल शाही सुलतान। कुतुब्ब—गोलकुंडे का कुतुबशाही
सुलतान।

६३—थरि—स्थली, जगह। भठी—पैठना, घुसना। मदगल—मस्त,
मत्त। ता विगिर—उसके बिना।

६५—विगिर—बग़ैर, बिना। सहससीस—शेषनाग। सहसहग—
इंद्र। सहसकर—सूर्य, सहस्त्ररश्मि।

६६—फैल—बहुत, आधिक्य। पेल—बाढ़, बहुतायत।

६८—दारिद-दौ—गरीबी की आग। करि-वारिद—हाथी दान
रूपी बादल।

६६—घुग्घू—उल्लू। तापी—तपाया।

७१—नरसिंह—नृसिंह जी, नर रूपी सिंह।

७२—करन—कर्ण। करन जीत—कर्ण को जीतने वाला, अर्जुन। कमनैत—धनुर्धर। धरेस—पर्वत। धराधर—पृथ्वी को धारण करने वाला। कहरी—(फ़ा०—क़हरी) आफ़त ढाने वाला। वहरी—समुद्री। अहमद नगर के निजाम शाही सुलतान वहरी कहलाते थे। वहरी निजाम के जितैया—औरंगज़ेब। देव—(फ़ा०) असुर।

७३—हमाल—(अ०—हम्माल) बोझ उठाने वाला। अमाल—(अ०—आमिल) अफसर, हाकिम। दंडक—शासक।

७५—इस पद में शिवाजी को भूषण विष्णु का अवतार बतलाते हुए कहते हैं कि अन्य ब्राह्मणों पर वह सुदामा जी की तरह दया करते हैं, पर हमें देखकर भृगु की सुधि करते हैं अर्थात् क्रुद्ध होते हैं। भृगु ने विष्णु को लात मारा था।

७७—सोपै—शोक करके, दुख से।

७९—गुसुलखाने—(अ० गुस्लख़ानः) स्नानघर। त्योर—त्योरी, क्रुद्ध आँखें। रस खोट—अनरस, वैमनस्य। अगोट—रोक, आड़। रेवा—नर्मदा नदी।

८०—दुराय—छिपाकर। आरोपिए—आरोपण कीजिए, कहिए।

८१—फिरंगै—फिरंगी अर्थात् यूरोपीय शस्त्र। वैरख—झंडा, निशान। धुरवा—बादल, मेघ। दराज़—(फ़ा०) बड़ा, भारी। गज-घटनि-सनाह—हाथियों के झुंड के लोहे के झूल।

८३—भुज-भुजगेस-भुजंगिनी—हाथ रूपी सर्प की नागिन है।

८४—करवाल—तलवार। चंड—शरीर, कबंध। वार—देर। भरतार—भर्ता, पति, स्वामी। भूतनाथ—महादेव जी जो मुंडमाला पहिरते हैं।

८५—गोय—छिपाकर। रोपि—आरोप कर।

८६—काल—मृत्यु, भोजन, खा जाना।

८७—दिगनाग—दिशाओं के रक्षक हाथी। अमल—अधिकार। धरातल—पृथ्वी।

८९—ओत—ओट, रक्षा। जच्छ—यक्ष, कुबेर के सैनिक।

९०—आलमगीर—औरंगज़ेब की एक पदवी। करौलनि—(फा० करावल) पीछे के सैनिक गण।

९१—अेक—अयथार्थ, झूठा। अवदात—अच्छा, विमल।

९२—तिमिर-वंस-हर—अंधकार हरण करने वाला, तैमूरवंश को हराने वाला। अरुन-कर—लाल किरणों वाला, सुर्ख रू। सूरज-कुल-सिरमौर—सूर्यवंश के मुकुट, श्रेष्ठ सूर्य।

९३—दुरगहि—दुर्ग को, हठता से पकड़ कर, दुर्गा जी के।

९४—चकत्ता—औरंगज़ेब।

९५—दैगय—बहाना, छल। सति—सत्य, सच्चा।

९६—धर—धड़, शरीर।

९९—भयारो—भयानक, डरावना। बीछू—एक प्रकार का छूरा। अरिंद—भारी शत्रु। मयंद—शेर।

१००—निसंक—निश्शंक, निडर। राठियर—राष्ट्रवर, राठौर।

१०१—दुरजन दार—दुष्टों की स्त्री, शत्रु स्त्री। नाहन—स्वामियों, पतियों। कलिंद—कलिंद पर्वत जो यमुना का उद्गम है।

१०३—अमाल—शासक। गढ़ाई—गढ़पति, किलेदार। रिसाल—(फा० रिसालः, [illegible]) सेना, खिराज।

१०४—अचल—पर्वत। पाग—पगड़ी, पहाड़ों पर दुर्ग रूपी पाग।

१०५—उड़गन—गिरते हैं। द्यौस—दिन। निकेत—घर। नायरी—जाति विशेष।

११०—वासव—इन्द्र। मसनंद—राजाओं की गद्दी। कनकलता—सोने का कमल दंड।

११२—जुमिला—(फा० जुमलः) और सब। कुही—छोटा पत्ती। ढुँढार—आमेर राज्य। झारखंड—उड़ीसा। बाँधौधनी—रीवाँ के राजा। ताकत—देखते हैं। पनाह—(फा०) शरण। जेतवार—विजय करने वाला। न्यारी—निराली।

२१३—अक्रम—क्रम हीन, बे सिलसिले।

११४—उद्धत—प्रचंड, तीव्र। पारावार—समुद्र। रँगरेज़े—रँगे हुए रेज़े अर्थात् धूल कण। रज-पुंज—धूल की ढेर। परन—शत्रु। अर्थात् सवारों के धावे से तथा शत्रु के भागने से उठे धूल साथ ही उड़ रहे हैं। कसीसैं—(फा० कशिशें) खींचना।

११७—विलायत—मुसलमानों का विलायत फारस, रूम आदि। दलति—कूटती पीटती हैं। चमू—सेना।

११९—मंगन—भीख माँगने वाला। डारि—फेंक कर। दीह—भारी।

१२०—रस—जल। सुफल—इच्छा पूर्ण होती है। फूल—प्रसन्नता।

१२३—वसुधा—भूमि। घमसान—युद्ध। जगती—भूमि। धृति—धैर्य, धीरज। मीरन—मीरों अर्थात् सैयदों। पीर—पीड़ा, पितर।

१२५—चढ़त—सवार होना, चढ़ना, घुसना, मिलना, ऊपर जाना। जोट—झुंड। व्योमयान चढ़ना—विमान पर बैठ कर स्वर्ग जाना। बदरंग—स्याही।

१२८—गुनन—गुणों, रस्सी। पाय—पैर, पाकर। गहि—छूकर, पकड़ कर। रस—प्रसन्नता, स्नेह। रोस—क्रोध। दोहाई—दोहा ही, शरण आना।

१३०—जामिनी—यामिनि, रात्रि। दामिनि—बिजली। पावस—वर्षा ऋतु। सूरति—रूपरंग। नलिनी—कमलिनी। पूषन—सूर्य।

१३३—चंका—अच्छी तरह। दरीन—गुफाएँ। नंका—नांघ गए। साहि—शाह, शिवाजी के पिता शाह जी। धंका—धक्का।

१३४—रैयति—प्रजा। पेस—भेंट। राना—उदयपुर के महाराणा। थाना—हठ। हाड़ा, राठौर, कछवाहा तथा गौड़—राजपूतों की ये कई शाखाएँ हैं। क्रमशः बूँदी, जोधपुर और जयपुर में इन जातियों के राजा थे। गौड़ जाति को औरंगज़ेब के समय में बादशाही राज्य में जागीर मिली थी। चमाऊ—चँवर। गँड़—अभिमान।

१३६—मद-जल-धरन—मस्त होने से जिसे मद चू रहा हो। पुहुमि—पृथ्वी। खग्ग धरन..... समाजै—तलवार धारण करने की शोभा वहीं है जहाँ समाज के रक्षा की रुचि है। गँड़ धरन—अभिमान रखना।

१३८—हथिमाथ—हाथी का माथा। पालै—करै।

१३९—जिस प्रकार निराकार को ज्ञानी और साकार को गुणी लोग मानते हैं उसी प्रकार वीर शिवाजी निर्गुणी और गुणी दोनों ही पर दया करते हैं।

१४०—तुरी—घोड़ा। करी—हाथी। निहाल—प्रसन्न, संतुष्ट।

१४२—[illegible]—[illegible]। [illegible]—होने को।

१४३—मारतंड—सूर्य। [illegible]......जानी में—शिवाजी के यश के साथ उनका प्रताप वैसे ही जान पड़ता है जैसे सूर्य के तेज में चाँदनी झलकती है अर्थात् सूर्य के प्रखर ताप रूपी प्रताप में शीतल चाँदनी रूपी कीर्ति भी मौजूद है। भाग [illegible] भाग्य का उदय या अवनति होना।

१४४—[illegible]—साधारण [illegible]। [illegible]—संकट।

१४५—[illegible] शिवाजी को [illegible] [illegible]। [illegible]—[illegible]। [illegible]—शिवाजी। [illegible]—[illegible]। [illegible]—[illegible], शोभा। [illegible]—एक ही।

गयंद—ऐरावत हाथी । तुरंग—उच्चैःश्रवा घोड़ा । सरवरि—बराबरी ।

१४८—दुर्योधन से दूना कुटिल औरंग छल से संसार को फँसाए हुए है । धर्म—युधिष्ठिर, सत्यता । पैज—पौरुष । लाख—लाक्षा, लक्ष ।

१५०—हुलास—प्रसन्नता, खुशी । आमखास—बादशाही दरबार । हरम—जनाना महल । रुचि—इच्छा, रंग ।

१५२—अगड़—अकड़, अभिमान । गुमान—घमंड ।

१५३—त्रिभूषन—भूषण, शोभा । सभाजित—सभा जीतने वाला ।

१५४—विवेक—सत् असत् का ज्ञान । लाज के जहाज—शीलवान शिवाजी । अपजस काज—कुकीर्ति युत काम । गरीब नेवाज—दीनों को पालने वाले । ओज—उद्दंड प्रताप । घनी—भारी, अधिक ।

१५५—करी—किया । धरबी—धरेगी । कुतुब—कुतुब शाह, ध्रुव नक्षत्र की ओर अर्थात् उत्तर बतलाने वाला यंत्र । धुर—अक्ष, धुरा, प्रधान स्थान । सिंह—सिंहगढ़ । साहिबी—आधिपत्य, बादशाही । दिल्लीसुर—दिल्लीश्वर । सलाह—मेल । मुरकी—बिगड़ी ।

१५६—पील—(फ़ा०) हाथी । यहाँ औरंगज़ेब से तात्पर्य है । थान—जगह । सरजा—सिंह, शिवाजी ।

१५८—द्विजराज—चन्द्रमा, ब्राह्मण । कला—किरण, गुण । शिव—महादेव जी, शिवाजी । दोहे से चन्द्रमा का वर्णन ज्ञात होता है पर वह 'भूषण' कवि पर भी घटता है ।

१५९—बिधनोल—बिदनोर । केली—क्रीड़ास्थल । बिरुद—यश, कीर्ति । गोर—गौड़ । अफग़ानिस्तान का ग़ोर अर्थ लेना अशुद्ध है क्योंकि पूर्व में गौड़ और पश्चिम में गुजरात

यह कवि का तात्पर्य है। गौड़ के हाथी भी प्रसिद्ध हैं, गौर के नहीं। बसति—बस्ती, निवास स्थान। रद—नष्ट।

१६०—सभिप्राय—अभिप्राय युक्त, किसी अर्थ से।

१६१—सनमुखाने—सामना करने पर। अयाने—मूर्ख। दिल आनि—मान लो। बरजा—वर्जित, मना करना। लालन—पुत्र।

१६२—जाहिर-जहान—संसार प्रसिद्ध। पासवान—पार्श्ववर्ती, मुसाहब। मुलुक—दुनिया। राय—राजा, अमीर। अनंग—अंग भंग, कामदेव। शिवजी तथा शिवाजी दोनों पर अर्थ घटता है।

१६३—सूर—वीर, सूर्य। कुल—वंश।

१६४—अंधक—एक असुर जिसे महादेव जी ने मारा था।

१६५—सीता—श्री जानकी जी, (सी+ता) श्री अर्थात् लक्ष्मी+

१७३—हरम—जनानामहल। हबसी—अफ्रीका की एक काली जाति। थयरनि—शत्रु स्त्रियों का। कर चिन्ह न—अर्थात् हाथों में चूड़ी पहिरने का अवसर ही नहीं पड़ा। जमनी—यवन स्त्री। मुसलमानों में सिंदूर देने की प्रथा नहीं है पर कवि ने यह भाव प्रकट किया कि मानों वे आरम्भ ही में विधवा हो गई थीं, इसीलिए उनके मुख चंद पर सिंदूर विन्दु नहीं दिखलाता।

१७५—हुन्नै—हून मुहर, सोने का छोटा सिक्का जो दक्षिण में प्रचलित था। सुबरन—सुन्दर अक्षर, पद, सोना। परखि—समझ कर, गुण दोष की विवेचना कर। लाख—लाक्षा, लाह। रूखन—वृक्ष, रूखे। हाथी—गजजी, मोटा कपड़ा। तुमहियौ—तुम भी।

१७६—बन रत—बन में घूमते रहते हैं। राज—राजश्री, धूल। दरी—पहाड़ की गुफा। वेऊ—मारे गए शत्रु। अरिधर—मुख्य मुख्य शत्रु।

१७७—सुमेध—अच्छी मेधा वाला, बुद्धिमान।

१७८—भिरना—लड़ना, युद्ध करना। दरियाव—नदी। लघुता—लाघव, फुरती। सलाह—मेल।

१८०—मुहीम—चढ़ाई, कठिन कार्य। उज्जुर—उज्र, विरोध। नेक—थोड़ा। उबरते—बच जाते। घने—बहुत।

१८२—सेत—श्वेत, सफेद। अरुन—अरुण, लाल। कुसानु—आग। गरे—गल गए। पानिप—जल, मान। तिन—तृण, तिनका।

१८४—दच्छिन—दक्षिण दिशा, कई स्त्रियों में समान रूप से अनुरक्त। भुव-भामिनी—पृथ्वी रूपिणी स्त्री। अनुकूल—एक पत्नीव्रत। दीन—गरीब, मत।

१८६—गारो—गाल बजाना, गर्व। कुज्वाब—टेढ़ा व्यंगपूर्ण उत्तर।

१८७—अनरीझे—प्रसन्न होने के पहिले ही।

१८८—दाबि करि—दमन करके। करवार—तलवार। भरैया—फैलाने वाला। गँजाय—नाशकर।

१९०—अखिल—सब। खल खलक—दुनिया के दुष्ट जन। करखत हैं—क्रुद्ध होते हैं। अगार—घर। दार गन—स्त्रियाँ। बार परखन—देर करना। छूटे—खुलता है, खुले हुए। कारे घन उमड़ि अंगारे—काले बादल रूपी धुएँ से अंगारे रूपी गोली बरसते हैं।

१९१—लोप—लोक।

१९२—अग्नि से धुआँ निकलता है पर यहाँ धुँए से अग्नि अर्थात् कार्य से हेतु होना दिखलाया गया है।

१९३—पुनीत—शुद्ध, शुभ। जस काज—यश पाने योग्य कार्य। अचरज लपटा है—आश्चर्य होता है। कोकनद—कमल। इसमें हाथ रूपी कमल से संकल्प-जल गिर कर नदी बनाता है अर्थात् कार्य से हेतु होता है।

१९५—उदार—दानशील। खुमान—शिवाजी।

१९७—जानै—जानता था।

१९८—जसन—(फा० जशन) महफिल, दरबार। जुलूस—(अ०) बैठना, सिंहासन पर बैठना। ग़ाजी—(अ० ग़ाज़ी) काफ़िर को मारने वाला, अन्य धर्म वालों को मारने वाला। तुज़क—दरबार के नियम। लरजा—(फा० लर्जीदन-काँपना) काँपा। इलाम—(अ० एलाम या इलहाम) हाल कहना, जतलाना, आज्ञा। तरे—पास।

१९९—अनत—दूसरे स्थान।

२००—ग्रीवा—गर्दन। नै—झुकना। ग़नीम—(अ०) शत्रु।

अतिबल—बलवान । खरी—अच्छी प्रकार । जराई—
जलाना । स्याही—बदनामी ।

२०१—सगौर—अच्छी प्रकार मनन कर ।

२०२—अहं—अहंता, घमंड । अभंग—कभी न टूटने वाला, सदा
विजयी । पुरहूत—इंद्र । दंगली—दंगल मारने वाला, बहुतों
के बीच विजय प्राप्त करने वाला । अगार—घर । राखे जंतु
जंगली—उजाड़ कर जंगल बना दिया ।

२०४—प्रवीनों—प्रवीण लोग । भीनो—भरा हुआ, लीन ।
बकता—औरंगज़ेब । गुसुलखाना—स्नानघर ।

२०६—गाजी—गंजन किया, जीता । डौंड़िये—नगाड़ा । दामन
गीर—दामन पकड़ने वाला, समानता करने वाला ।

२०७—लौं—तक । बिगूँचे—लूटा । कूँचे—नस ।

२०९—पंज-हज़ारी—जिस मंसबदार को पाँच सहस्र सेना रखने
का अधिकार हो । उज़ीर—वजीर, मंत्री । बेहिसाब—
अधिक । इसलाम—मुसलमान होना, खुदा की राह पर
जान देने को उद्यत रहना । भाव यह है कि औरंगज़ेब
मंत्रियों पर यह कह कर बिगड़ रहा था कि शिवाजी को
पाँच हज़ारियों के बीच में खड़े करने का भेद नहीं मालूम
होता । उसके कमर की कटारी भी उसे नहीं दी गई थी
और उसके हाथ में कोई हथियार भी नहीं आगया था, नहीं
तो अवश्य वह अनर्थ करता । खुदा ने स्नानघर को बचा
दिया अर्थात् जहाँ मैं छिपा था वहाँ वह नहीं पहुँच सका ।

२१२—कैयो—कई, कितने । बार—देर ।

२१३—साईं—शाह । पंचतीस—पैंतीस ।

२१५—वितान—चँदवा । छिति—पृथ्वी । प्रमान—प्रमाण, सबूत ।
हौंस—इच्छा । हेम—सोना ।

२१७—दारहि—दारा शिकोह को। दारि—मारकर । संगर—युद्ध ।

२१८—रसरुद्र—युद्ध का बाना, लड़ाई करना । तिरे—पार किया ।

२१९—प्रमेय—बहुत से ।

२२०—बासी—बसने वाला, रहने वाला। त्रिभुवन आधार में भी हाथ में रहने वाला यश आधेय नहीं समाता।

२२१—सहज—स्वभावतः । सलील-सील—चंचल, खिलवाड़ी। पब्बय—पर्वत। पील—हाथी। जस-टंक—यश का थोड़ा ही अंश।

२२३—छिति—पृथ्वी पर। छाजना—शोभा पाना। सजै—करना, सजाना। गजैं—दर्प दिखलाते हैं।

२२५—चंदावत—चंद्रावत, चूँड़ावत, मेवाड़ नरेश राणा लाखा के पुत्र चूँड़ा जी के वंशधर। रजवंत—श्रीमंत। रजतंत—धूलि की शरीर। शरीर रूपी आधार को छोड़कर आधेय का सुरलोक जाना वर्णित है।

२२६—कतलाम—(फा० क़त्ले आम) बहुत मार काट। फर—युद्धस्थल। उद्भट—भारी, वीर।

२२८—सँवारे—बनाया, किया। हरिवारे—विष्णु भगवान के। अवनी—पृथ्वी। यवनी—म्लेच्छ स्त्री । भतार—भर्ता, पति।

२२९—कसत—कस कर बाँधना या थामना। बलंद—ऊँचा। राज-मनि—राजाओं के मणि। फूल—ढाल पर जड़े हुए फूल। केते मान—कुछ नहीं। सोई हाल—वही बर्ताव। अर्थात् म्लेच्छों के काल की रक्षा करता है। ढाल का कार्य तलवार पर घटाया गया है।

२३०—पूरब—पहिले का। उत्तर—बाद का। गुम्फ—माला।

२३१—जहान—संसार।

२३४—रज—राज्यश्री।

२३६—महिमेवाने—(महिमावाने) महिमा युक्त राजाओं ने। लेवा—लेने वाला। पातसाह—बादशाह, सम्राट्। सेवा—शिवाजी।

२३७—जीव-जड़ो—जीवधारी और जंगम, चराचर। पैज—पौरुष, पुरुषार्थ। राज—राजा।

२३९—जेई—जो। तेई—सो। दुवन—शत्रु। बड़े उर के—साहसी, उत्साही। धरैया धीर धुर के—धैर्य तथा दृढ़ता धारण करने वाले। खांड़े—तलवार। डांडे—दंड किया।

२४१—जीति—विजय। छत्रपति—राजाओं को। मांडि—मंडित, शोभित।

२४२—हरकतु है—रोकता है या हकड़ता है। पेसकस—(फा० पेशकश) भेंट, नज़र। याकी—शिवाजी की। खरकना—कांटे सा चुभना।

२४३—अंगर—एक सुगंधि द्रव्य। धूप—जलाने से। वगूरे—वगोला, ववंडर। अमाप—नापने योग्य नहीं, भारी। कलावंत—गायक, गुणी। गाजत—गर्जते हैं। मतंग—हाथी। दाप—दर्पवान, भयंकर।

२४५—धरन—धारण करने वाला, स्वामी। धरमदुआर—धर्म अर्थात् पुण्य का आश्रय, शरण। सारु—तत्व, लोहा। हथियार, बड़ाई। हिंदुवानसिर—हिंदुओं को। हारु—मुंडमाला। हरगन—महादेव जी के गण पिशाचादि।

२४६—दिलदारि—दिलदार, सहृदय।

२४७—दुरदै—हाथी। परकीति—प्रकृति, सहज स्वभाव। गुन-प्रीति—गुण ग्राहकता, प्रेम की रस्सी। कंप—डर। वारि-बुंद—आंसू, जलबिंदु। अदली—न्यायी, न्यायप्रिय।

२५०—दंत गहो तिन—तृण मुख में लेना, शरण जाना। महा सौं—भारी शपथ। जोट—समूह। राह—उपाय।

२५२—वाह्यो—चलाया, मारा। कठैठो—तेज, कठोर। अठपाँव—दुष्टता। बीछू—बिछुआ, एक प्रकार का खंजर। धुक्योई—गिराही था। धराधर—राजा, शिवाजी।

२५४—अजानन—अजान का बहुवचन, मूर्ख, (अजं + आनन) बकरा के समान डाढ़ी युत मुख। फेन—झाग। भै—डर। भै भरकी⋯सेना—आदिलशाही फौज डर से भड़क गई, दुःखी हुई, दहल गई तथा उसका मन टूट गया।

२५६—होत है आदर जामैं—जिनसे प्रतिष्ठा होती है। दान-कृपान—युद्धदान, युद्ध में किसी की ललकार न सहना। बर—बल, शक्ति।

२५७—अमोर—अमोल।

२५८—ह्याँ—यहाँ, दक्षिण में। उहाँ—उत्तर में, वहाँ। मठ—मंदिर आदि। बिसात—चलती। बालम—स्वामी, पति। आलम—संसार में। आलमगीर—संसार विजय करने वाला, औरंगज़ेब की उपाधि।

२५९—गरबीले—घमंडी। अरबीले—उदंड। कँगूरन—बुर्जों। गोलंदाज़—गोली गोला चलाने वाले। अमान—अधिक, बहुत। करषते—(सं० कर्ष) लागडाँट करना, बढ़ावा देना, उत्तेजित होना। अराति—शत्रु। अमरस—अमर्ष, क्रोध।

२६१—सयन—सोते समय। साहन—दक्षिण के सुलतानगण।

२६३—साइति—अच्छा मुहूर्त। सर करना—परास्त करना, दमन करना। छावरे—लड़के। गज-छावरे—हाथी के बच्चे। गाढ़े—दुर्भेद्य। रावरे—आपके।

२६५—चतुरंग—सेना के चारों अंग रथ, हाथी, घोड़ा, पैदल। पारथ—पार्थ, अर्जुन। अज्ञातवास के समय राजा विराट की गाय हरण करने वाले कौरवों को अकेले अर्जुन ने परास्त किया था। छय्याय—छीनिया कर, छीन कर।

२६६—करनी—कार्य, कर्म। फीकी भई—दब गई। नेकुक—थोड़ा।

२६८—घनसारऊ—कपूर भी। घरीक—एक घड़ी, थोड़े समय तक। सारद—शारदा, सरस्वती। सी—ऐसी। पुंडरीक—सफेद कमल। छक्यो—छक गया, हार माना। कैलासईस—महादेव जी, पहाड़ के राजा। रजनीस—चंद्र, रात्रि अर्थात् अंधकार के राजा। अवनीस—राजा। सरीक—(फा०) शरीक, समान, बराबर।

२७०—लोमस—एक ऋषि जिन्होंने बड़ी आयुष्य पाया था। करनवारो—कर्ण वाला, सूर्य का दिया हुआ अभेद्य कवच। इलाज—(अ०) उपाय। बे—(फा०) बिना।

२७२—शिवा जी के पैर रण में उसी तरह नहीं जमते हैं, जिस तरह रावण की सभा में अंगद के नहीं जमे थे, अर्थात् दोनों ही के पैर समान रूप चल हैं और शिवाजी की प्रतिज्ञा भी ध्रुव नक्षत्र, पृथ्वी तथा मेरु पर्वत के समान चल हैं। भाव यह कि शिवाजी रण में दृढ़ और वचन के पक्के हैं।

२७३—छोटापन—छुटाई, लघुता। जाहिको—जिसका। सीरो—ठंढा। किति—कीर्ति। कुलिश—वज्र। भुव—पृथ्वी। काव्य परंपरा में पृथ्वी अचल है। उलटी उपमा देते हुए भी भाव यही है कि शिवाजी मेरु से महान, समुद्र से ऊँचे हृदय वाले, कुबेर से धनी आदि हैं।

२७४—मतिपोस—पुष्ट बुद्धि वाले।

२७५—ऊटै—विचार रखता है। जूटै—तैयार रहता है। टूटै—चढ़ाई करता है। अलोक—आलोक, चाँदनी। कोक—चकवा।

२७६—दहपट्ट—चौपट, नष्ट। गढोई—गढ़पति, दुर्गाध्यक्ष। तोरा-दार—जो तुर्रः नामक पगड़ी के एक आभूषण को पहिर सकते हैं अर्थात् भारी या बंदूक धारी। डाँडे—दंड लिया। जंग दै—युद्ध करके। मिज़ाज के—अभिमानी। डाबरे—बच्चा।

२७९—विरद—यश, बड़ाई। अभंग—अभेद्य, दृढ़। बेइलाज—बेचारे, बेवस। गैर—शत्रुता। नैर—नगर। नाहक—व्यर्थ।

२८१—चहा—इच्छित, वांछित। हा—दुःख। दुनी—संसार।

२८२—रौस—रविश, चाल।

२८३—ज़ाहिर-जहान—संसार-प्रसिद्ध। जलूस—दृश्य। जर-बाफ—ज़रबफ़्त, एक कीमती कपड़ा।

२८५—ऐंड—हठ। पैंड़—रास्ता।

२८८—पंपा—किष्किंधा का एक भारी तालाब। अगन—अगणित, बहुत। परन—परकोटे। चक चाहि कै—आश्चर्य से देख कर। कलिकानि—कष्ट, दुःख। इंदु—चन्द्रमा। उदथ—(सं० उदरथि) सूर्य। उतंग—ऊँचा। चकहां—पहिए।

२९०—आनन—मुख। मानी—सम्मानित हुई। सोहानी—शोभित हुई।

२९१—छहरावत—फेंकते हैं, डालते हैं। छार—धूलि। भूधरऊ—पृथ्वी भी। बलरूरे—बलवान। पूरे—भर दिया।

२९२—जूझ—युद्ध। घाले—नष्ट किया। अरुनै—लाल।

२९३—सैली—शैली, चाल। वारिधि को गति पैली—अपनी मर्यादा छोड़ कर।

२६५—जे...महीके—पृथ्वी को म्लेच्छ असुर से रहित करने वाले। भूधर उद्धरिबो—पर्वत उठाना, गोवर्धन-धारण, दुर्ग बनाकर पहाड़ों का सुरक्षित करना।

२६६—मानस—मन। कुरुख—क्रोध। उछाह—उत्साह, हर्ष। दिपत—दीप्तिमान, सुप्रसिद्ध। परताप—प्रताप, आतंक। फेटो रहो—लगा रहे, चिपका रहे। बरतन......अथाह ते—वीरों के पानी अर्थात् मान के लिए थाह रहित पात्र है अर्थात् बड़े बड़े वीरों की ऐंठ मिटा दी पर अभी भी तृप्त नहीं हुई। राती—रात्रि, लाल।

२६७—नौल—नवल, नई। धौल—सफेद।

२६६—गनीम—(अ० ग़नीम) शत्रु। दौर—दौड़, इच्छा। यवनी—मुसलमान स्त्रियां। परोई—सर्वदा पड़ा ही रहता है। कलित—शोभायमान।

३०१—गज-इंद्र—गजेंद्र, ऐरावत। इंद्र के अनुज—उपेंद्र, विष्णु भगवान। दुगधनदीस—(दुग्धनदीश) क्षीर सागर। सुर-सरिता—देव नदी, गंगा। निज गिरि—अपने कैलाश पर्वत को जो हिम के कारण श्वेत है। भाव यह कि शिवाजी के सुयश के, जो श्वेत माना जाता है, छा जाने से उसमें अन्य श्वेत वस्तु ऐसी मिल गईं कि ढूंढ़ने पर नहीं मिलतीं।

३०३—तूल—तुल्य, समान। वास—सुगंध।

३०५—गमके ते—उत्साहित होने से। झमके ते—टूट पड़ने से। धमके ते—गिरने से। अवसान—होश हवास। धोप—सीधी तलवार।

३०७—पखरैत—लोहे की पाखर अर्थात् जाली ओढ़े हुए घोड़े हाथी। बखतरवारे—कवचधारी। एते मान—ऐसा। सम

वेस—एक प्रकार के वस्त्र धारण किए हुए। हाँके देत—ललकारते हुए। जाने चलते—भागने से जाने गए।

३०९—अंतरजामी—मन की बात जानने वाला अर्थात् औरंगज़ेब के मन में अपनी ओर से शत्रुता रहना समझ कर।

३१०—औरंगज़ेब की आँखों से हर्ष प्रकट हो रहा था कि शत्रु आप से आकर मिला है। शिवाजी ने मूछों पर ताव देकर जतलाया कि हम तुम से अभी दब कर नहीं हैं।

३१२—सिख दैहौ—सम्मति दोगे। सलाह—राय। करोऽब—करो अब।

३१५—जेय—विजेता, जीतने वाला। सिसौदिया—यहाँ शिवा जी से तात्पर्य है। ठए हैं—किया है।

३१६—वदन—मुख। साहि—बादशाही, राज्यभार, क्योंकि औरंगज़ेब औलिया बनने का ढोंग रचता था।

३२०—कप्पर—कपड़ा। मुहीम—(फा० मुहिम) कठिन काम, चढ़ाई। छाग—बकरी। झप्पट—झपेट, धक्का। साहब—बड़ा आदमी। भुवप्पर—पृथ्वी पर। यहाँ राठौर वीर महाराज यशवंत सिंह से तात्पर्य है, जिनसे औरंगज़ेब भी डरता था और शिवाजी भी जिससे मिलने गए थे। ये सात-हजारी मंसवदार थे तथा शायस्ता खाँ के साथ थे। सूवह—सूबा, सूबेदार। कलींद—तरबूज़।

३२२—तचि रहे हौ—दुःखित हो रहे हो। उकचि हौ—उठ भागोगे। रचि—बनाकर। त्रिपुरारि—महादेव जी।

३२३—भेजौ उत औरै—जब तक दूसरे को भेजे। महाकाज—भारी काम।

३२४—करि आप—कर आने पर। हज़रत—औरंगज़ेब। पैहैं—आवेंगे।

३२६—मेरु—मेरु पर्वत सुवर्ण का बना कहा जाता है। कथान—कथा, आख्यान। बलकत—उत्साह उमड़ता है, उत्तेजित होता है। छलकना—भर कर उमड़ना।

३२७—चहना—देखना। जहत हैं—भरते हैं, खींचते हैं।

३२८—पूरे मन के—दृढ़ चित्त के। कुंडन—लोहे की टोपी, शिरस्त्राण। जीरन—ज़िरह, कवच।

३२९—तरुन—वृक्षगण। तरायल—टूट कर। अमोद—आमोद, खेल। सकसे—भर उठा है। अड़दार—मस्त। गड़दार—हाथियों के साथ के भाले वाले। गैर—गैल, मार्ग। तुंडनाय—नरसिंहा।

३३०—भयो—भूतकाल। होनहार—भविष्य। परतच्छ—वर्तमान।

३३१—कराह—आर्तस्वर, कष्ट से आह करना। रुहेला—रुह की रहने वाली एक अफ़ग़ान जाति।

३३२—घटा—समूह। बेला—(सं० वेला) किनारा। उछलत—उमड़ता है। तरनि—सूर्य।

३३४—जमाति—समूह। तेरिये फौज घेरी—तुम्हारी ही सेना द्वारा घेरी हुई। सूरति—स्वरूप, सूरत शहर।

३३६—दीसैं—दिखलाई पड़ते हैं। हीसैं—हिनहिनाते हैं। बारन—बार बार। जसरत—यश गाने में मग्न हैं। सम्याने—शामियाने। लाल—माणिक। नीलमणि—नीलम।

३३७—खता—धोखा। डार्‌यौ बिन मानकै—बेइज़्ज़त कर डाला। विराटपुर—राजा विराट की राजधानी जहाँ पांडवगण ने अज्ञातवास किया था। कीचक—राजा विराट का साला जिसने द्रौपदी पर कुदृष्टि डाली थी।

३४०—जकरे—जकड़े हुए। बेआब—बेपानी, तेजहीन। गड़काब—(फा०—ग़र्क+आब) डूब जाना।

वेस—एक प्रकार के वस्त्र धारण किए हुए। हाँकै देत—ललकारते हुए। जाने चलते—भागने से जाने गए।

३०९—अंतरजामी—मन की बात जानने वाला अर्थात् औरंगज़ेब के मन में अपनी ओर से शत्रुता रहना समझ कर।

३१०—औरंगज़ेब की आँखों से हर्ष प्रकट हो रहा था कि शत्रु आप से आकर मिला है। शिवाजी ने मूछों पर ताव देकर जतलाया कि हम तुम से अभी दब कर नहीं हैं।

३१२—सिख दैहौ—सम्मति दोगे। सलाह—राय। करोऽब—करो अब।

३१५—जेय—विजेता, जीतने वाला। सिसौदिया—यहाँ शिवा जी से तात्पर्य है। ठए हैं—किया है।

३१६—वदन—मुख। साहि—बादशाही, राज्यभार, क्योंकि औरंगज़ेब औलिया बनने का ढोंग रचता था।

३२०—कप्पर—कपड़ा। मुहीम—(फा० मुहिम) कठिन काम, चढ़ाई। छाग—बकरी। झप्पट—झपेट, धक्का। साहब—बड़ा आदमी। भुवप्पर—पृथ्वी पर। यहाँ राठौर वीर महाराज यशवंत सिंह से तात्पर्य है, जिनसे औरंगज़ेब भी डरता था और शिवाजी भी जिससे मिलने गए थे। ये सात-हजारी मंसबदार थे तथा शायस्ता खाँ के साथ थे। सूबहु—सूबा, सूबेदार। कलींद—तरबूज़।

३२२—तचि रहे हौ—दुःखित हो रहे हो। उकचि हौ—उठ भागोगे। रचि—बनाकर। त्रिपुरारि—महादेव जी।

३२३—भेजौ उत औरै—जब तक दूसरे को भेजे। महाकाज—भारी काम।

३२४—करि आप—कर आने पर। हज़रत—औरंगज़ेब। पैहैं—आवेंगे।

३२६—मेरु—मेरु पर्वत सुवर्ण का बना कहा जाता है। कथान—कथा, आख्यान। बलकत—उत्साह उमड़ता है, उत्तेजित होता है। छलकना—भर कर उमड़ना।

३२७—चहना—देखना। जहत हैं—भरते हैं, खींचते हैं।

३२८—पूरे मन के—दृढ़ चित्त के। कुंडन—लोहे की टोपी, शिरस्त्राण। जीरन—ज़िरह, कवच।

३२९—तरुन—वृत्तगण। तरायल—टूट कर। अमोद—आमोद, खेल। सकसै—भर उठा है। अड़दार—मस्त। गड़दार—हाथियों के साथ के भाले वाले। गैर—गैल, मार्ग। तुंडनाय—नरसिंहा।

३३०—भयो—भूतकाल। होनहार—भविष्य। परतच्छ—वर्तमान।

३३१—कराह—आर्तस्वर, कष्ट से आह करना। रुहेला—रुह की रहने वाली एक अफ़ग़ान जाति।

३३२—घटा—समूह। बेला—(सं० वेला) किनारा। उछलत—उमड़ता है। तरनि—सूर्य।

३३४—जमाति—समूह। तेरियै फौज दरेरी—तुम्हारी ही सेना द्वारा घेरी हुई। सूरति—स्वरूप, सूरत शहर।

३३६—दीसैं—दिखलाई पड़ते हैं। हीसैं—हिनहिनाते हैं। बारन—बार बार। जसरत—यश गाने में मग्न हैं। सम्याने—शामियाने। लाल—माणिक। नीलमणि—नीलम।

३३७—खता—धोखा। डार्‌यो बिन मानकै—वेइज्ज़त कर डाला। विराटपुर—राजा विराट की राजधानी जहाँ पांडवगण ने अज्ञातवास किया था। कीचक—राजा विराट का साला जिसने द्रौपदी पर कुदृष्टि डाली थी।

३४०—जकरे—जकड़े हुए। बेआब—बेपानी, तेजहीन। गड़काव—(फा०—ग़र्क+आब) डूब जाना।

३४१—जगदेव—पँवार जाति का एक प्रसिद्ध वीर। जनक—सीता जी के पिता। जजाति—राजा ययाति जिन्होंने अपने पुत्र पुरु का यौवन उधार लिया था। अंबरीष—एक वैष्णव राजा जिन्हें दुर्वासा ऋषि कष्ट देना चाहते थे, पर विष्णु भगवान ने रक्षा की थी। खरिक— खरका, तृण। किंजल्क—फूलों के बीच का अंश। उडुवृंद-तारागण। मकरंद—शहद। कंद—जड़। नाक-गंग—स्वर्ग की गंगा। चंचरीक—भौंरा। भाव यह है कि सब दानियों से बढ़ कर शिवाजी हैं और उनके दान रूपी समुद्र से यश रूपी कमल उत्पन्न हुआ है।

३४४—दारिद्-द्विरद—दरिद्रता रूपी हाथी। अमान—बहुत।

३४५—मदन—कामदेव। हरचो...को—कामदेव से सुंदर।

३४६—सरनागत—शरण आए हुए। अभैदान—निडरता देना, निर्भय करना। गंभीर—गहरा। दरियाव—बड़ी नदी, समुद्र। वहिरात—निकलता है अर्थात् सारे संसार के पानी का स्रोत तुम्हीं में है।

३४८—दारुन—दारुण, भयंकर। दइत—असुर। विकरार—डरावना। विधंसिवे—नष्ट करने। पुरहूत—इंद्र।

३५०—अनचैन—घबड़ाया हुआ, बेचैन। काहि ने—क्यों नहीं। संक—डर।

३५१—अंझा—(सं० अंजन) रात्रि, रात। संझा सी—अंधियारी। रोर—शोर। अंदेस—अंदेशा, डर। वड़वा—ववंडर या वड़वाग्नि। जितवार—जीतने वाला।

३५४—निरंसक—निश्शंक, निडर। डंक—डंका। वंककरि—बजाकर। संकक्करि—डराकर। सोचच्चकित—सोचत+चकित। भरोचच्चलिय—भड़ोच भागो। तट्ठइमन—तत्+ठइ+मन, मन में यही ठान कर। कट्ठट्ठिक—कष्ट से

ठीक कर। रट्ठिल्लिय—आगे टेल कर। सद्दिसि दिसि—सब तरफ से। भद्दद्वि—दबने से भद्द हुई। रद्दिल्लिय—दिल्ली रद्द हुई।

३५५—गतबल—शक्तिहीन। मुद्ध—व्यर्थ। कुद्धद्धरि—क्रोध करके। युद्धद्धरि—युद्ध में धर कर। अद्धद्धरि—आधा धड़। मुंडड्डरि—मुंड के कट कर गिर जाने पर। रुंड—कवंध, धड़। डुंडड्डग भरि—डुंडत (सं० डम्) भागते हैं+डग भरि—कूदते हुये। खेद्दि—भगाकर। दर बर—घर दुआर। छेद्दिय करि—छेद+द्दय+करि, छेद कर। भेदद्धि—दही सा काट डाला। जंगग्गति...वल—युद्ध का हाल सुन कर औरंगजेब का रंग बिगड़ गया और वह निर्वल हो गया।

३५६—नृप+कुंभ—राजाओं का शिर, श्रेष्ठ राजा। भूम्मिम्मधि—पृथ्वी में। धूमम्मडि—धूमधाम से। रिपु जुम्मम्मलिकरि—शत्रुओं के जमा अर्थात् समूह को मल कर। उतंगरब—ऊँचाई से गर्वीले। दक्खक्खलनि—दक्ष दुष्टों को। अलक्खक्खिति—अलक्ष्य हुई क्षिति को, पृथ्वी पटकर न दिखलाने लगी। मोल्लल्लहि—मोल लेकर। जस नोल्लल्लरि—नवल यश लड़ कर।

३५७—दुंद्दबि—युद्ध में दबने से। दंदद्दलनि—सेनाओं को दुख हुआ। बुलंदद्दहसति—भारी डर। लच्छ...क्षिति—लाखों म्लेच्छों को नष्ट कर पृथ्वी की शोभा बढ़ाई। हल्ल...जीति-हल्ला अर्थात् धावा कर, राजा से लड़ कर परनाला जीत लिया।

३५८—नटत—नाचता है। बन—बहुत। रसत—आस्वदन करते हैं। बूत—बूता, शक्ति। सुर-दूत—यमदूत। डुंडि—(सं० डम्—चीत्कार करना।) शोर।

३५९—रुद्ध—लड़ते हुए। वग्ग—वाग। दुक्कि—छिपे हुए। कुक्कि—कूक, शब्द। रंक रकत—खून के प्यासे। हर-संग—महादेव जी के गण, भूत प्रेत।

३६०—वरार—वरियार, बलवान। बेहर—भयानक। बिग—(सं० वृक) भेड़िया। वगरे—फैले। जोम—समूह। लोम—पुच्छ, दुम। गोहन—छिपकिली जाति का गोह जंतु। गोम—भूमि। खेरन—छोटे गाँवों में। खवीस—भूतप्रेत। खोम—(फा० क़ौम) जाति।

३६१—तुरमती—एक शिकारी चिड़िया। सिलहखानः—शस्त्रागार। कूकर—कुत्ता। करीस—गोशाला। हरमखाने—जनाना महल। स्याही—एक जानवर जिसके शरीर पर लंबे लंबे काँटे होते हैं। सुतुरखाना—ऊँट घर। पाढ़े—एक प्रकार का हरिण। पीलखाना—हाथीशाला। करंजखाना—वह गृह जहाँ आतिशबाज़ी बनती है। खेरा—छोटा गाँव। खीस—नष्ट। खड्गी—(सं० खड्गी) गैंडा। खिलवतखाना—एकांत स्थान। खसखाना—ठंढा घर, जहाँ खस की टट्टियाँ लगी रहती हैं।

३६४—पूनावारी गति—पूना में शायस्ता ख़ाँ की जो दुर्दशा हुई उसका हाल। समीरन की गति—हवा की सी चाल। जसवंत—महाराज यशवंतसिंह, यशस्वी। रजपूत—राजपूत, (रज+पूत) पवित्र राज्यश्री। सिव—महादेव जी। बरकति—वृद्धि, बढ़ती। नव खंड—भरतखंड, इलावर्त, किंपुरुष, केतुमाल, कुरु, हिरण्य, हरि, रम्य, भद्रा। दीप—टापू, दीपक। आजु समै के—इस काल के। सिदति है—कष्ट देता है।

३६६—सैन—(शयन) सोना, सेना। संग रमैं—साथ पड़े हैं। समुहाने—सामना करने पर। सूर—वीर, सूर्य।

कलानिधि—चंद्रमा । जगत—(सं० गम्) फैलता है, संसार ।

३६८—ध्रुव—ध्रुव नक्षत्र । गिरजा-पिय—महादेव जी । तरु—कल्पवृक्ष । सिरजा—पैदा किया, उत्पन्न किया । छिप—(सं० क्षा) पृथिवी । भुव भरता—संसार को पालन करता । वर—दान देने का वचन, इच्छानुसार याचना । निव—(सं० नि=सर्वदा+वह=पाना) अवश्य, ध्रुव, सत्य ।

३७०—बाज—शिकारी चिड़िया । आमल—संसार के लोग । जिन—जिन घोड़ों पर । तीर एक मारे—जितनी दूर चलाने पर एक तीर जाता है ।

३७१-६—इन नौ गीतिकाओं में १०५ अलंकारों के नाम हैं ।

३८०—सुचि—(सं० शुचि) ज्येष्ठ तथा आषाढ़ मास दोनों को कहते हैं ।

३८१—एक प्रभुता को धाम—विष्णु भगवान । सजे...काम—ब्रह्मा जी । पंच-आनन—महादेव जी । षडानन—स्वामि-कार्तिक । वार—दिन । याम—पहर । नव अवतार—नया अवतार अर्थात् शिवाजी । थिर राजे—सदा शोभायमान रहैं । कृपन हरि-गदा—भगवान की गदा की कृपा से । त्रिदस—अमर, देवता । दासरथि-राज—राम राज्य ।

शिवाबावनी

१—राज-लाज—राज्यत्व की मर्यादा । मकरंद—माल मकरंद के वंशज ।

२—रंग—उत्साह, उल्लास । विहद—बेहद, असीम । गैवरन—हाथियों । पेल—बाढ़, बढ़िया । खैलभैल—गड़बड़, अशांति ।

ख़लक—संसार। गैल—गली। उसलत—उखड़ जाता है। तरनि—सूर्य। थारा—थाली। पारावार—समुद्र।

३—बाने—झंडे। नग—पहाड़। ग्राम नगर—तात्पर्य वहाँ के रहने वालों से है। उकसाने—स्थान से आगे हट आए। अलि—भौंरा। दरारे—रगड़, चांप। करारा—कड़ा, कठोर।

४—अरु—और। भूधर—पहाड़। जुत्थ—झुण्ड। जमाति—समूह। दिगंवर—महादेव जी। शिवा—पार्वती जी।

५—हुँकारी—अहँकारी, दर्पमान। दामिनी—विजली। दमक—चमक। तीजा असवारी—मुसलमानों में किसी की मृत्यु के तीसरे दिन का कृत्य तीजा कहलाता है और उसमें लोग साथ निकलते हैं तथा गरीबों को रोटियां बाँटते हैं। वीर सिर······असवारी के—शिवाजी के सैनिकों के सिर पर छाप लगी हुई है कि मुसलमानों को तीजा सवारी निकालनी पड़ेगी। हरम—बेगम। बयारी—हवा। मति-भूली—पगली।

भाग। कीबी—करने योग्य। गरीबी—दीनता। नीबी—कमर के पास की धोती की गाँठ।

८—मंदर—मंदिर, घर, मंदर पहाड़। अंदर—भीतर। कंदमूल—मिश्री मिला हुआ फल, मुरब्बा, गाजर आदि जड़। बेर—बार, मर्तबा, एक फल। भूपन—आभूषण, गहना। भूखन—भूख से। बिजन—पंखा, निर्जन। नगन—नगों को, नग्न, नंगी। जड़ातीं—रत्न वेठवाती थीं, जाड़ा खाती थीं।

९—सगबग—सकपकाती हुई। बाती—आत्महत्या।

१०—उघारे पांव—नंगे पैर। सम्हारती न हैं—घबड़ाहट के मारे यह भी ध्यान नहीं रहता कि उनके शरीर के कपड़े खुल गए हैं। हयादारी—लज्जा। नरम परीं—दीन हो जाना, तपाक का ठंढा होना। बनासपाती—पत्ती, वनस्पति।

११—चोवा—सुगंधि। घनसार—कपूर। सुरति—याद। दारा—स्त्री।

१२—सोंधा—सुगंधि, वह द्रव्य जिसे मलकर स्त्रियाँ बाल सुगंधित करती हैं। चारि······लंक—चार संख्या के मध्य भाग सा कमर। पिछौरा—चादर, उसका पिछला हिस्सा जिसकी झालर में मोतियाँ टँकी रहती हैं।

१३—साहि सिरताज—बादशाहों का शिरोमणि। अचल—दृढ़। अथह—थाहरहित, गहरा। उमराव—(फा० उमरा) सर्दारगण। बाँदी—दासी। डोंगा—लंबी नाव। दरियाव—नदी।

१४—कैकय—कई। गुर्जबर्दार—(फा०) गदा की चाल का एक अस्त्र धारण करने वाले। हुस्यार—होशियार, सतर्क। नीति पकरि—कायदे से। नीरे—पास। फड़—क़तार।

१५—जारिन—हज़ारी सर्दारगण । नियरे—पास । गैर मिसिल—नियम विरुद्ध । सियरे—ठंढे । बलकन लाग्यो—क्रोध उमड़ने लगा, क्रोधित होने लगा । जियरे—कलेजा, जीवट । तमक—क्रोध ।

१६—कुंद—छोटा फूल । षट्पद—भौंरा । भ्रमर सभी पुष्पों का रस लेता है, पर कटहरी चंपा के पास नहीं जाता क्योंकि उसकी गंध बड़ी तीव्र होती है । इसके आगे के कवित्त में अलग अलग एक एक राजा को एक एक पुष्प बनाया है । इससे यह ऐतिहासिक ध्वनि भी निकलती है कि औरंगज़ेब राजपूताने आदि में स्वयं लड़ने गया, पर शिवाजी से युद्ध करने को उनके जीवित काल में स्वयं कभी दक्षिण नहीं गया ।

१७—कूरम—कूर्मवंशीय जयपुर नरेश । कमधुज—जोधपुर नरेश । गौर—गौड़ क्षत्रिय । पँवार—प्रमार क्षत्रिय । पांडरि—एक फूल । चंद्रावत—चूँड़ा जी के वंशधर चूँड़ावत राजपूत । बड़गूजर—क्षत्रियों की एक जाति ।

१८—देवल—मंदिर । निसान—झंडा । अली—मुसलमानी मत प्रवर्तक मुहम्मद पैग़ंबर के दामाद । लबकी—लपक, भाग । पीर—मुसलमान साधु । पयगंबर—ख़ुदा का संदेश लाने वाला । दिगंबर—नंगा, एक प्रकार के फकीर, जैसे सरमद नाम का एक फ़क़ीर था जो इसी प्रकार नंगा रहता था और जिसे औरंगज़ेब ने मरवा डाला था । रब—ख़ुदा । मसीद—मसजिद । सुनति—सुन्नत, ख़तना, मुसलमानी धर्म का बपतिस्मा ।

१६—हुती—थी । साखि—साक्षी, गवाही । तब्बर—(पं०—टब्बर) पुत्र । दो में⋯ढब की—क़ुरान तथा वेद की प्रथाओं को एक नहीं किया । अर्थात् अत्याचार कर मुसलमान नहीं बनाया ।

२०—तबकी—पहले की, अपने अपने धर्म। भव—महादेव जी। कलमा—यह इसलाम धर्म का मुख्य मंत्र, 'लाय लाय लिल्लाह मुहम्मद रसूलिल्लाह' है। अर्थ हुआ कि ईश्वर एक है और मुहम्मद उसका दूत है। निवाज—(फ़ा॰ नमाज़) ईश्वर की प्रार्थना।

२१—दावा—बराबरी करना। ज़ेर—दमन, हराना। हद्द—सीमा। दरबारे—मुग़ल दरबार, साम्राज्य। मवास—घर। बनजारा—देश देश घूम कर व्यापार करने वाला। आमिष अहारी—कच्चा मांस खाने वाला, पिशाच। खांड़ा—चौड़ी तलवार। किरचैं—सीधी लम्बी पतली तलवार। मतवार—मस्त, घमंडी।

२२—कमान—तोप। जोट—समूह। किम्मति—कौशल, चतुराई। झोट—युद्ध। ताव देना—मरोड़ कर मोछों को ऊपर उठाना।

२३—ठट्ट—झुंड, कतार। सिंहराज—वीर सैनिक से अर्थ है। विदारे—फाड़ डाला। कुम्भ—गंडस्थल, खोपड़ा। चिकरत—चिंघाड़ते हैं। मीर—सैयदों की पदवी। हद्द—मर्यादा, प्रतिष्ठा। बिहद्द—बेहद, असीम। गुमान—घमंड। झारि डारे हैं—घमंड उतार दिया है, तोड़ डाला है।

२४—असुरन—मुसलमान। सीना—छाती। धरकत—कांपता है, धड़कता है। खग्ग दांत—तलवार का टुकड़ा। खरकत हैं—कसकता है, टीसता है। कंटक कटक—शत्रु की या कांटे सी सेना को। मोरे—छिपाये हुए। सरकत है—खिसक जाते हैं, भागते हैं। फरलेटे—ढेर हुए से। पठनेटे—पठान के बच्चे। फरकत हैं—तड़प रहे हैं।

२५—चंगुल चांपि के चाख्यों—पूरा अधिकार कर लिया। रूप गुमान—घमंड। सूरत—एक नगर। नाख्यो—फेंक

दिया । पंजन—बघनहा, जिसे हाथ की उँगलियों में लगा कर चोट किया जाता है। सोरँग है—उसकी ऐसी धाक है।

२६—सुबा—सूबेदार। निरानंद—आनंद रहित, दुःखी। ब्योंत—, उपाय। सिगरे—सब। हुतो—था। साइत खान—शायस्तः खाँ। थान—पड़ाव, कंप। गीदड़ बाना—कादरोचित कार्य।

२७—जोरि—वेग से। जुमला—इस नाम का कोई देश नहीं ज्ञात हुआ, पर फारसी में इस शब्द के माने सब के होते हैं अर्थात् सभी देश के। तरि—पार कर। कूरताई—मूढ़ता। मंनसब—पद, ओहदा। हज़रत—हुजूर, मान्यवर।

२८—जपत—(अ० ज़ब्त) छीन लेना। तुरकान दलथंभ—म्लेच्छ सेना के स्तंभ, सेनापति। तबल—(अ०) डंका। वेदिल—घबड़ाई हुई, निराश। सोवो सुख—सुख की निद्रा सोना, आराम से सोना। रिसालें—सेनाएँ। करनाल—तोप।

२९—चमू—सेना। सोवत जगावो—आपसे छेड़खानी करना। जंग जुरो—युद्ध करो। वैरिबधू—शत्रु की स्त्री। सलाह—संधि, मेल। दिवाल की राह—बेराह, कुराह, दिवाल में से जाने का प्रयत्न कर सिर फोड़ना।

३०—संधहिं—चढ़ाते हैं, लगाते हैं। मल्लारि—मलाबार की। धम्मिल्ल—बाल। गब्भ—गर्भ। कोट गरब्भ—कोट का गर्भ, दुर्ग में। चिंजी चिंजाउर—स्थानों का नाम। चाल कुंड—चौल बंदर। मधुराधरेश—दक्षिण के मधुरा स्थान का राजा। धकधकत—घबड़ाया है। निविड़—अधिक।

३१—मयदान मारा—युद्धभूमि में मार डाला। फरासीस—फ्रांस देशीय। फिरंगी—अन्य युरोपीय मनुष्य। खाक किया—धूल में मिला दिया। सालति—कष्ट देती है। चहुँवा—चारों ओर।

३२—फिरँगाने—फिरंगियों का देश । हद्दसनि—डर । हबसाने अफ्रीका का एबीसीनिया प्रान्त, हबश देश । बिडरि—छितिर बितिर होकर । दरगाह—दरबार, फकीरों का मठ । खरभरी—घबड़ाहट । परी पुकार—घबड़ाने लगे ।

३३—दांवा—हक, स्वत्व । नाग—सांप, हाथी । जूह—झुंड । पुरहूत—इंद्र । बाज़—शिकारी चिड़िया । तम—अंधेरा ।

३४—दौर—पीछा करना । रारि—लड़ाई । देहरा—चौरा । कतलान—मार काट । हासिल साल को—वार्षिक कर जैसे चौथ, सरदेशमुखी आदि ।

३५—गंजाय—ढेर कर, गिरा कर । गढ़धरन—दुर्ग के रक्षक । धरम दुवार दै—शरण में आने के कारण । गढ़धारी—दुर्गाध्यक्ष । हजारी—साहस्रिक मंसब वाला । रैयत—प्रजा । बजारी—साधारण । महता—गाँव का चौधरी ।

३६—सक्र—इन्द्र । शैल—पर्वत । अर्क—सूर्य । तम फैल—अंधकार के विस्तार । रैल—ढेर, समूह । लंबोदर—गणेश जी । कुंभज—अगस्त्य ऋषि । हर—महादेव जी । अनंग—कामदेव । पारथ—अर्जुन ।

३७—कुंभभव—अगस्त्य । घन—गुंजान । तरुन—घना, घोर । कंटकाल—कांटों का घर । कैटभ—मधुकैटभ राक्षस, जिसे काली जी ने मारा था । ज़ालिम—अत्याचारी, असुर । पन्नग—साँप । कार्तवीज—कार्तवीर्य, सहस्रार्जुन ।

३८—दरबर—वेग से । दुंजन दरब की—दुर्जनों के दर्प की । जाहिर—प्रसिद्ध । जहान—संसार । जंग जालिम—युद्ध में भयंकर । जोरावर—शक्तिमान, बलवान । रब—राब । दहलिजात—बिगड़ जाती है डर जाते हैं । करब की—(अ० अक़रब) बिच्छू की, बिछुआ मुहम्मद साहब के

चाचा अमीर हम्ज़ः नाम के एक मुसलमान वीर की तलवार का यह नाम था। पाठां० गरब की है अर्थात् घमंड की।

३९—खुमान—बादशाह। महिदेव—ब्राह्मण। अरजा—अर्ज़ किया, कहा। रन छोरो—रणभूमि त्याग देते हो, भागते हो। रावरे—आप के। करि परजा—अपनी प्रजा बना कर। तिहारो—तुम्हारी शक्ति। निबेरो—निर्णय, तै पाना। कायर सों कायर—डरपोंक से डरपोंक ही होते हैं।

४०—बाहियत है—चलाता है। बौरी—घबड़ाई हुई। दौरनि—चढ़ाई, आक्रमण। निबाहियतु है—पार पाते हैं। बैरबारे—शत्रु के। नैनबारे........चाहियतु हैं—आँखों से जो आँसू की नदी उमड़ती आ रही है उसे रोकना चाहते हैं अर्थात् रोते हैं।

४१—दहसनि—डरती हैं। चाह—इच्छा, उत्सुकता। बिलखि—रोकर। नारी—नाड़ी। हहरि—डर कर। भीर—सेना। धाक—शब्द। दरकति है—फटती है।

४२—नव कोटि—मारवाड़। धुंधजोत है—तेज मलीन होगया है। रोत—रोते। हे—थे।

४३—दुग्ग—दुर्ग,गढ़। ग़ाज़ी—अन्य धर्म वाले को मारने वाला। जीति—विजय। करनाटी—कर्णाटक के। सिंहल—सीलोन, लंका। पनारे वारे—परनाले वाले। उद्दण्ड—प्रचंड, भारी। तारे फिरने लगे—सौभाग्य के ग्रह आने लगे। सितारे गढ़धर—शिवाजी। दाड़िम—अनार। दरके—फट गए।

४४—ऐन—(अ०) ठीक। परावने—भगदड़, भागना। रुहिलन—रुह के रहने वाले पठान जो रुहेलखंड में अधिक बस गए थे, रुहेले। वाजे वाजे—किसी किसी, कभी कभी। उघरत हैं—खुलते हैं।

४५—खाक साही—(फा० ख़ाक+स्याह) धूल में मिला देना। खिस गई—नष्ट होगई। फिस गई—भूल गई। हिस गई—मिट गई। दमामा—बड़ा नगाड़ा। धौंसा—डंका। भारे—भारी आदमी।

४६—डाढ़ी—जली हुई। रैयति—प्रजा, यहाँ हिंदुओं से तात्पर्य है। बिनु चोटी के सीस—मुसलमानों के सिर।

४७—फुतकार—फुफकार। बिदलिगो—मसल गया। झारन—तीव्र गंध। चिकारि—चिंघाड़ मार कर। कोल—कछुआ। खग्ग—तलवार। भुजंग—सर्प। अखिल—सब।

४८—असमृति—स्मृति, धर्म-शास्त्र। समसेर—(फा० शम्शेर) तलवार। दिवाल—सीमा, मर्यादा। दुनी—संसार।

४९—बाही—उठाई, चलाई। पारावार—आर पार। नांदिया—नंदी बैल। कपाली—महादेव जी।

५०—सो—वह। बेस—(फ़ा० बेश) अधिक। बहलोलिया—बहलोल ख़ाँ की ओर वाले। कौल—प्रतिज्ञा। रसना—जिह्वा। भोलिया—भोला, सीधा। औलिया—फ़क़ीर।

५१—मीड़ि—मल डाला। देवल—मंदिर। तेग़—तलवार।

५२—सपत—सप्त, सात। नगेश—पहाड़। ककुभ+गजेश—दिशाओं के हाथी। कोल—शूकर। दिनेस—सूर्य। घाले—नष्ट किया। जग काजवारे—रोज़गारी, नित्य कमाकर खाने वाले। निहचिंत—चिंता रहित।

छत्रसाल दशक

१—हाड़ा—राजपूतों की एक शाखा। बूंदी-धनी—बूंदी के राजा। मरद—वीर पुरुष। सालत—कष्ट देता है। छतसाल—क्षत अर्थात् घाव जो कष्टकर है।

२—वै—बूंदी नरेश। दिल्ली की ढाल—दिल्ली के रक्षक।

३—भुज-भुजगेस—बाहु रूपी सर्प। वै—बरछी। खेदि—दौड़ा कर। दलन—सेनाएँ। बख़तर—कवच। पाखरिन—हाथियों का लोहे का कवच। मीन—मछली। परवाह—धारा। रैया—पुत्र। पर-छीने—जिनके पर कट गए हैं। पर—शत्रु। छीने—क्षीण हो कर, चोट खाने पर। बर—बल, शक्ति।

४—जोम—उत्साह से। जमकैं—चमक रही हैं। सेल—बरछा। दामिनी—बिजली। आन—दोहाई। घन—बड़ा हथौड़ा। बेहर—भयानक, डरावना। बगारन—घाटियाँ। अगारन—घरों। पगारन—चहार दीवारी।

५—अस्त्र—हथियार। खीझो—क्रुद्ध हुआ। गबड़ी—कबड्डी का खेल। चपेटें—चोट चपेट। हुलसीं—प्रसन्न हुईं। ईस की जमाति—भूत प्रेत गण। समद—समुद्र, अब्दुस्समद खाँ। वाड़व—बड़वानल।

६—हैवर—हय+वर, अच्छा घोड़ा। हरट्ट—मोटा ताजा। गैबर—गज+वर, भारी हाथी। रंजक—बारूद। तराप—तड़प, छूटने की आवाज़।

७—चाक्चक—सतर्क, सुरक्षित। चमू—सेना। अचाकचक—एकाएक, अचानक। चाक—चक्र। करेरी—सामना किया, बर्दाश्त किया। थप्पन—स्थापित करना, रक्षा करना। उथप्पन—उखाड़ डालना। दाम देवा—करद, धन देकर।

८—कोवे को समान—उपमा देने को। पंचम—बुँदेलों के पूर्व पुरुष का नाम पंचम था, इसीसे बुँदेले राजे प्रायः यह नाम पदवी रूप में धारण करते हैं। लौं—से, समान।

९—सोग—चौड़े फल का भाला। पेलि—झोंक कर। मिया—मुसलमान। उदंगल—प्रचंड। मत्ता—मत्त, मस्त। कत्ता—तलवार।

१०—दहवट्टि—नष्ट कर। मेंडे—सीमा पर। बरगी—(फ़ा० बारगीर) घुड़सवार। बहरि—फैल कर। बिहाल—बेहाल, घबड़ाया हुआ। रेवा—नर्मदा नदी।

११—औड़ी—गंभीर, भारी। मेड बेड़ी—हद बांधा, रोका। चक्कवै—चक्रवर्ती। सौंहैं—सामने। भक—एकाएक। रुंड—कबंध। रुंडमुंड—लुंडमुंड, गिरे पड़े। भुसुंड—एक अस्त्र। तुंड—तलवार का अग्र भाग। कीन्हों जस-पाठ—प्रशंसा करने लगे। काठ लौं—निश्चल, निस्तब्ध।

१२—आफताप—(आफ़ताब) सूर्य। तुरी—घोड़ा।

फुटकर

१—जुरे—सामना किया, युद्ध किया। रहँट—जल निकालने का एक यंत्र जिसमें लोहे की जंजीर में घड़े लगे रहते हैं, ये घड़े कुएँ में नीचे जाकर जल ले आते हैं और ऊपर आकर पानी गिरा देते हैं। घड़ी—घटी, छोटा घड़ा। पानिप—जल, प्रतिष्ठा।

२—बरदार—ढोने वाला। निखिल—सब। नकीब—प्रशंसा करते हुए आगे आगे चलने वाला भाट। जोम—ताव, उत्साह। पजारयो—जला दिया।

३—तरनि—सूर्य। बिड़ाल—बिल्ली। कैटभ—राक्षस विशेष। पन्नग—नाग।

४—किरवान—कृपाण, तलवार।

५—बिलंदे—बड़े आदमी। वारिधि-बिहरनौ—समुद्र-यात्रा।

६—दरबारे—राज्य। दुघन—शत्रु। चौंसठ—चौंसठ योगिनी। पसुपाल—पशुपति महादेव जी।

७—खूँट—ओर।

८—बामी—बिल। जास्ती—अधिक, बढ़ कर। तरासती—(फ़ा० तराशीदन=काटना) काटती है।

९—पंजर—हड्डिया। अंबिका—काली जी। अचकिगे—खा गई। कचकिगे—कुचल उठे।

११—सुरसाल—असुर, म्लेच्छ। गंजन—नाशकारक, नष्ट करने वाला। गनीम—(अ०) शत्रु। पार—एक ग्राम। लान—लाल।

१२—कत्ता—तलवार। चकत्ता—यहाँ सुल्तान से तात्पर्य है, म्लेच्छ-राज।

१४—बंद कीने—अधिकार कर लिया। उपखान—कहानी। ज़ेर—हार, पराजय।

१५—दलमनी—दलमणि, सेनापति। विश्वधनी—विष्णु भगवान। बल्लम—भाला। अनी—नोक।

१६—इसमें अकबर के यौवनावस्था के समय के नौ रोज़ की मीना बाज़ार पर आक्षेप किया गया है। यह बाज़ार दुर्ग ही में लगता था और राजाओं तथा मंसबदारों की बहू बेटियाँ दूकानें खोल कर बैठती थीं। बादशाह की बेगमें खरीदने आती थीं। इन्हीं में कभी कभी बादशाह भी स्त्री-वेष धारण कर घूमते थे। दावादार—जिनका दावा है, स्वत्वाधिकारी। घात कीनी—मार डाला। नदानी—मूर्खता। बंस छत्तिस—राजपूतों के छत्तीस वंश प्रसिद्ध हैं।

१७—देह—(फ़ा० देह-दस) दस, बारबार, शरीर। धराई—पृथ्वी पर। गगन के गौन—मृत्यु-समय। नग—मणि, माणिक। नगन—नंगा।

१८—हुन्नर—कौशल, गुण। महादरी—(महा+आदरणीय) प्रतिष्ठा योग्य। अमान—बहुत। कादरी—डरपोकपन।

१९—वज्रधर—इंद्र।

२०—सहज—साधारण। धाराधर—बादल । दिग मैंगल—
दिशाओं के हाथी, दिगपाल।

२१—अदल—(अ०) न्याय।

२२—बिसोध—विशुद्ध, पवित्र।

२३—मिनारे—खेल की सीमा, गोल। चहुगान—चौगान, पोलो।
वटा—गेंद।

२४—धरापति—राजा। छतधारी—छत्रधारी। उजारी—प्रकाश
किया। ताज़िए—तुर्की ताज़ी, मुसलमान।

२६—ऐंड़—हठ, मान। काहिनै—किसको।

२७—जंगी—युद्धप्रिय। खलक—संसार।

२८—करवानक—गौरैया पक्षी। कुलंग—कौआ। दुघन—शत्रु।
वाजी—घोड़े। चंग—चंगुल।

२९—साहिवी—प्रभुत्व, धाक। तारे—ताला। आमिल—हाकिम।

३०—सार—तत्व, धैर्य। खादर—कछार। छार—भस्म, राख।

३२—वाजी वम्ब—बम बम महादेव पुकारने लगे। कलाँ—भारी।
राजी—समूह, सेना। मंडी—भर गई। तेजताई—तेज,
प्रताप। दंडी—दंड लिया था। औनि—भूमि। मंदीभूत—
तेज धीमा हो गया। रंकीभूत—दरिद्र हो गए। करंकीभूत—
कलंकी अर्थात् स्याह हो गए। सुलंकी—क्षत्रियों का एक
वंश, भूषण के एक आश्रयदाता 'हृदयराम सुत रुद्र'
सोलंकी थे।

३३—अछक—छकी हुई,तृप्त। धक—इच्छा। नांगी—नग्न,कुटिल।
धासौ—मदिरा। सुकल—सफेद। गजक—चाट, मदिरा
पान के वाद का निमकीन खाद्य।

३४—दारियतु है—डाँट कर दमन कर देते हैं। धाराधर—बादल।
कहर—आफत, प्रलय सा कष्ट। तगा—तागा, डोरा।

३५—मेचक—स्याह, काला। बयारी बाजि—हवा रूपी घोड़ा। कदन—तोड़ने। बलाका—बगुला, बक। धुरवान—हवा।

३६—उलदत—निकालते रहते हैं। भीम—भयंकर, भारी। कद—डीलडौल। आह के—वश के। गंड—मस्तक। बिलंद—ऊँचे। झंपति—लटक रही है। मजेजदार—शानदार। कुंजर—हाथी।

३७—क़िबला:—बड़ा, पूज्य। मेह—दया, मुहब्बत। दारा आदि चारों सहोदर भाई थे, जिनकी माता अर्जुमंदबानू थी। यही मुमताज़महल कहलाती थी जिसकी क़ब्र पर आगरे का ताजमहल बना हुआ है। बादि—व्यर्थ।

३८—तसबीह—माला। बंदगी—ईश्वर-प्रार्थना। क्रत्र...बय के—ऐसा क्त्र छीन लिया मानो बूढ़ा बाप मर गया हो। पील पै तोरायो—हाथी से मरवा डाला। क़त्लंदी—क़त्ल करने वाला।

३९—जसत—यश फैलता है। लंक लौ—लंका तक। छारे—राख से. जलते हुए। तरारे—सिर घूमना।

४०—भगवंत के तनै—राजा भगवंत दास के पुत्र मानसिंह। जग जाने—संसारप्रसिद्ध। कूरम—कछवाहा। माने—मानने अर्थात् प्रतिष्ठा करने।

४१—डंबर—बादल। उडमंडल—तारामंडल, आकाश।

४२—भासमान,—प्रकाशमान, तेजयुक्त। भोगीराज—सर्प। भावता—प्रिय।

४३—बानीजू को बाहन—हंस। मेंडू—स्थान विशेष।

४४—कोकनद—कमल। अनंगज्योति सोकी सी—कामदेव अर्थात् रति-केलि के चिन्हों से सिक्त, तात्पर्य यह है कि रति के चिन्ह उसके शरीर पर पूरी तरह लक्षित हो रहे थे। सकल—सब श्रृंगार। कांति रवि रोकी सी—अरुण सूर्य

की लाल किरणें। सुबह ही के सूर्य लाल होते हैं और ज्यों ज्यों ऊपर उठते हैं, श्वेत होते जाते हैं इसलिए कवि कहता है कि यह लाल विंदु ऐसा ज्ञात होता है कि प्रातः सूर्य रोक दिए गए हैं और स्थिर होकर लाल ही दिखला रहे हैं।

४५—जीवनद—(जीवन+द) जीवन और जल देने वाला।

४६—जम की दिशा—दक्षिण। द्विजेस—चंद्रमा।

४७—झौर—गौध, गुच्छा। विषम—प्रेम ताप।

४८—मैन—कामदेव। निसाकर—चंद्रमा, निसा अर्थात् सांत्वना करने वाला।

४९—काग—कौआ के उड़ने या न उड़ने से प्रिय के आगमन का शकुन प्राप्त करना।

५१—उरोज—स्तन। घाव—नखक्षत से तात्पर्य है। वारन—वाल, हाथी।

५२—हूजे—होइए। अनखाती—क्रुद्ध, अप्रसन्न। भिदी—छेदी, विद्ध।

५३—आ घरी—आज तक। सगरो—सब। चहूँथ—मराठों का चौथ कर। सूरत—शक्ल, स्वरूप, नगर विशेष।

५४—अलका—कुबेर की राजधानी।

५५—पक्खर—पखरैत, कवचधारी। मूल—नेह, नींव। आलमपनाह—संसार के रक्षक। आलम—लोक। फना—नष्ट।

५६—हरौल—(फा० हरावल) आगे की सेना, वैनगार्ड। धुर—ध्रुव, यहाँ गोलकुंडा के बादशाह से तात्पर्य है।

५७—चौकी—थाना। मीडैं—मलती रही। परेवा—पक्षी विशेष।

५८—नजर—दया दृष्टि। मत्ता—मतवाली। नालबंदी—कर, चौथ। सलाह—संधि। रामद्वार—धर्मार्थ। आमिल—शासक।

५९—कुलिश—वज्र।

६०—अमा—अमावस्या। अधमा—दुष्टा, नीच।

परिशिष्ट (ख)

पदों की अनुक्रमणिका

अ

पद-संख्या

आ

इ

उ

पद-संख्या

ह

परिशिष्ट (ग)

व्याख्यायुक्त अलंकारों का अनुक्रम

अक्रमातिशयोक्ति Hyperbole with cause and effect occurring simultaneously—जहाँ लोकसीमा का उल्लंघन करके वर्णन किया जाय वहाँ अतिशयोक्ति है। इसी का यह एक भेद है। जहाँ कारण और कार्य एक साथ होते हुए वर्णित हों वहीं अक्रम अर्थात् क्रमरहित अतिशयोक्ति हुई। जैसे बाण छूटने के साथ साथ तुर्कों के प्राण छूटे अर्थात् मृत्यु-कार्य का कारण बाण का लगना है, पर उसके पहिले ही कारण के आरंभ के साथ कार्य हो गया कहा गया है। ११३—४

अतद्गुण Non-borrower साथ रहते हुए भी जब एक का कुछ असर दूसरे पर होता न दिखलाया जाय, जैसे श्वेत कीर्ति ने स्त्रियों की आँखों का अंजन हरण किया, पर उसकी स्याही का उस पर कुछ भी असर न हुआ। २६४—७

अतिशयोक्ति Hyperbole— १०६—२०

अत्यंतातिशयोक्ति Hyperbole with sequence-occurring before cause—हेतु के पहिले ही कार्य का हो जाना। जैसे, दारिद्र्य को नष्ट कर शिवाजी के पास कोई याचना करने आता है, अर्थात् धन की

---

* ये संख्याएँ शि-भूषण के पदों की संख्याएँ हैं।

याचना करने के पहिले ही कार्य हो जाता है और माँगते समय वह दरिद्र नहीं रह जाता। ११८—२०

अत्युक्ति Exaggeration—जहाँ कोई वर्णन बहुत बढ़ा कर किया जाय, अर्थात् अद्भुत और अतथ्यपूर्ण हो जाय। जैसे, हाथियों के मद में पहाड़ डूब जाते हैं। ३३९—४२

अधिक Exceeding—जहाँ आधेय का भारी आधार से भी बढ़ कर होना कहा जाय। जैसे शिवाजी के हाथ में रहने वाला यश तीनों लोक में भी नहीं समाता। २१९—२१

अनन्वय Comparison Absolute—जहाँ उपमेय ही उपमान हो अर्थात् एक ही वस्तु दोनों रूप में कही जाय। जैसे, हे शिवाजी, आप के समान आप ही हैं। यहाँ शिवाजी ही उपमान और उपमेय दोनों हैं। ३९—४०

अनुगुण Enhancer—जहाँ साथ होने से गुण का आधिक्य ही दिखलाया जाय। जैसे, काजल-युक्त आँसू के मिलने से यमुना का सहज श्याम रंग और भी श्याम होता है। २९८—९

अनुज्ञा Acceptance—जहाँ दोष में भी अच्छा गुण देख कर उसकी चाह की जाय। जैसे, महाराज शिवराज का हमें भिखारी कीजिए। यहाँ याचक होना यद्यपि दोष है, पर उस याचना से बहुत अधिक धन मिलने के कारण भूषण जी इस दोष की भी वांछा कर रहे हैं। २८२—३

अनुमान Inference—जहाँ कार्य देख कर कारण का या कारण से कार्य का अटकल लगाया जाय। जैसे, पति की घबड़ाहट देख कर उसके दक्षिण के सूबेदार नियुक्त होने का अनुमान करना। ३४९—५१

अन्योन्य Reciprocal—जहाँ दो वस्तुओं के गुण का एक दूसरे के द्वारा उत्पन्न होना दिखलाया जाय। जैसे, दान से हाथ की शोभा और हाथ से दान की शोभा है। २२२—३

अपन्हुति Concealment—जहाँ उपमेय का निषेध करके उपमान का स्थापन किया जाय। इसके शुद्ध, हेतु, पर्यस्त, भ्रान्त, कैतव और छेक छः भेद हैं। ८०—६७

अप्रस्तुतप्रशंसा Indirect Description—जहाँ अप्रस्तुत वस्तु का वर्णन करते हुए प्रस्तुत का बोध कराया जाय। इसके पाँच भेद सारूप्य-निबंधना, सामान्य-निबंधना, विशेष-निबंधना, हेतु-निबंधना तथा कार्य-निबंधना हैं। भूषण ने केवल अंतिम ही के उदाहरण दिए हैं। इसमें इष्ट कारण का वर्णन कार्य के कथन द्वारा किया जाता है। शिवाजी के वैर करने का क्या फल हुआ यह कहकर उनके प्रभुत्व की वर्णना की गई है। तीसरे में शिवाजी की गुणग्राहकता का बोध कराया गया है। १६८—७१

अर्थान्तरन्यास Transition—जहाँ एक कथन का दूसरे कथन द्वारा समर्थन किया जाय। इसमें सामान्य बात का विशेष बात से और विशेष का सामान्य से, साधर्म्य या वैधर्म्य द्वारा, समर्थित होने से चार भेद होते हैं। २६५ में सामान्य बात 'वीरों के हिम्मति हथ्यार होत आई है' का समर्थन श्रीरामचन्द्र, अर्जुन तथा शिवाजी के कृत्यों से किया गया है। दूसरे में विशेष बातों का वर्णन कर उसका समर्थन इस साधारण बात से किया गया है कि

'यह तो शिवाजी की सदा ही की रीति है।' ये दोनों उदाहरण साधर्म्य द्वारा समर्थित हुए हैं। २६४—६

अवज्ञा Indifference—जहाँ किसी के साथ होने से उसके गुण या दोष का असर न हो। जैसे, दूसरों के दरबार में जाने या न जाने से कोई फल नहीं है। २८०—१

असंगति Disconnection—असंगति तीन प्रकार की होती है। प्रथम—जहाँ कारण एक स्थान पर और कार्य दूसरे स्थान पर होता दिखलाया जाय। जैसे, शिवाजी के घोड़े पर सवार होने से शत्रु की गरदन झुक जाती है। यहाँ बोझ घोड़े पर पड़ा पर गर्दन शत्रु की दबी। द्वितीय—जहाँ कार्य का होना उचित है वहाँ न हो कर दूसरे स्थान पर हो। जैसे, शिवाजी की तलवार से शत्रु-स्त्रियाँ डर गईं। शत्रु पुरुषों का डरना उचित है, पर स्त्रियों का डरना दिखलाया गया है। तृतीय—जहाँ कुछ कार्य करते हुए कोई दूसरा कार्य हो जाय। जैसे, शिवाजी औरंगज़ेब को सुख देने दिल्ली गए, पर उसे दुख ही दिया। १६६—२०४

असंभव Unlikely—यदि कोई अनहोनी बात हुई सी मालूम हो तो वह असंभव अलंकार माना जाता है। जैसे, शिवाजी के एक ही रात्रि में सब दुर्ग ले लेने का समाचार सुनकर औरंगज़ेब पश्चात्ताप कर रहा है। १६६—८

आक्षेप Hint—भूषण ने आक्षेप की दो परिभाषाएँ की हैं। पहिला यह है कि जहाँ कुछ कह कर उसका वाद को निषेध किया जाय। जैसे, लड़ना हो तो

लड़ो, पर लड़ने पर बचोगे नहीं। दूसरा लक्षण यों दिया है कि जहाँ निषेध का आभास मात्र हो, प्रत्यक्ष में न कहा गया हो। जैसे, शिवाजी को दमन करने पर नियुक्त हो कर मुग़ल-सेनानी स्पष्टतः जाने का निषेध न करता हुआ केवल उसका आभास मात्र देता है कि यदि कुछ दिन बाद शिवाजी पर भेजे जायँ तो बीच में बहुत कुछ बादशाह का कार्य करेंगे। १७७—८०

उत्प्रेक्षा Poetical fancy—जहाँ विभिन्नता का ज्ञान दिखलाते हुए एक बात की दूसरी में संभावना की जाय। भूषण ने उत्प्रेक्षा के चार भेदों के केवल उदाहरण दिए हैं—वस्तु, हेतु, फल तथा गम्य। इसके अतिरिक्त सापह्नवोत्प्रेक्षा भी होती है। जिसमें एक वस्तु दूसरी वस्तु के समान दिखलाई जाय वह वस्तूत्प्रेक्षा है। इसके उक्तविषया तथा अनुक्तविषया दो भेद हैं। भूषण जी ने केवल प्रथम ही का उदाहरण दिया है। जैसे, शिवाजी ने शत्रु को ऐसा पछाड़ा जैसे सिंह गजराज को। कारण न होते हुए भी उसे उस कार्य का हेतु मानना हेतूत्प्रेक्षा है। इसके तथा फलोत्प्रेक्षा के सिद्ध-विषया तथा असिद्ध-विषया दो दो भेद हैं। जैसे, शिवाजी दिल्ली से आई सेना को लूट लेते हैं मानों औरंगज़ेब कर स्वरूप घोड़े, हाथी, सेनापतियों के साथ कर भेजता रहता है। जिस कारण का जो वास्तविक फल नहीं है उसे उसका फल माना जाय तो फलोत्प्रेक्षा हुई। जैसे, शत्रु आठों पहर शिवाजी का नाम डर से लेते रहते हैं मानों मुक्ति के लिए

म्लेच्छ भी महादेवजी का नाम-जप कर रहे हैं। शिवाजी का नाम लेना सिद्ध विषय है, पर फल मुक्ति की याचना ठीक नहीं है। उत्प्रेक्षा-वाचक मानों आदि शब्द जहाँ न हों वह गम्योत्प्रेक्षा है। जैसे, छोटे छोटे किलेदार नदी हैं, शिवाजी भारी दुर्गाध्यक्ष समुद्र हैं, जिसमें सब आकर मिल जाते हैं। ६८—१०८

उदात्त Exalted—जहाँ संभाव्य ऐश्वर्य का बढ़ा चढ़ा वर्णन हो या किसी के चरित्र का विशेष महत्व दिखलाया जाय। जैसे, शिवाजी के कवि राजाओं की तरह रहते हैं अथवा पूना में मत टिकना, वहीं शायस्ता खाँ की शिवाजी ने दुर्दशा की थी। ३३५—८

उन्मीलित Discovered—सादृश्य होते हुए किसी कारण के उल्लेख से भिन्नता प्रकट हो। जैसे, शिवाजी के यश में हंस और चमेली बिलकुल मिल से गए हैं, पर बोली तथा गंध ही से उनका पता चलता है। ३०२—३

उपमा Simile—दो वस्तुओं में जहाँ समानता दिखलाई जाय वहाँ उपमालंकार होता है। इसके चार अंग होते हैं। ३२—५

(१) उपमेय Subject compared—वर्ण्य, उपमा योग्य, जिसकी उपमा दी जाय। ३३

(२) उपमान Object with which comparison is made—जिस वस्तु से उपमा दी जाय। जैसे, कमल से नेत्र में कमल उपमान और नेत्र उपमेय है। ३३

उसे कल्पद्रुम, सौंदर्य के कारण दूसरा उसे कामदेव और तीसरा उसे युद्ध में नृसिंह बतलाता है। ७१

(२) जब एक ही व्यक्ति को अनेक जन अनेक रूप में देखें। जैसे, शिवाजी को कवि कर्ण, धनुर्धर अर्जुन तथा पदिल कहरी कहता है। ७२—३

एकावली Necklace—जहां पूर्वकथित के प्रति उत्तरोत्तर वस्तुओं का विशेषण भाव से वर्णन इस प्रकार किया जाय कि अर्थ की पंक्ति सी हो जाय। इस प्रकार के वर्णन के स्थापन तथा निषेध से इस अलंकार के दो भेद होते हैं। भूषण ने केवल प्रथम भेद दिया है। उदा०, तीनों लोक में नरलोक, नरलोक में तीर्थ, तीर्थों की समाज में महिमा, महिमा में राज्यश्री और राज्यश्री शिवाजी में शोभित है। २३३—४

कारणमाला Garland of Causes—जहां किसी कारण से उत्पन्न कार्य अन्य कार्य का कारण बतलाया जाय और इसी प्रकार क्रमशः कई कारण कार्य कथित हों। इसे गुम्फ भी कहते हैं। जैसे, शंकर की कृपा से सुबुद्धि, सुबुद्धि से दान, दान से पुण्य और पुण्य से शिवाजी का उत्कर्ष हुआ। २३०—२

काव्यार्थापत्ति Necessary conclusion—'जब वैसा हो गया तब ऐसा क्यों न होगा' कह कर जहां वर्णन हो। जैसे, जब शिवाजी ने दिल्ली के सम्राट् को परास्त कर दिया तब तुम्हारी उसके आगे क्या चलेगी? २६०—१

काव्यलिंग Poetic reason—जहां युक्ति के साथ किसी बात का समर्थन किया जाय। जैसे, उत्तर, पूर्व तथा

पश्चिम के राज्यों को विजय कीजिए, पर दक्षिण के नाथ शिवाजी से युद्ध कर बावरे न कहलाइए। २६२—३

कैतवापन्हुति Concealment dependant on deception—जहाँ एक के बहाने दूसरे का कार्य दिखलाया जाय। मुग़ल लोग वास्तव में शिवाजी से डर कर युद्ध में जाना नहीं चाहते थे इसलिए मक्का जाने के बहाने नर्मदा नदी उतरते थे। ६५—६६

गम्योत्प्रेक्षा Incomplete Poetical Fancy—जहाँ उत्प्रेक्षा-वाचक मानो आदि शब्द न दिए गए हों। जैसे, गढ़पति शिवाजी समुद्र हैं और छोटे छोटे गढ़पाल नदी नाले हैं, जो उसमें आ मिलते हैं। १०६—८

चंचलातिशयोक्ति Hyperbole depending on effect following the cause immediately—कारण की बात निकालते ही कार्य हो जाय। जैसे, शिवाजी का आना सुनते ही शत्रुनारियों के अश्रुप्रवाह से गाँव ही डूब जाता है। ११५—७

चित्र Manifold—जिसके लिखने या सुनने में किसी प्रकार की विचित्रता हो। शिवराज-भूषण में जो उदाहरण दिया गया है उसमें यही विचित्रता है कि उसे जहाँ से पढ़िए एक सवैया पूरी बनती जाएगी। ३६७—८

छेकानुप्रास Single Alliteration—स्वर के साथ अक्षरों की दो बार आवृत्ति हो। जैसे, दिल्लिय दलन, सूरति सहर। ३५३—४

छेकापन्हुति Concealment dependant on artfulness—जहाँ सत्य बात छिपाकर दूसरे बात की शंका की जाय। जैसे, तिमिर (अंधकार और

तैमूर लंग) वंश को नष्ट करने वाला आया है। एक के शिवाजी कहने पर दूसरी उसे चुप कराती हुई कहती है कि नहीं सूर्य। ९२—४

छेकोक्ति Ambiguous Speech—जहाँ प्रचलित उक्ति से समर्थन करते हुए कोई कहावत कही जाय। जैसे, शिवाजी के पसंद ही की कविता उसी प्रकार रस-मय है जिस प्रकार ईश्वर पर चढ़ाए गए फूल ही उत्तम हैं। ३१७—२०

तद्गुण Borrower—जहाँ अपना गुण त्याग कर दूसरे का ग्रहण किया जाय। जैसे, सूर्य-रथ के पहिए मणियों की ज्योति से अनेक रंग बदलते रहते हैं। २८७—८

तुल्ययोगिता Equal Pairing—जहाँ उपमेयों या उप-मानों का एक ही धर्म कहा जाय। यह तीन प्रकार का होता है।

(१) जब एक ही धर्म कई वर्ण्यों में कहा जाय। जैसे, शिवाजी का प्रताप, मरहट्ठों के चित्त में चाव तथा तुर्क लोग आकाश-विमान में चढ़ते हैं।

(२) जब उपमानों के गुण एक ही में कहे जायँ। जैसे, शिवाजी की भारी भुजाओं ने पृथ्वी का भार धारण कर लिया जिससे शेषनाग तथा दिग्पाल-गण निश्चित होगए।

(३) जहाँ हित और अहित की बात एक ही धर्म कहे जाने पर निकले। जैसे, शिवाजी अपने गुणों से मित्रों तथा शत्रुओं को बाँध रखते हैं। १२४—८

दीपक Illuminator—जहाँ उपमेय तथा उपमान का एक ही धर्म कहा जाय। जैसे, रात्रि की चन्द्रमा से और हिन्दुओं की शिवाजी से शोभा है। १२९—३०

दीपकावृत्ति Illuminator with repetition—जहाँ एक अर्थ वाले पद की कई बार आवृत्ति हो। जैसे, शिवाजी के दानजल से नदियाँ बढ़ती हैं और गज के दान (मद) से नद उमड़ते हैं। अर्थ की आवृत्ति से तथा पद और अर्थ की आवृत्ति से इसके दो और भेद होते हैं।

दृष्टांत Exemplification—जहाँ उपमेय तथा उपमान के साधारण धर्मों का बिंब प्रतिबिंबभाव से वर्णन किया जाय। जैसे शिवाजी ही औरंगज़ेब को जीत सकते हैं, जिस प्रकार सिंह ही हाथी पर चोट कर सकता है। १३७—४०

निदर्शना Illustration—भूषण ने यह परिभाषा चंद्रालोक के अनुसार लिखा है। दो समान वाक्यों में अर्थ का ऐक्य आरोपित करना। जैसे, जिस प्रकार परशुराम या बलराम जी पहिले पृथ्वी के रक्षक हुए हैं उसी प्रकार आजकल शिवाजी हैं।

इसके तीन भेद किए गये हैं—

(१) प्रथम निदर्शना—जब उपमान का गुण उपमेय में स्थापित किया जाय। जैसा पूर्वोक्त उदाहरण है।

(२) द्वितीय निदर्शना—जब दो वाक्यों का एक ही अर्थ हो। जैसे, शिवाजी का जो कीर्तियुक्त प्रताप है उसे हम सूर्य-तेज के बीच चाँदनी समझते हैं।

(३) तृतीय निदर्शना—कार्य देखकर फल कहना। बादशाहों से लड़ना तथा कवियों को प्रसन्न करना शिवाजी के लिए सहज विचार मात्र है चाहे वह औरों के लिए जंजाल ही क्यों न हो। १४१—५

निरुक्ति Derivative meaning—जहाँ शब्दों का युक्ति-युक्त पर मनमाना अर्थ किया जाय। जैसे, शिवाजी ने कवियों के दारिद्र्यरूपी हाथी को मार डाला इस लिए सरजा (सिंह) कहलाए। ३४३—६

परिकर Insinuator—जहाँ विशेषण किसी खास मतलब से प्रयुक्त हो। जैसे, सूर्यवंशी शिवाजी को म्लेच्छ-कुल-चंद्र कैसे जीतेगा? १६०—२

परिकरांकुर Passing Insinuation—जहाँ विशेष्य का प्रयोग किसी खास मतलब से किया जाय। जैसे, अब अंधकासुर रूपी औरंगज़ेब शिवाजी को कैसे जीतेगा? शिवजी ने अंधक दैत्य को मारा था, इसलिए शिवजी विशेष्य शब्द साभिप्राय है। १६०, १६४

परिवृत्ति Exchange—जहाँ कुछ लेकर देना दिखलाया जाय। जैसे, शिवाजी महादेव जी को मुंडमाल देकर यश का पहाड़ लेते हैं। २४४—५

परिणाम Commutation—जहाँ उपमेय का कार्य उपमान द्वारा किया जाना अथवा दोनों का एक रूप होकर करना दिखलाया जाय। रूपक से इसमें यही भेद है कि उपमान द्वारा कार्य होता दिखला कर विशेष चमत्कार उत्पन्न किया जाता है। जैसे, शिवाजी के यश रूपी चंद्र ने चंद्रमा की कांति हर ली। ६७—१

परिसंख्या Special Mention—जहाँ एक बात का किसी स्थान पर निषेध कर उसका दूसरे स्थान पर होना दिखलाया जाय। जैसे, शिवाजी के राज्य में चोरी नहीं रह गई और रह भी गई तो गुणियों में जो अपने गुणों से दूसरों का चित्त चुरा लेते हैं। २४६—७

पर्यस्तापह्नुति Concealment by Transposition—जहां एक वस्तु का धर्म उसमें न बतला कर दूसरे में दिखलाया जाय। जैसे, कलियुग में तुर्कों को मृत्यु नहीं खाती प्रत्युत् शिवाजी की तलवार। ८५—८७

पर्याय Sequence—(१) जहाँ एक में अनेक वस्तु का आश्रित होना अथवा (२) एक वस्तु का अनेक में क्रमशः आश्रय लेना दिखलाया जाय। इस प्रकार पर्याय के दो भेद हुए। उदा० (१) जिन महलों में पहिले मृदंग बजते थे वहां अब हाथी, सिंह गर्जते हैं। (२) विजयश्री सब को छोड़कर औरंगज़ेब में आरही थी, पर उसे भी अब छोड़कर शिवाजी के पास चली आई। २४०—३

पर्यायोक्ति Periphrasis—वचन-चातुरी से जहां वर्णनीय वस्तु घुमा फिरा कर कही जाय। जैसे, शिवाजी के क्रोध के डर से आगरे की मुसलमानिनों के मस्तक में सिंदूर दिखलाई पड़ता है। यहां शिवाजी का आतंक वर्णनीय है जिसे यह कह कर दिखलाया गया है कि दूर देश की यवनी भी हिंदू-स्त्री के सौभाग्य का चिन्ह धारण करने लगीं। १७२—३

पिहित Concealed—जहां दूसरे का रहस्य जान कर उसे किसी क्रिया द्वारा उस पर प्रकट कर दिया जाय। जैसे, नियम विरुद्ध खड़ा करने से औरंगज़ेब की नीति की बात जान कर शिवाजी ने सलाम न करके उस पर अपना क्रोध प्रकट किया। ३०८—१०

पुनरुक्तिवदाभास Apparent Tautology—जहाँ पुनरुक्ति दोष का आभास मिले, पर वास्तव में वह

दोष न हो। जैसे, उदाहरण में दल सैन: रवि सूर्य पुनरुक्ति ज्ञात होती है पर है नहीं। ३६५—६

पूर्वरूप Reversion—जहाँ एक का गुण लेकर फिर उसे छोड़ अपना पूर्व रूप धारण कर लेना वर्णन किया जाय। जैसे, पवित्र ब्रह्म-वाणी कलि के कविराजों के कारण भ्रष्ट हो चली थी, पर शिवाजी के चरित्र रूपी तालाब में अवगाहन कर पुनः पवित्र होगई। इसका एक भेद यह और होता है कि जिस समीपवर्ती का गुण लेना कहा गया हो उसके दूर करने पर भी वह गुण दूसरे के कारण विद्यमान रहे। जैसे, दीपक बुझा देने पर भी मणियों के कारण उजाला बना रहा। २८१—९३

प्रतिवस्तुपमा Typical Comparison—जहाँ उपमेय तथा उपमान का साधारण धर्म अलग अलग समान वाक्यों में कहा जाय। उदा०, जैसे ग्रीष्म के सूर्य में तेज विद्यमान है वैसे ही शिवाजी में दिल्ली-दलन का हठ मौजूद है। १३५—६

प्रतीप Converse—इस शब्द का अर्थ उलटा है अर्थात् जहां उपमेय को उपमान के समान न कहकर उलटे उपमान को उपमेय के सदृश कहा जाय। उपमेय तथा उपमान की समानता में आधिक्य या कमी के अनुसार पांच भेद होते हैं। ४१—५२

(१) जहां उपमान उपमेय के समान कहा जाय। यथा, जिस प्रकार शिवाजी ने अपनी कीर्ति फैलाई थी, उसी प्रकार चन्द्र ने अपनी चाँदनी फैलाई। ४१—४२

(२) जहां उपमान की समानता न कर सकने पर उपमेय तिरस्कृत हो। यथा, हे शिवाजी! सूर्य के समान

तुम्हारा प्रताप शत्रु का पानी सोख लेने वाला है पर गर्व क्यों करता है ? वडवानल तेरे समान है। ४३—४४

(३) जहाँ उपमान ही उपमेय की समानता न कर सकने पर तिरस्कृत हो। जैसे, चाँदनी क्या गर्व करती है जब शिवाजी की कीर्ति इतनी चारों ओर फैली हुई है। ४५—४६

(४) जहाँ उपमान उपमेय के बराबर न हो। जैसे, शिवाजी के यश को शेषनाग के समान कैसे कहें ? ४७—४८

(५) जहाँ उपमेय उपमान के सामने व्यर्थ मालूम हो। जैसे, शिवाजी के सुयश के आगे शेषनाग कुछ नहीं है। ४९—५०

प्रत्यनीक Rivalry—बलवान शत्रु पर जोर न चलने से उस के साथ वालों पर चोट करना जहाँ दिखलाया जाय। यथा, हिन्दू-पति शिवाजी से जब कुछ वश न चला तब औरंगज़ेब गरीब हिन्दुओं को कष्ट देने लगा। २५७—८

प्रहर्षण Successful—मनचाहे अर्थ से जहाँ अधिक प्राप्ति दिखलाई जाय। जैसे, चाँदी माँगने पर सोना और घोड़ा माँगने पर हाथी पाते हैं। २१४—५

प्रौढ़ोक्ति Bold assertion—उत्कर्ष का कारण न रहने पर भी उसकी उसमें कल्पना कर ली जाय। यथा, मानसरोवर में रहने ही के कारण वहाँ का हंस वंश शिवाजी के यश की समता नहीं कर सकता। २६७—८

प्रश्नोत्तर Question and Answer—जहाँ किसी एक के प्रश्न तथा दूसरे के उत्तर में कुछ वर्णन किया जाय। यथा, कौन दाता है और कौन संसार का पालन करने वाला है ? भूषण उत्तर देता है कि कृष्ण भगवान् के अवतार महाराज शिवाजी। २११—३

मालादीपक Serial Illuminator—दीपक तथा एकावली अलंकारों के मिलने से यह अलंकार बनता है। यथा, साधुओं के सत्संग ने शिव भक्ति को तथा शिव जी की भक्ति ने भूषण के मन को जीत लिया है। २३५—६

मालोपमा Serial Simile—जहाँ एक उपमेय के कई उपमान दिए जायँ। जैसे, शिवा जी की म्लेच्छवंश पर वैसी ही धाक है जैसी शेर की हाथियों पर, चीता की मृगों पर और परशुराम जी की सहस्रार्जुन पर थी। ५५—६

मिथ्याध्यवसित False supposition—जहाँ झूठे साध्य का अन्य झूठे साधन से समर्थन किया जाय। यथा, शिवाजी का पैर रण में वैसा ही चल है जैसे अंगद का था और उनकी प्रतिज्ञा भी मेरु पर्वत, ध्रुव तथा पृथ्वी के समान चल है। अर्थात् शिवाजी के पैर युद्धभूमि में अचल हैं और उनके वचन भी अटल हैं। पौराणिक गाथाओं में पृथ्वी अचल ही मानी जाती है। २७१—३

मीलित Lost—जहाँ समान वस्तु में मिल जाने से भिन्नता न मालूम हो। यथा, शिवा जी के यश में मिलजाने से कैलाश पर्वत को महादेव जी और पार्वती जी महादेव जी को खोज रही हैं। ३००—१

यमक-अनुप्रास Pun—जहाँ उन्हीं शब्दों की भिन्न भिन्न अर्थों में आवृत्ति हो। जैसे, 'यशवंत यशवंत'। पहिले का अर्थ यशस्वी है और दूसरा नाम है। ३६३—४

यथासंख्य Relative Order—जिस क्रम से पहिले एक से अधिक वस्तुओं का उल्लेख हो उसी क्रम

से बाद को उनका वर्णन दिया जाय। जैसे, अफजलखाँ, रुस्तमजमाँ तथा फतेखाँ को कूटा, लूटा और जूटा। २३८—९

रूपक Metaphor—जहाँ उपमेय तथा उपमान में कुछ भी भेद न दिखलाया जाय। रूपक के दो मुख्य भेद तद्रूप और अभेद हैं और फिर प्रत्येक के अधिक, सम और न्यून के अनुसार तीन तीन उपभेद हुए। भूषण ने केवल तीन उपभेद ही लिए हैं जो तद्रूप के हैं।

(१) सम—शिवा जी के यश रूपी जहाज का रूपक।

(२) न्यून—दो ही कर होने पर शिवा जी को सहस-कर (सूर्य) मानते हैं।

(३) अधिक—पृथ्वी के इंद्र शिवाजी उस इंद्र से बढ़ कर हैं कि पर्वतों को कोट-युत कर फिर सपच्छ कर दिया है। ६०—६६

रूपकातिशयोक्ति Hyperbole depending on Metaphor—जहाँ केवल उपमान ही दिया गया हो और उसी से उपमेय का भान हो। जैसे कनकलता (देह) में चंद्र (मुख), चंद्र में कमल (आँखें) और कमल से पराग की बूँदे (अश्रु-कण) झरती हैं अर्थात् शत्रुनारियाँ रोती हैं। १०९—१०

ललितोपमा Graceful Simile—जहाँ उपमेय तथा उपमान का सादृश्य दिखलाने के लिए लीलादिक क्रिया पद दिए जायँ। लीला, विलास, ललित आदि दस हाव होते हैं। हँसी उड़ाना, खिलवाड़ करना आदि इनकी क्रियाएँ हैं। जब उपमेय द्वारा ऐसी क्रियाओं का उपमान के लिए प्रयोग होता है

तभी यह अलंकार बनता है। जैसे, शिवाजी के दुर्ग पर की दीपावली चाँदनी को हँसती है। ५७—९

लाटानुप्रास Verbal Alliteration—जहाँ एक ही प्रकार के स्वर-युक्त पद बार बार आवें। अन्वय-भेद से, अर्थ भी इस अनुप्रास में भिन्न हो जाते हैं। यथा, औरों की याचना करने से क्या हुआ जो शिवाजी से नहीं माँगा ? तथा औरों की याचना से क्या जब शिवा जी से माँग ही लिया। २५३—६२

लुप्तोपमा Incomplete Simile—जिस उपमा में उसके चारों अंग में से एक, दो या तीन अंग न हों वे लुप्तोपमा कहलाती हैं। जैसे, शिवाजी शत्रुओं के लिए अग्नि के समान हैं। यहाँ अग्नि का जलाना धर्म लुप्त है। ३६—८

लोकोक्ति Idiom—जहाँ लोगों में प्रचलित कहावत लेकर कुछ कहा जाय। जैसे, स्त्री कहती है कि दक्षिण के सूबेदार हो कर तो जा रहे हैं, पर प्राण कहाँ रक्खे जा रहे हो। ३१७—८

लेश Unexpected Result—जहाँ गुण को दोष और दोष को गुण कह के वर्णन किया जाय। जैसे, उदयभानु ने धैर्य, गढ़ तथा हठ रखने का यही फल पाया कि स्वर्ग को प्रयाण किया। यहाँ गुण को दोष ठहराना हुआ। अब दोष का गुण-वर्णन इस उदाहरण में लीजिए। यथा, हे प्रिय, अच्छा किया कि युद्धभूमि से भागकर अपना प्राण तो बचा लाए। २८४—६

वक्रोक्ति Crooked Speech—जहाँ श्लेष या काकु से

दूसरा ही अर्थ लगाया जाय। जैसे, सरजा (सिंह या शिवाजी) के डर से हम यहाँ भाग आए हैं। ३२१—३

वस्तूत्प्रेक्षा—देखिए उत्प्रेक्षा ९९—१०२

विकल्प Alternative—'यह किया जाय या वह किया जाय' इस प्रकार अनिश्चयात्मक वर्णन जहाँ हो। जैसे, मोरंग जाओ, कमायूँ जाओ या कहीं और जाओ, पर शिवाजी तक पहुँचे बिना मनचाहा नहीं मिलेगा। २४८—५०

विचित्र Strange—जहाँ फल की इच्छा कुछ है और प्रयत्न उसके विपरीत किया जाता है। जैसे, यश ही के लिए शिवाजी ने कई बरस में लिए गए दुर्गों को झट जयसिंह को दे दिया। २११—३

विनोक्ति Speech of Absence—जहाँ गुण या दोष 'विना' शब्द के साथ वर्णित हो। जैसे, शिवाजी का विना गुमान का दान संसार में विख्यात है। १५१—५

विभावना Peculiar Causation—विभावना छ प्रकार की होती है। भूषण ने निम्नलिखित भेद दिए हैं।

(१) विना कारण के कार्य का होना। जैसे, साथ में सेना और हथियार के न होते भी शिवाजी ने औरंगज़ेब का गर्व दूर कर दिया।

(२) अपूर्ण कारण से कार्य का होना। जैसे, दो सौ सवारों से शिवाजी ने सौ हजार असवार के सरदार को जीत लिया।

(३) जो कारण न हो पर उससे भी कार्य हो जाय। जैसे, काले बादलों से अंगारे बरसते हैं। अग्नि वर्षा का कारण बादल नहीं है, पर उसीसे अग्नि बरस कर शत्रु-सेना को विचलित कर रही है।

कारे घन से तात्पर्य बारूद के धुएँ का छा जाना है।

(४) जहाँ कार्य से कारण की उत्पत्ति का आभास मिले। जैसे, तलवार रूपी धूम से प्रताप रूपी अग्नि उत्पन्न हुई। यहाँ तलवार ही के द्वारा प्रताप का अर्जित होना ठीक है, पर धूएँ से अग्नि का पैदा होना अशुद्ध है।

भूषण ने अन्य दो विभावनाएँ नहीं दिया है। १८५—९३

विरोध Contradiction—जहाँ वस्तु के गुणों के विरुद्ध कार्य होता दिखलाया जाय। जैसे, शिवाजी के श्वेत यश से शत्रुओं का मुख काला हो जाता है।

विरोधाभास Apparent Contradiction—जहाँ विरोध वास्तविक न हो केवल उसका आभास मात्र मिले। यथा, हे शिवाजी, तू दीनदयाल हो कर म्लेच्छों के दीन (मत) को मारता है। १८३—४

विशेष Extraordinary—जहाँ विना आधार के आधेय का वर्णन किया जाय। जैसे, अमरसिंह अमरपुर गए, पर उनकी राज्यश्री युद्धभूमि में रह गई। २२४—६

विशेषोक्ति Peculiar Allegation—जहाँ उपयुक्त कारण के होते भी कार्य का न होना दिखलाया जाय। जैसे, इंद्र सा ऐश्वर्य होते हुए भी शिवाजी में जरा भी गर्व नहीं है १९४—५

विशेषक Distinguisher—सादृश्य होते हुए भी किसी विशेषता से जहाँ भिन्नता दिखलाई जाय। यथा, ललकारने ही से शिवाजी के सिपाही और भागने से मीर लोग पहिचान पड़ते हैं। २०६—७

विषम Incongruity—'कहाँ यह और कहाँ वह' कह कर जहाँ कुछ वर्णन किया जाय। जैसे, कहाँ यह

राजकुमार इतना सुकुमार हैं और कहाँ ये पर्वत इतने विकराल हैं। २०५—७

विपादन Disappointment—इच्छित कार्य करने पर भी जब उसके विरुद्ध कार्य हो जाय। जैसे, औरंगज़ेब ने शिवाजी के गढ़ लेने को सेना भेजी, पर उसे अपने ही गढ़ गँवा देने पड़े। २१६—८

व्यतिरेक Contrast—जहाँ समान उपमेय तथा उपमान में किसी एक को बढ़ कर कहा जाय। जैसे, पंच पांडव रात्रि में लाख के भवन से निकल आए, पर शिवाजी अकेले दिन में लाख चौकी के बीच से निकल आए। १४६—८

व्याघात Frustration—किसी कार्य का करने वाला जब उससे विपरीत कार्य करता हुआ दिखलाया जाय। यथा, यवनी कहती है कि पालनहार विष्णु के अवतार शिवाजी हमारे पतियों को मत मारो। व्याघात का एक और भेद होता है, जिसमें किसी के तर्क को उलट कर उसीके विपरीत पक्ष का समर्थन किया जाय। जैसे, शिवाजी की तलवार संसार की रक्षक है और इसीसे म्लेच्छों के काल (यम) की भी रक्षक है। २२७—६

व्याजोक्ति Dissembler—जहाँ दूसरा कारण बतला कर वास्तविक बात छिपाई जाय। यथा, शिवाजी द्वारा लूटे पिटे सर्दार साधु से हो वन में घूमते हैं, पर पूछने पर कहते हैं कि हम आपही संसार से अब विरक्त हो गए हैं। ३१४—६

व्याजस्तुति Artful Praise—जहाँ प्रशंसा में निन्दा और निन्दा में प्रशंसा की जाय। जैसे, हे शिवाजी प्रसन्न

हो कर सभी हमें हाथी देते हैं, यदि आपने भी दिया तो क्या हुआ। १७४—६

शुद्धापन्हुति Simple Concealment—जहाँ सत्य बात छिपा कर दूसरी बात कही जाय। जैसे, यह बिजली नहीं चमकती प्रत्युत् विलायती तलवार है। ८०—८१

श्लेष Paronomasia—जहाँ एक बात का कई अर्थ लगाया जा सके। जैसे, शिवाजी सूर-कुल-भूपन है, अर्थात् वह सूर्य-कुल-भूषण या शूर-कुल-भूषण है। १६५—७

संकर Mixed—जहाँ कई अलंकारों का मेल हो। जैसे, ऐसे बाजिराज देत महाराज सिवराज भूपन जो बाज की समाजैं निदरत है। इसमें अनुप्रास के साथ प्रतीप लिए हुए ललितोपमा अलंकार है। ३६९—०

संदेह Doubt—जहाँ यह है या वह है, कह कर संशय दिखलाया जाय। यथा, शिवाजी के कार्य को देख कर लोग कहते हैं कि ऐसा काम न जानें गंधर्व, देव, सिद्ध करते हैं या शिवाजी करता है। ७८—९

सम Equal—जहाँ एक दूसरे के अनुरूप दो बातों का ठीक वर्णन किया जाय। यथा, शिवाजी अनर्थ अवश्य ही कर बैठता, पर अच्छा हुआ कि उसको हथियार नहीं मिला।

समाधि Convenience—जहाँ अन्य कारण के उपस्थित होने से कार्य शीघ्र हो जाय। जैसे, शिवाजी यों ही म्लेच्छों के शत्रु थे और उस पर क्रोध में भरे हुए थे इसलिए अफज़ल खाँ को झट मार डाला। २५१—२

समासोक्ति Model Metaphor—जहाँ वर्णन एक का किया जाय और ज्ञान हो किसी दूसरे का। यथा,

हाथी के भारी डील को देख कर सब भागे, पर सरजा सिंह ने उसका घमंड हरण किया। यहाँ वर्णन सिंह तथा हाथी का है, पर ज्ञान शिवाजी तथा अफ़ज़ल खाँ का हो रहा है। १५६—६

समुच्चय Conjunction—जहाँ कई कार्य साथ ही दिखलाए जायँ। जैसे, शिवाजी के आतंक से बीजापुर खाक हो गया, खवास खाँ के मुख में फेन आगया और आदिलशाही सेना धक हो गई। २५३—६

संभावना Supposition—'ऐसा हो तो यह हो सके' इस प्रकार जहाँ दिखलाया जाय। यथा, भीम से सहस्र गुण साहस हो तो शिवाजी से जाकर युद्ध करे। २६६—७०

सहोक्ति Connected Description—जब दो या अधिक बात साथ होती हुई मनोरंजक चाल पर कही जाय। यथा, दक्षिण की सूबेदारी पाकर दिल्ली के अमीर प्राण की आशा तथा उत्तर लौटने की आशा साथ ही छोड़ते हैं। १४६—५०

सामान्य Sameness—सादृश्य के कारण जहाँ भिन्नता न ज्ञात हो। जैसे, तलवारों की बिजली चमकने से मीरों के होश उड़ गए। ३०४—५

सामान्य-विशेष Enhanced Description—सामान्य बात को जहाँ बढ़ाकर वर्णन किया जाय। जैसे, और राजे महज कार्य नहीं कर सकते, पर शिवाजी का यश मात्र कठिन कार्य कर डालता है। १२१—३

सार Climax—जहाँ उत्कर्ष की उत्तरोत्तर वृद्धि वर्णित हो। जैसे, मनुष्यों में राजे बड़े होते हैं और राजाओं में शिवाजी सब से बढ़कर हैं। २३५—७

स्मृति Reminiscence—जहां वैसी ही वस्तु देखकर किसी अन्य वस्तु का स्मरण होना दिखलाया जाय। जैसे, हे शिवाजी, आप हरि के अवतार हैं इससे ब्राह्मणों को देखकर आप को सुदामा की याद पड़ती है, पर हमें देखकर भृगु का क्यों स्मरण करते हैं ? ७४—५

स्वभावोक्ति Natural Description—प्रकृति के अनुसार ही ठीक ठीक वर्णन जहां किया जाय। यथा, युद्ध की चर्चा चलने ही से शिवाजी की आंखों में उत्साह झलकने लगता है। ३२५—६

हेतु Cause—'इसी कारण ऐसा हुआ' कहकर जहां वर्णन किया जाय। जैसे, म्लेच्छों को मारने ही के लिए शिवाजी का अवतार हुआ है। ३४७—८

हेतु-अपन्हुति Concealment depending on a cause—युक्ति के साथ सत्य हेतु छिपाते हुए दूसरा कारण बतलाया जाय। जैसे, शिवाजी के हाथ में तलवार नहीं है, प्रत्युत् भुजारूपी सर्प की यह नागिन है जो शत्रुओं के प्राणरूपी वायु का भक्षण कर रही है। ८२—४

हेतूत्प्रेक्षा—देखिए 'उत्प्रेक्षा'। १०३

परिशिष्ट (घ)

ग्रंथावली में आए हुए छंदों की व्याख्यायुक्त सूची

अमृतध्वनि—२४ मात्रा का यह एक यौगिक छंद है। आरंभ में एक दोहा देकर उसके बाद दो रोला देने से यह छंद बनता है। दोहे का अंतिम चरण आगे के रोला का प्रथम चरण होता है। दोहे के आरंभ तथा दूसरे रोले के अंत के कुछ शब्द समान होने चाहिए। इस छंद के रोला में आठ आठ मात्राओं पर ही यति होना चाहिए। कुंडलिया छंद का यह एक भेद मात्र है जिसके रोला में इस प्रकार की यति का होना बंधन नहीं होता।

दोहे का लक्षण दिया गया है। रोला मात्रिक छंद है जिसमें ग्यारह तथा तेरह मात्रा पर यति होती है। अंत में, कुछ का मत है कि दो गुरु होने चाहिए, पर यह नियम सर्वसम्मत नहीं है। भूषण ने शि० भू० के द्वितीय पद में छप्पय के रोला के अंत में दो लघु दिए हैं।

अमृतध्वनि के लिए शि० भू० छं० ३५४—७ देखिए।

अलसा—यह सवैया का एक भेद है। सात भगण के बाद एक रगण रहता है अर्थात् २४ अक्षर होते हैं। भगण में एक गुरु और दो लघु तथा रगण में मध्य का लघु और दोनों गुरु होते हैं। उदाहरण के लिए छं० २५८ देखिए।

किरीटी—यह सवैया का एक भेद है, जिसमें आठ भगण होते हैं। एक भगण में एक गुरु और दो लघु होते हैं। शि० भू०

छं० ३२० इसी प्रकार की सवैया है। 'औरंग जो चढ़ि दक्खिन आवै तो' में प्रथम तीन भगण हैं पर चौथे समूह में तीनों वर्ण गुरु हैं पर उन्हें भी 'आव त' के समान भगण बनाकर पढ़ना होगा।

गीतिका—छब्बीस मात्रा का यह छंद होता है, जिसमें चौदह तथा बारह मात्रा पर यति होती है और अंत में लघु गुरु होता है। शि० भू० की ग्रंथालंकार नामावली इसी छंद में है।

छप्पय—इस छंद में छ पद होते हैं, जिससे यह षट्पद या छप्पय कहलाया। पहिले दो रोला और बाद को एक उल्लाला रहता है। शि० भू० छं० २ देखिए। उल्लाला अट्ठाईस मात्रा का छंद है, जिसमें पंद्रह तथा तेरह पर यति होती है। इसे चंद्रमणि भी कहते हैं।

दोहा—यह मात्रिक छंद है जिसमें चार चरण होते हैं। प्रथम तथा तृतीय में तेरह मात्रा और द्वितीय तथा चतुर्थ में ग्यारह मात्रा होती हैं। अंतिम दोनों के तुकांत मिलने चाहिएँ। शि० भू० में दोहों की संख्या अन्य सभी छंदों से अधिक है।

मनहरण—छब्बीस वर्णों से अधिक वर्ण वाले छंद दंडक कहलाते हैं। इनके दो प्रधान भेद हैं। जिनमें गणों का बंधन होता है वे गणात्मक और जिनमें यह बंधेज नहीं होता वे मुक्तक कहलाते हैं। दूसरे में केवल अक्षरों की संख्या ही रहती है। मनहरण मुक्तक दंडक है जिसे घनाक्षरी या कवित्त भी कहते हैं।

माधवी—सवैया छंद का एक भेद। इसमें आठ सगण अर्थात् चौबीस अक्षर होते हैं। सगण में दो लघु तथा एक गुरु होता है। शि० भू० का ३६८ वाँ पद देखिए।

मालती—सवैया का एक भेद। इसमें सात भगण और दो गुरु अर्थात् तेईस अक्षर होते हैं। भगण में एक गुरु और दो लघु होते हैं। शि० भू० के ३५, ३७, ४० आदि छंद देखिए।

लीलावती—यह बत्तीस मात्रा का छंद है जिसमें लघु गुरु का कोई बंधन नहीं है। सोलह सोलह मात्रा पर यति होती है। अंत में जगण होता है, ऐसा भी मत है।

हरिगीतिका—यह अट्ठाईस मात्राओं का एक छंद है जिसमें प्रवाह ठीक रखने के लिए पाँचवीं, बारहवीं, उन्नीसवीं और छब्बीसवीं मात्राएँ ह्रस्व होनी चाहिए। अंतमें एक लघु तथा गुरु रहना चाहिए। शि० भू० छं० १६—२२ देखिए।

परिशिष्ट (ङ)

कालचक्र

१० अप्रैल १६२७ शिवाजी का शिवनेरि दुर्ग में जन्म हुआ जो जुनार के पास पूना ज़िले में है। यह शाह जी के द्वितीय पुत्र थे। इनकी माता का नाम जीजाबाई था।

१६३७ बिठो जी मोहिते नेघासकर की पुत्री सईबाई से शिवाजी का प्रथम विवाह हुआ। इन्हीं के पुत्र शंभा जी थे। यह पति के सामने ही स्वर्ग गईं।

१६४६ शिवाजी ने बाजी पसालकर, येसा जी कंक और ताना जी मालूसरे को भेज कर तोरण दुर्ग पर अधिकार कर लिया। दो लाख हून सर्कारी तहसील यहीं लूटा। इस दुर्ग का नाम कुछ दिन के लिए प्रचंडगढ़ रक्खा गया। मोरो पिंगले ने इसी वर्ष मोरबद की पहाड़ी पर राजगढ़ दुर्ग बनाया।

१६४७ दादा जी कोणदेव की मृत्यु हुई। पूना की जागीर के सभी राजकर्मचारी ने शिवाजी को अपना अफसर माना, पर शाह जी की द्वितीय स्त्री के भाई शम्भू जी मोहिते के अस्वीकार करने पर उससे सूपा छीन लिया और शाह जी के पास भेज दिया। कोंदाना के मुसलमान दुर्गाध्यक्ष को घूस देकर उस पर अधिकार कर लिया और

उसका सिंहगढ़ नाम रक्खा गया। पुरंधर दुर्ग भी अधिकृत हुआ। इनके सिवा शिवाजी ने पूना के पश्चिमोत्तर के नौ दुर्ग छीन लिए, जिनमें लोहगढ़, राजमाची, रैरी प्रसिद्ध हैं। अंतिम ही बाद को रायगढ़ के नाम विख्यात हुआ।

१६४८-५० बीजापुर के सुलतान ने शाह जी को कैद कर लिया। शिवाजी शाहजहाँ से संधि की बातचीत करने लगे और शरज़ा खाँ तथा रनदौला खाँ के ज़ामिन होने पर सन् १६४६ ई० में छोड़े गए। इसी बीच बीजापुर के बाजी श्यामराजे दस सहस्र सैनिकों के साथ शिवाजी को धोखे से पकड़ने को भेजा गया, पर कुछ कर न सका।

१६५५ कृष्णा जी बाजी मेरे चंद्रराव मारा गया और जावली पर अधिकार हो गया। प्रतापगढ़ दुर्ग बनवाया। शृंगारपुर राज्य विजय हुआ। गोलघाटी पर अधिकार हो गया।

१६५७ शिवाजी के प्रथम पुत्र शम्भा जी का जन्म हुआ। पहिली बार मुग़ल-साम्राज्य में लूट आरंभ किया। जुनेर लूटा। नासिरी खाँ, परिज खाँ, रायकर्ण आदि दमन करने भेजे गए। शाहजहाँ की बीमारी सुनकर औरंगज़ेब ने बीजापुर से संधि कर ली तब शिवाजी ने भी संधि कर ली।

१६५९ अफ़ज़ल खाँ मारा गया, शृंगारपुर पर अधिकार हुआ और पवनगढ़, वसंतगढ़, रंगाना, खेलना, विशालगढ़ तथा पन्हाला दुर्ग विजय हुआ।

रुस्तमेज़माँ परास्त हुआ। बीजापुर नगर तक मराठी सेना पहुँची।

१६६० राजापुर लूटा गया और दाभोल छीन लिया गया। बीजापुर ने सीदी जौहर, सलावत खाँ और फज़लमुहम्मद कोससैन्य शिवाजी पर भेजा। शिवाजी पन्हाला में घिर गये। वहाँ से निकलकर विशालगढ़ गए। बाजी प्रभु ने पंढरपानि में शत्रु को रोका। सीदी जौहर शिवाजी से मिल गया। अली आदिल शाह स्वयं लड़ने आया। कई दुर्ग विजय कर फतेह खाँ तथा सांवतवाड़ी के सावंतों को कोंकण पर अधिकार करने को भेजा। शिवाजी ने डंडा राजपुरी लूट कर सिंधु दुर्ग बनवाया, बहलोल खाँ सावंतों के सहायतार्थ आया। बाजी घोरपदे मारा गया और मुधोल लूटा गया। ख्वास खाँ हार गया। संधि हुई। मुग़लों ने चाकण और पूना पर अधिकार कर लिया।

१६६१ कल्याण भिवंडी पर मुग़लों का अधिकार हो गया।

१६६२ शाह जी की मध्यस्थता में बीजापुर से संधि हुई। रायगढ़ दुर्ग बनने लगा।

१६६३ घुड़सवारों का सेनापति नेता जी पालकर मुग़ल साम्राज्य में लूट करने गया था। इसका मुग़ल सवारों ने पीछा किया। रुस्तमेज़माँ की सहायता से रक्षा हुई। शायस्ता खाँ पूना में था कि शिवाजी के रात्रि आक्रमण से डर कर भागा।

१६७४ दिलेर खाँ की हार। रायगढ़ में ६ जून को शिवाजी की राजगद्दी। बहादुर खाँ का कैंप लूटना। जीजाबाई की मृत्यु।

१६७५ बहादुर खाँ से संधि का प्रस्ताव। कुल कनारा के किनारे के दुर्ग विजय कर लिए। विदनोर तथा कनारा के पहाड़ी प्रान्त पर अधिकार हो गया।

१६७६ पोंडा और कोल्हापुर ले लिया। फाल्टन प्रांत में कई दुर्ग बनवाया जिनमें दो का नाम भूषणगढ़ तथा सदाशिवगढ़ था। जंजीरा पर असफल चढ़ाई। बहलोल अफ़ग़ान द्वारा खवास खाँ मारा गया तथा बीजापुर में दोनों पक्ष वालों में युद्ध।

१६७७-८ कर्णाटक पर चढ़ाई। बहादुर खाँ के स्थान पर दिलेर खाँ सूबेदार हुआ। दिलेर खाँ और अब्दुल्ला खाँ की गोलकुंडा पर चढ़ाई। हार कर लौट गया। बीजापुर पर मुग़लों की चढ़ाई हुई तब शिवाजी से सहायता माँगा। शिवाजी ने बुर्हानपुर लूट कर रनमस्त खाँ से युद्ध किया। फाल्टन प्रांत में हुसेन खां मियाना आदि परास्त हुए।

१६७९ शिवाजी बीजापुर गए। शंभा जी भाग कर दिलेर खाँ के भतीजे इखलास के साथ उसके पास गए। बीजापुर का घेरा शिवाजी द्वारा उठा दिया गया। दिलेर खाँ हार कर लौट गया। शिवाजी का बीजापुर में स्वागत और संधि।

शिवाजी के बेड़े ने खंडेरी और डंडेरी ले लिया, पर अंग्रेज़ी तथा मुग़ल बेड़ों से हार गया।

१६८० ५ अप्रेल (चैत की पूर्णिमा) को शिवाजी स्वर्ग सिधारे। शंभा जी की राजगद्दी।

१६८३-८५ पुर्तगाल युद्ध, कलश का अधिकार बढ़ना।

१६८४-६ मुग़लों की चढ़ाई, बीजापुर राज्य का अंत।

१६८६-७ गोलकुंडा राज्य का अंत।

१६८७-६ मराठों के राज्य का बढ़ना, औरंगज़ेब की चढ़ाई।

१६८९ ११ मार्च १६८९ को शंभा जी तथा कलश मारे गए। शंभा जी के पुत्र शिवा जी राजा और शंभा जी के भाई राजाराम अभिभावक नियुक्त हुए। रायगढ़ पर १९ अक्टूबर को अधिकार हुआ और शिवाजी पकड़े गए।

१६९०-९८ मुग़लों से युद्ध, मराठों के राज्य पर जिंजी तक मुग़लों का नाम मात्र को अधिकार हो गया।

१७०० राजाराम की मृत्यु।

१७०६ वाकिनकेरा का घेरा, मुग़लों की हार और लौटना।

१७०८ शिवाजी उपनाम साहू का बहादुर शाह द्वारा छुटकारा पाना, राजगद्दी।

१७४७ साहू की मृत्यु।

वह बंगाल भेजा गया और उसके स्थान पर शाहजादा मुअज़्ज़म नियुक्त हुआ।

१६६४ १५ जनवरी को शाहजादा पहुँचा। शिवाजी ने प्रथम वार सूरत लूटा। शाह जी घोड़े से गिर कर मर गए। जसवंतसिंह और भाऊसिंह ने कोंदाना घेरा, पर नहीं ले सके।

१६६५ जयसिंह तथा उनके सहकारी दिलेर खाँ, दाऊद खाँ, रायसिंह सिसौदिया, इहतिशाम ख़ाँ, कुबाद ख़ाँ, सुजानसिंह, कीरतिसिंह, यहिया आदि जसवंतसिंह के बदले नियुक्त हुए। पुरंधर और रुद्रमाल किले विजय हुए। शिवाजी ने जयसिंह से मिल कर २३ दुर्ग देकर संधि कर लिया। शिवाजी ने सेना सहित बीजापुर की चढ़ाई में जयसिंह की सहायता की। शरजा खाँ तथा खवास खाँ को शिवाजी ने दिलेर खाँ के साथ परास्त किया। युद्ध में याकूत खाँ मारा गया।

१६६६ शिवाजी आगरे की ओर लौट आये।

१६६७ जयसिंह की मृत्यु हुई। शिवाजी ने कई दुर्ग कोंकण में विजय किए।

१६६८ मुग़लों से शिवाजी की संधि हो गई।

१६७० मुग़लों से युद्ध आरंभ हुआ। ताना जी ने उदैभान को मार कर सिंहगढ़ विजय किया, पर स्वयं मारा गया। पुरंधर छीन लिया। कल्याण लेकर कोंकण पर अधिकार कर लिया। सूरत दूसरी बार लूटा गया। दाऊद खाँ को धानी युद्ध में परास्त किया। बरार और बगलाना में लूट किया। सल्हेर दुर्ग ले लिया। जंजीरा लेने

में असफल रहे। वहाँ का अध्यक्ष फतेह खाँ शिवाजी से मिल गया था, पर सीदियों ने उसे मार डाला।

१६७१ छत्रसाल बुँदेला शिवाजी के यहाँ आये। महावत खाँ सेनापति हो कर आये। सल्हेर घेरा गया। महावत के लौट जाने पर दिलेर खाँ तथा बहादुर खाँ आये। अमरसिंह के मारे जाने, मुहकमसिंह और मियाना के कैद होने पर मुग़ल सेना नष्ट हो गई। बहलोल खाँ और इखलास खाँ मोरो पिंगले और प्रतापराव गूजर से हार गये।

१६७२ बहादुर खाँ और दिलेर खाँ हार कर लौट गए। जावरि को कोली राजा से छीन लिया। रामनगर राज्य भी अधिकृत हो गया। बरार और तेलिं-गाना में लूट मार किया। हैदराबाद जाकर बीस लाख पैगोडा लेकर लौट आया। सीदियों ने डंडा राजपुरी पर अधिकार कर लिया। अली आदिल शाह की १५ दि० सं० मृत्यु हुई।

१६७३ पन्हाला पुनः जीत कर कनारा तथा दक्षिण महाराष्ट्र में लूट आरंभ किया। हुबली लूट कर बीजापुर पर जल और स्थल से आक्रमण किया। बहलोल खाँ उमरानी युद्ध में प्रताप राव गूजर से हार गया और फिर नेसारी युद्ध में आनंदराव से हारा। बिदनोर के राजा से कर लिया और सितारा के पास के कई दुर्ग ले लिये।

१६७४ दिलेर खाँ की हार। रायगढ़ में ६ जून को शिवाजी की राजगद्दी। बहादुर खाँ का कैंप लूटना। जीजाबाई की मृत्यु।

१६७५ बहादुर खाँ से संधि का प्रस्ताव। कुल कनारा के किनारे के दुर्ग विजय कर लिए। बिदनोर तथा कनारा के पहाड़ी प्रान्त पर अधिकार हो गया।

१६७६ पोंडा और कोल्हापुर ले लिया। फाल्टन प्रांत में कई दुर्ग बनवाया जिनमें दो का नाम भूषणगढ़ तथा सदाशिवगढ़ था। जंजीरा पर असफल चढ़ाई। बहलोल अफ़ग़ान द्वारा खवास खाँ मारा गया तथा बीजापुर में दोनों पक्ष वालों में युद्ध।

१६७७-८ कर्णाटक पर चढ़ाई। बहादुर खाँ के स्थान पर दिलेर खाँ सूबेदार हुआ। दिलेर खाँ और अब्दुल्ला खाँ की गोलकुंडा पर चढ़ाई। हार कर लौट गया। बीजापुर पर मुग़लों की चढ़ाई हुई तब शिवाजी से सहायता माँगा। शिवाजी ने बुर्हानपुर लूट कर रनमस्त खाँ से युद्ध किया। फाल्टन प्रांत में हुसेन खाँ मियाना आदि परास्त हुए।

१६७९ शिवाजी बीजापुर गए। शंभा जी भाग कर दिलेर खाँ के भतीजे इखलास के साथ उसके पास गए। बीजापुर का घेरा शिवाजी द्वारा उठा लिया गया। दिलेर खाँ हार कर लौट गया। शिवाजी का बीजापुर में स्वागत और संधि।

शिवाजी के बेड़े ने खंडेरी और उंडेरी ले लिया, पर अंग्रेज़ी तथा मुग़ल बेड़ों से हार गया।

१६८० ५ अप्रेल (चैत की पूर्णिमा) को शिवाजी स्वर्ग सिधारे। शंभा जी की राजगद्दी।

१६८३-८५ पुर्तगाल युद्ध, कलश का अधिकार बढ़ना।

१६८४-६ मुग़लों की चढ़ाई, बीजापुर राज्य का अंत।

१६८६-७ गोलकुंडा राज्य का अंत।

१६८७-९ मराठों के राज्य का बढ़ना, औरंगज़ेब की चढ़ाई।

१६८९ ११ मार्च १६८९ को शंभा जी तथा कलश मारे गए। शंभा जी के पुत्र शिवा जी राजा और शंभा जी के भाई राजाराम अभिभावक नियुक्त हुए। रायगढ़ पर १९ अक्टूबर को अधिकार हुआ और शिवाजी पकड़े गए।

१६९०-९८ मुग़लों से युद्ध, मराठों के राज्य पर जिंजी तक मुग़लों का नाम मात्र को अधिकार हो गया।

१७०० राजाराम की मृत्यु।

१७०६ वाकिनकेरा का घेरा, मुग़लों की हार और लौटना।

१७०८ शिवाजी उपनाम साहू का बहादुर शाह द्वारा छुटकारा पाना, राजगद्दी।

१७४७ साहू की मृत्यु।

परिशिष्ट (च)

ऐतिहासिक-पुरुषों तथा स्थानों का विवरण-युक्त अनुक्रम

अकबर—यह मुग़ल साम्राज्य के संस्थापक बाबर का पौत्र, हुमायूँ का पुत्र तथा प्रसिद्ध तृतीय मुग़ल सम्राट् था। सन् १५४५ ई० में अमरकोट में इसका जन्म हुआ, सन् १५५६ ई० में प्रथम पानीपत युद्ध-विजय हुआ तथा इन्हें राजगद्दी हुई और सन् १६६० ई० में बैराम खाँ से इन्होंने राज्यप्रबन्ध ले लिया। इन्होंने प्रायः बीस वर्ष में पड़ोसी राज्यों को जीत कर समग्र उत्तरापथ में मुग़ल साम्राज्य स्थापित कर दिया। इसके अनंतर दक्षिण की ओर इन्होंने चढ़ाइयाँ कर उधर के भी कई राज्य विजय किए। सन् १६०५ ई० में इनकी मृत्यु हुई। इनमें धार्मिक-कट्टरता नहीं थी और यह गुण-ग्राहक थे।

अनवर खाँ—मुग़ल दरबार का एक सर्दार था, जो छत्रसाल के विरुद्ध भेजा गया था। यह युद्ध में हार कर भाग गया। बहादुर शाह तथा फर्रुखसियर के समय यह बुर्हानपुर का फौजदार था। यह उसी शहर का एक शेखजादा था।

अनिरुद्धसिंह—पौरव क्षत्रिय राजा अमरेश के पुत्र थे। इनके विषय में विशेष कुछ नहीं ज्ञात हुआ।

अफ़ज़ल ख़ाँ—इसका नाम अब्दुल्ला ख़ाँ भटारी पठान था और यह बीजापुर का एक बड़ा सर्दार था। यह कई दुर्ग का अध्यक्ष रह चुका था। सन् १६५९ ई० के सितंबर महीने में शिवाजी से युद्ध करने को यह बीजापुरी १०००० सेना के

साथ रवाना हुआ। मार्ग में पंढरपुर तथा तुलजापुर के मन्दिरों को इसने भ्रष्ट किया। राजनीति-कुशल शिवाजी ने युद्धस्थल में इससे सामना कर अपने नए राज्य को विषम समस्या में डालना अनुचित समझ कर षड्यंत्र रचा और उसमें अफ़ज़ल अपनी सेना सहित नष्ट हो गया। यह स्वयं शिवाजी को धोखे में पकड़ना चाहता था, पर फल उलटा हुआ।

अब्बास शाह—यह ईरान अर्थात् फारस के बादशाह थे।

अमरसिंह चन्द्रावत—रामपुरा के राव दुर्गा सिसौदिया के प्रपौत्र, राव चन्द्रभान के पौत्र तथा हरिसिंह के पुत्र थे। यह सं० १७०७ वि० में शाहजहाँ की सेवा में आया और एक हजारी ९०० सवारों का मंसब पाकर सम्मानित हुआ। औरंगज़ेब के साथ कंधार गया। धर्मत युद्ध में यह महाराज जसवंतसिंह के साथ था, पर विना युद्ध किए स्वदेश लौट गया। शुजाअ का पीछा करने पर नियुक्त हुआ। इसके अनंतर मिर्जाराजा जयसिंह के साथ दक्षिण आया और सं० १७२३ वि० में सलहेर युद्ध में मारा गया। इसका पुत्र मुहकम सिंह उसी युद्ध में कैद हुआ था।

अमीन खाँ, मुहम्मद—यह मुग़ल दरबार का एक सर्दार था, जिसने पन्नानरेश छत्रसाल पर चढ़ाई की थी। औरंगज़ेब के समय के तथा बाद के दो प्रसिद्ध अमीन ख़ाँ ज्ञात हैं। (१) मुहम्मद सैयद मीरजुम्ला का पुत्र था, जिसने शाहजहाँ तथा औरंगज़ेब के राज्यकाल में बहुत कार्य किया था। यह पाँच हज़ारी मंसबदार था। गुजरात के अहमदाबाद में सन् १६८२ ई० में इसकी मृत्यु होगई। (२) निज़ामुल् मुल्क आसफजाह के भाई बहाउद्दीन का पुत्र था; जो औरंगज़ेब के समय दरबार में आया।

सैयद भ्राताओं के मारे जाने पर यह मुहम्मद शाह का प्रधान मंत्री हुआ, पर कई महीने बाद इसकी मृत्यु होगई।

अरब—एशिया महाद्वीप के दक्षिण के तीन बड़े प्रायद्वीपों में से एक जो पूर्व के कोने पर है। इसका विशेष भाग रेगिस्तान है। मुसल्मानी मत यहीं से आरम्भ हुआ।

अवधूतसिंह—सं० १७५७ वि० के लगभग इनके पिता अनिरुद्धसिंह मऊगंज के सेंगर ठाकुरों के हाथ मारे गए। उस समय इनकी अवस्था छ मास की थी। पन्नानरेश छत्रसाल के पुत्र हृदयशाह ने रीवाँ पर चढ़ाई कर उस पर अधिकार कर लिया। दिल्ली के बादशाह बहादुरशाह की सहायता से अवधूतसिंह को उनका राज्य फिर मिला।

अहमदनगर—यह राज्य सन् १४८६ से १६३७ ई० तक रहा। इसका विस्तार उत्तर में खानदेश राज्य से दक्षिण में नीरा नदी तक और पश्चिम में समुद्र से पूर्व बरार तथा बीदर तक रहा। इन दोनों राज्यों के नष्ट होने पर उनका कुछ अंश अहमदनगर राज्य में मिल गया था। दमन से बंबई तक का समुद्री किनारा इसी के अधिकार में था। यहाँ निज़ाम शाही राज्य था। अहमदनगर राजधानी भीमा नदी पर समुद्र से साठ कोस पूर्व हट कर है।

आकुत—देखो याकूत।

आगरा—यह प्रसिद्ध नगर संयुक्तप्रांत में यमुना नदी के किनारे पर बसा है। यह मुग़ल सम्राटों की राजधानी थी।

आमेर—प्रसिद्ध नगर जयपुर के पास एक पहाड़ी पर इस नाम का दुर्ग बना हुआ है जो जयपुर बसाए जाने के पहिले कछवाहा राजवंश की राजधानी थी।

आलमगीर—मुग़ल सम्राट् औरंगज़ेब की पदवी थी। यह शाहजहाँ का पुत्र था। इसका जन्म १६१८ ई० में हुआ था। सन् १६५६

ई० में अपने भाइओं को मार कर तथा पिता को कैद कर दिल्ली की राज्यगद्दी पर बैठा। यह अपनी धर्मांधता तथा राजविस्तार की लालसा में मुग़ल साम्राज्य को नष्टःप्राय करता हुआ सन् १७६० ई० में मरा।

आसाम—बंगाल की पूर्व सीमा पर स्थित एक प्रान्त।

इख़लास ख़ाँ मियाना—बीजापुर के पठान सर्दार अब्दुल क़ादिर बहलोल ख़ाँ का पुत्र था। यह मुग़ल सम्राट् की सेवा में चला आया। वानी डिंडोरी युद्ध में जो सन् १६६० ई० के अक्तूबर महीने में हुई थी, घायल हुआ था, जो शिवाजी और दाऊद ख़ाँ के बीच में हुई थी। यह सल्हेर युद्ध में मुहकमसिंह के साथ कैद हुआ।

इख़लास ख़ाँ—दिलेर ख़ाँ पठान का भतीजा था।

इख़लास ख़ाँ—मुहम्मद, खवास ख़ाँ का भाई तथा ख़ानख़ानाँ इखलास ख़ाँ का बड़ा पुत्र था। सं० १७२० में यह रुस्तमज़माँ के बदले में मीराज का सूबेदार हुआ। पर दूसरे ही वर्ष यहाँ से उत्तर कनारा को इसकी बदली हुई। सं० १७२२ ई० में शिवाजी ने इसे परास्त कर इसके दो सहस्र सैनिकों को मार डाला और उस प्रान्त पर अधिकार कर लिया। यह कुडाल लौट कर ठहरा जहाँ से बीजापुर चला गया।

इंगलैंड—यूरोप के पश्चिम का एक टापू है, जिसके निवासी आज कल भारत के राजा हैं।

ईरान—प्रसिद्ध नाम फ़ारस है। पश्चिम में एशियाई टर्की, पूर्व में अफ़ग़ानिस्तान और बिलोचिस्तान, उत्तर में कैकेशस पहाड़ और काला सागर तथा दक्षिण में फारस की खाड़ी है।

उज्जैन—यह मालवा प्रान्त की राजधानी है और चंबल नदी पर बसा हुआ है।

उदैभान—महाराज जयसिंह से परास्त होने पर शिवाजी द्वारा दिए गए दुर्गों में से प्रसिद्ध दुर्ग कोंदाना उपनाम सिंहगढ़ का यह क़िलेदार नियुक्त हुआ था। यह राठौड़ था। सन् १६७० ई० के आरम्भ में ताना जी मालूसरे से द्वंद्व युद्ध करते हुए अपने प्रतिद्वन्द्वी को मार कर यह मारा गया और दुर्ग शिवाजी के अधिकार में चला गया।

एदिल शाह—बीजापुर का राजवंश आदिलशाही कहलाता था, जिस वंश का राज्य सन् १४८६ से सन् १६८६ ई० तक रहा। ४ नवंबर सन् १६५६ ई० को पिता की मृत्यु होने पर अली आदिलशाह गद्दी पर बैठा। इसी के समय में शिवाजी ने इस राज्य का कुछ अंश दबा लिया था। इसीने प्रथम बार अफ़ज़ल ख़ाँ और दूसरी बार उसके पुत्र रुस्तम ख़ाँ तथा सीदी जौहर को शिवाजी को दमन करने भेजा था। यह सन् १६७२ ई० में मरा और इसका पुत्र सिंकदर आदिल शाह सुलतान हुआ।

कमाऊँ—यह नैपाल के पश्चिम हिमालय की तराई में है। सन् १६६५ ई० में मुग़ल सम्राट् ने यहाँ को राजा बहादुर चंद को परास्त कर इसे साम्राज्य में मिला लिया था, पर सन् १६७३ ई० में प्रसन्न हो कर पुनः वह राज्य उसे फेर दिया। यह पुराना जागीरदार था।

कर्ण, राव—यह बीकानेर के राजा थे। इनके पिता राव सूर सिंह भुरटिया थे जिनकी मृत्यु पर यह सन् १६३१ ई० में गद्दी पर बैठे। उसी वर्ष से बराबर यह बादशाह के कार्य करते रहे। औरंगज़ेब ने बादशाह होने पर सन् १६५७ ई० में पोंडा में मराठों को रोकने को इन्हें नियत किया। सन् १६६५ ई० में जयसिंह के पुरंधर घेरने पर दाहिने ओर के मोर्चे पर नियुक्त हुए। यह बादशाह के आज्ञानुसार वहाँ इस कार्य में लगे

हुए थे कि इनके सुपुत्र अनूपसिंह ने बादशाह से बीकानेर राज्य अपने नाम करा लेने का प्रयत्न किया। यह सुनकर अपने कार्य में यह सतर्क न रहने लगे, जिस पर बादशाह ने दिलेर ख़ाँ को इन्हें कैद करने को लिखा। भाऊसिंह हाड़ा इन्हें बचा कर औरंगाबाद ले गए। यह सन् १६६७ ई० की घटना है। इसके दो वर्ष बाद इनकी मृत्यु हुई।

कर्णाटक—कृष्णा नदी की घाटी से रासकुमारी तक फैला हुआ प्रांत। इसके पूर्व कारोमंडल घाट है। वर्तमान मंदराज प्रांत का पश्चिम दक्षिण भाग तथा मैसोर इसी के अंतर्गत है। कुछ भाग बंबई प्रांत में भी आ गया है।

कलकत्ता—हुगली नदी पर बसा हुआ प्रसिद्ध नगर है।

कलिंग—उड़ीसा प्रांत का प्राचीन नाम।

कल्याण—एक कल्याण थाना ज़िले के अंतर्गत है और बंबई से लगभग तीस मील उत्तर पूर्व है। दूसरा कल्याण बीदर से लगभग चालीस मील ठीक पश्चिम में स्थित है। छं० २१३ में इसी दूसरे कल्याण का उल्लेख है। यह भूषण के समय में बीजापुर राज्य में था।

कश्मीर—पंजाब के उत्तर का एक बड़ा देशी राज्य।

काबुल—भारत के पश्चिम-उत्तर सीमा पर स्थित अफ़ग़ानिस्तान की राजधानी, जो इसी नाम की नदी पर बसा है।

कारतलब ख़ाँ—सन् १६५७ ई० में यह जुनेर के पास थानेदार नियुक्त हुआ। सन् १६७० ई० के मई महीने में इसे खिलअत, घोड़ा, तलवार तथा जमधर मिला था।

काशी—गंगा जी के तट पर बसा हुआ प्रसिद्ध तीर्थ-स्थान। यहीं सन् १६६६ ई० में विश्वनाथ जी तथा विंदुमाधव के मंदिर तोड़ कर औरंगज़ेब ने मसजिदें बनवाया था।

किशोरसिंह—कोटानरेश माधोसिंह के पाँच पुत्रों में यह सबसे छोटे थे। धर्मत युद्ध में इन पाँचों भाइयों ने महाराज यशवंत सिंह का साथ दिया और युद्ध में एक को छोड़ कर सभी ने वीर गति पाई। किशोरसिंह को इतने घाव लगे थे कि वह मृत्यु-मुख से ही मानों बच निकले थे। यह सन् १७२६ वि० में गद्दी पर बैठे। यह दक्षिण ही में बराबर नियुक्त रहे, जहाँ सन् १७४२ वि० में अर्काट दुर्ग के घेरे के समय मारे गए।

डाल—सावंतवाड़ी में काली नदी पर स्थित है। बाद को वाड़ी को सावंत ही कुडाल के देसाई कहलाने लगे। सन् १६६३ ई० में इस पर, राजापुर तथा वेनगुर्ला बंदर पर शिवाजी का अधिकार हो गया।

क़ुतुबशाह—सुलतान क़ुली को बहमनी सुलतान महमूदशाह ने क़ुतुबुल् मुल्क की पदवी सहित गोलकुंडा जागीर में दिया। इसने अठारह वर्ष सूबेदारी करने के बाद सन् १५१२ ई० में स्वतंत्रता की घोषणा की और सुलतान क़ुली क़ुतुबशाह प्रथम कहलाया। इसके बाद क्रमशः जमशेद, सुभान, इब्राहीम तथा मुहम्मद गद्दी पर बैठे। सन् १६३५ ई० में अबुल्ला क़ुतुब-शाह गद्दी पर बैठा। मुग़लों को बराबर कर देते हुए संधि बनाए रखता था, पर सन् १६५६ ई० में औरंगज़ेब की कुटिल नीति के कारण मीर जुमला के बहाने उस पर चढ़ाई की गई। उससे जुर्माना आदि लेकर संधि की गई। सन् १६६६ ई० में जब बीजापुर पर जयसिंह ने चढ़ाई की थी तब इसने सहायता की थी। सन् १६७२ ई० में इसकी मृत्यु पर अबूहुसेन गद्दी पर बैठा जिससे मुग़लों ने यह राज्य छीन लिया।

कंधार—बीर से ९० मील ठीक पूर्व गोदावरी की एक सहायक

नदी मेनादा पर बसा है। यह निज़ाम हैदराबाद के राज्य में है।

खजुआ—इलाहाबाद ज़िला में कोड़ा तहसील के अंतर्गत यह एक ग्राम है। यहाँ औरंगज़ेब ने शाहशुजाअ पर युद्ध में विजय प्राप्त किया था जिसको स्मृति में यहाँ बादशाही बाग, सराय आदि बनवाए गए थे। यहाँ अच्छी बस्ती हो गई है।

खवास ख़ाँ—भूमिका देखिए।

खानदौराँ—ख़्वाजः हिसारी नक़्शबंदी को यह तथा खाँ नसरत जंग की उपाधि मिली थी। यह सात हज़ारी मंसबदार था, जिसे १२ जुलाई सन् १६४५ ई० को लाहौर में एक काश्मीरी ब्राह्मण ने मार डाला था। इसके लड़के को भी यही उपाधि तथा पाँच हज़ारी मंसब मिला। राज्य के लिए भाइयों में युद्ध होने पर यह औरंगज़ेब ही के पक्ष में रहा। दक्षिण में कुछ दिन नियुक्त रहने के अनंतर यह उड़ीसा का सूबेदार नियत हुआ, जहाँ सन् १६६७ ई० में मर गया।

खुरासान—फ़ारस देश के उत्तर तथा पश्चिम का एक प्रांत।

गढ़ा—जब्बलपुर ज़िले में एक पुरानी बस्ती है। गढ़ामांडल के गोंड राजों की यही राजधानी थी जिनका कोट मदनमहल पहाड़ पर अभी तक वर्तमान है।

गढ़नेर—इससे गढ़नगर से तात्पर्य ज्ञात होता है। चाँदा प्रान्त में गढ़ नाम की कई बस्तियाँ हैं जिनमें यह एक हो सकता है। नेर नगर ही का छोटा रूप है।

गुजरात—इसका दूसरा नाम काठियावाड़ है। यह भारत के पश्चिम ओर का एक प्रायःद्वीप है जिसके दक्षिणी तट तथा बंबई तट के मिलने से खंभात की खाड़ी बनी है।

गोर—बंगाल प्रांत का गौड़ नगर या अफ़ग़ानिस्तान का ग़ोर दुर्ग और शहर हो सकता है।

गोलकुंडा—यह .कुतुबशाही सुलतानों की राजधानी थी। दक्षिण के प्रसिद्ध नगर हैदराबाद के पास है। दोनों ही मूसा नदी पर बसे हुए हैं।

गोंडवाना—मध्य प्रांत का वह भाग जहाँ पहिले विशेषतः गोंड जातियाँ बसती थीं।

चालकुंड—बंबई तथा डंडा राजपुरी बंदरों के बीच में स्थित एक बंदर है। यह कोलाबा के पास ही है।

चांदा—मध्यदेश के दक्षिण में एक प्रांत तथा एक नगर है। यह नागपुर से दक्षिण है। इसी प्रांत से हो कर बानगंगा इसी की सीमा पर की प्रणहीत नदी में मिलता है।

चित्तौड़—मेवाड़ राज्य के अंतर्गत इस नाम का एक प्रसिद्ध ऐतिहासिक दुर्ग है।

चिंतामणि—सुप्रसिद्ध बाजीराव पेशवा के भाई चिमना जी आप्पा का यह नाम है। विशेष भूमिका में देखिए।

चीन—भारत वर्ष के उत्तर एक बहुत बड़ा साम्राज्य है जिसकी राजधानी पीकिन है। उत्तर में साइबीरिया, पूर्व में शांत (पासिफिक) महासागर और जापान तथा पूर्व में मध्य तुर्की और कास्पियन समुद्र है।

चौरागढ़—मध्य प्रदेश के नरसिंहपुर ज़िले में गहरवार स्टेशन से पाँच कोस दक्षिण और पूर्व है। यह गढ़मांडल प्रांत की राजधानी था।

चंद्रराव—इनके पूर्वज पर्सोजी बाजीराव मोरे को यूसुफ आदिलशाह ने जावली जागीर में और चंद्रराव उपाधि दी थी। सन् १५२४ ई० के युद्ध में इनके पुत्र यशवंतराव ने अहमदनगर का हरा झंडा छीन लिया था जिसके उपलक्ष में इन्हें

राजा की पदवी मिली। पर्सोजी की आठवीं पीढ़ी में कृष्णा जी हुए, जिसके पाँच पुत्र थे। पहिला बाला जी राजा हुआ। जीजाबाई ने इसीसे शिवाजी के लिए उसकी पुत्री माँगी थी, पर उसने अस्वीकार कर दिया। बाजी श्यामराजे को इसीने सहायता दी थी और इसीके राज्य में शिवाजी को मारने का उसने षडयंत्र रचा था, पर शिवाजी की सतर्कता से वह निष्फल गया। शिवाजी ने इन्हें मिलाने का प्रयत्न किया, स्वयं जाकर मिले पर कुछ फल न निकला। दो राजदूत रघू बल्लाल आत्रे तथा शंभा जी कावा जी भेजे गए, जिन्होंने सन् १६५५ ई० में बाला जी तथा उसके भाई को मार डाला। शिवाजी ने ससैन्य जाकर जावली पर अधिकार कर लिया।

छत्रसाल बुँदेला—देखो भूमिका।

छत्रसाल हाड़ा—बूँदी नरेश रावरत्न के यह पौत्र थे जिनकी मृत्यु पर सन् १६३१ ई० में यह गद्दी पर बैठे। दक्षिण में इन्होंने बहुत दिनों तक बीजापुर आदि के सुलतानों के विरुद्ध लड़ाइओं में कार्य किया था। कंधार की चढ़ाइओं में भी यह साथ गए थे। दारा आदि भाइओं के युद्ध में इन्होंने सब से बड़े दारा ही का साथ दिया और सामूगढ़ के युद्ध में सन् १६५७ ई० में मारे गए।

जगतसिंह—राजा मानसिंह के यह सब से बड़े पुत्र थे। सन् १५९९ ई० में यह बंगाल का सहकारी प्रांताध्यक्ष नियुक्त हुआ, पर आगरे से यात्रारंभ करने के पहिले ही जवानी ही में मर गया। यह योग्य सेनापति था और कई युद्धों में वीरता दिखला चुका था।

जवारि—नासिक ज़िले के पास सूरत से सौ मील दक्षिण में है। ५ जून सन् १६७२ ई० में शिवाजी ने इसे इसके कोली राजा विक्रमसाह से छीन लिया।

जयसिंह—जयपुर के राजा थे। सन् १६१७ ई० में बारह वर्ष की अवस्था में राजा हुए। यह बहुत ही योग्य थे। सन् १६६४ ई० में शिवाजी को दमन करने के लिए नियुक्त हुए। सन् १६६५ ई० में शिवाजी से संधि कर लिया। सन् १६६६ ई० में बीजापुर तक पहुँच कर लौटे और शिवा जी को आगरे भेजा। सन् १६६७ ई० में यह दक्षिण से राजधानी बुला लिए गए, पर मार्ग ही में २ जुलाई को इनकी मृत्यु हो गई।

जसवंतसिंह—जोधपुर-नरेश गजसिंह के द्वितीय पुत्र थे। सं० १६९४ में गद्दी पर बैठे। दारा तथा औरंगज़ेब के साथ दो बार कंधार की चढ़ाई पर गये। सं० १७१४ में धर्मत युद्ध में औरंगज़ेब से परास्त हुए जिसके बादशाह होने पर यह गुजरात के सूबेदार नियत हुए। सं० १७१९ में शायस्त खाँ के साथ दक्षिण गए। दो तीन वर्ष यहाँ रहने पर यह दिल्ली बुला लिए गए, पर सं० १७२४ में फिर दक्षिण भेजे गए। मुअज्ज़म को पिता के विरुद्ध उभाड़ने की शंका में यह फिर राजधानी बुला लिए गए और जमरुद के फौजदार नियुक्त हुए, जहाँ सं० १७३५ में इनकी मृत्यु हुई। यह सुकवि तथा कवियों के आश्रयदाता थे।

जावली—चंद्रराव मोरे वंश की यह राजधानी थी, जो कोयना नदी की घाटी में महा-बलेश्वर के ठीक नीचे बसा है। अब यह एक छोटा सा गाँव है। यह सितारा जिले के उत्तर-पश्चिम कोने में है तथा पहाड़ी है और जंगल भी बहुत है। पश्चिम की ओर सह्याद्रि पर्वत माला है।

जोधपुर—मारवाड़ राज्य की राजधानी है। यह राज्य राजपुताना में अरावली के पश्चिम में है।

झारखंड—उड़ीसा प्रांत का वह भाग जो बंगाल की सीमा के पास है।

ढुंढार—जयपुर राज्य का यह भी एक नाम है।

तहव्वर खाँ—यह मुग़ल दरबार का एक सर्दार था जो पन्नानरेश महाराज छत्रसाल के स्वातंत्र्य के लिए युद्ध आरंभ करने पर उन्हें दमन करने को भेजा गया था। यह प्रयत्न करने पर भी अंत मे असफल होकर लौट गया।

त्रिविक्रमपुर—तिकवाँपुर, देखो भूमिका 'कविपरिचय'।

दलेल महम्मद—यह दिलेर ख़ाँ या दिलेर हिम्मत ख़ाँ हो सकता है। प्रथम का परिचय अन्यत्र दिया हुआ है। दूसरा एक सेनाध्यक्ष था जो अमरसिंह आदि के साथ दक्षिण में युद्ध करने आया था। (औरंगज़ेब नामा हिंदी भा० २ पृ० ३०)

दाऊद खाँ यह सन् १६६४ ई० में दक्षिण में नियत हुआ। पुरंधर के घेरे में यह उपस्थित था और सेना के साथ शिवाजी के राज्य में लूट मार करने भेजा गया। इसके बाद यह खानदेश का सूबेदार नियत हुआ। यहीं से बादशाह के आज्ञानुसार मुअज़्ज़म के सहायतार्थ सेना सहित दक्षिण गया। सन् १६७० ई० में यह वानी डिंडोरी युद्ध में मराठों से परास्त हुआ। इसके बाद अहमदनगर के पास मराठों को रोकने को भेजा गया। सन् १६७२ ई० में राजधानी चला गया।

दारा—शाहजहाँ का सब से बड़ा पुत्र था। इसमें धार्मिक कट्टरता नहीं थी। इसके पिता ने इसे ही यौवराज्य दिया था, पर औरंगजेब ने राज्यतृष्णा में पड़कर इसे तीन युद्धों में परास्त कर इसे मरवा डाला और स्वयं पिता को कैद कर बादशाह बन बैठा।

दिलेर ख़ाँ—इसका नाम जलाल ख़ाँ था और यह दाऊदज़ई अफग़ान था। इसका बड़ा भाई बहादुर ख़ाँ रुहेला था। सन् १६६४ ई० में यह जयसिंह के साथ दक्षिण में नियत हुआ। पुरंधर और रुद्रमाल दुर्गों को घेर कर उसे विजय किया। सन् १६६७ ई०

में जयसिंह के लौट जाने तथा शाहजादा मुअज़्ज़म के सूबेदार होने पर यह उसके साथ नियत हुआ। यह कुछ दिन गोंड-, वाना में लूट मार करता रहा। सन् १६७० ई० में शाहज़ादा से भेंट करने आया, पर शंका से दरबार नहीं गया और अपनी सेना के साथ उत्तर भागा। बहादुर खां की सहायता से औरंगज़ेब से इसे क्षमा प्राप्त हुई। इसी के साथ यह फिर सन् १६७१ ई० में दक्षिण गया। इसका मंसब पांचहजारी था और यह दक्षिण ही में सन् १६८३ ई० में मर गया।

देवगिरि—इससे देवगढ़ से तात्पर्य ज्ञात होता है। यह रत्नागिरि जिले का एक भाग है। इसके उत्तर में राजापुर, पूर्व में कोल्हापुर राज्य, पश्चिम में अरब की खाड़ी और दक्षिण में सावंत वाड़ी है।

द्रविड़—कर्णाटक प्रांत का वह भाग जिसमें द्रविड़ जाति बसती है।

निज़ामशाह—अहमदनगर के सुलतानों की यह पदवी थी। इन की बहरी अर्थात् समुद्री भी उपाधि थी। बहमनी सम्राट् महमूदशाह के वजीर निज़ामुलमुल्क का पुत्र अहमद सन् १४९० ई० में अपने स्वामी की सेना को हाराकर स्वतंत्र बन बैठा। सन् १४९५ ई० में अहमदनगर की नींव डाली। सन् १६३३ ई० में शाहजहाँ के समय में इस राज्य का अंत होगया और अंतिम निज़ामशाह हुसेन कारागार में मरा।

नैपाल—आगरा और अवध के संयुक्त प्रांत के उत्तर, कमायूँ कमिश्नरी के पूर्व, शिकिम के पश्चिम तथा तिब्बत के दक्षिण में स्थित यह एक राज्य है।

नौसेरी खाँ—शुद्धनाम नासिरी खां था। सन् १६५७ ई० में शिवाजी ने पहिली बार मुग़ल साम्राज्य में लूट मार आरम्भ किया, तब औरंगज़ेब ने इसे ३००० सेना सहित भेजा। इसने मराठा

सेना को परास्त किया। इसके बाद राव कर्ण के साथ पोंडा में नियत हुआ था।

परनाला—कृष्णा नदी की दो सहायक वर्णा तथा हिरण्यकेशी नदियों के बीच में एक दुर्ग है।

परेंदा—यह दुर्ग धरूर से ६० मील पश्चिम दक्षिण सीना नदी पर शोलापुर से अहमदनगर जाने वाली सड़क पर है।

पलाऊ—शुद्ध नाम पलामऊ है। बिहार तथा छोटा नागपुर की सीमा पर एक ज़िला है। यह बिलकुल पहाड़ी है। यहाँ का राजा प्रतापराय चेरु था, जिसे शायस्त खाँ ने सन् १६४२ ई० में हराकर करद बनाया था। सन् १६६१ ई० में दाऊद खाँ ने इसे विजय कर खालसा कर लिया।

पार—जावली के पास का एक ग्राम।

पुर्तगाल—यूरोप के दक्षिण-पश्चिम आइबेरिया प्रायद्वीप में स्थित एक राज्य है। यह स्पेन के पश्चिम में है। यहाँ के निवासी-गण भारत में व्यापार करने आते थे।

पूना—यह नगर बंबई प्रान्त में भीमा की एक सहायक नदी मूता-मूला पर स्थित है। बम्बई नगर से लगभग ६५ मील पूर्व दक्षिण हट कर है।

फतेह खाँ—जंजीरा के सीद्दियों का एक सर्दार था। शिवाजी से लड़ाई में कई बार परास्त होने पर उनसे संधि की बातचीत कर रहा था कि इसके तीन सहकारियों ने विद्रोह कर इसे मार डाला और मुग़ल सम्राट् औरंगज़ेब से संधि कर उसके अधीनस्थ सर्दार बन गए। यह घटना सन् १६७० ई० की थी।

फ्रांस—यूरोप के पश्चिम ओर समुद्र के किनारे पर बसा हुआ एक देश है। यहाँ के निवासी फ्रेंच या फरासीसी कहलाते हैं जो शिवाजी के समय भारत में आचुके थे।

लौटा दिया। नई सेना के साथ फिर लौटा, पर आनंदराव ने उसे फिर परास्त किया। इसके बाद हंबीरराव के साथ इसे परास्त कर इमकी सेना लूट ली। इसके बाद यह बीजापुर का प्रधान अमात्य हुआ। (११नवं० सन् १६७५) इसका नाम अब्दुर्रहीम था।

बहादुर खाँ—यह पहिले गुजरात का सूबेदार था और इसने दिलेर खाँ की सहायता की थी। सन् १६७२ ई० में यह दिलेर खाँ के साथ दक्षिण में महाबत खाँ के स्थान पर भेजा गया। इसी के समय सल्हेर युद्ध में मुग़ल हारे और यह तथा मुल्हेर दुर्ग छिन गया। मराठे रामगिरि तक लूटते चले गए और बहादुर व्यर्थ ही वहाँ तक पीछा करता गया था। सन् १६७४ ई० में खैबरी पठानों के विद्रोह करने पर मुग़ल सेना का अच्छा भाग उत्तर लौट गया, जिससे दक्षिण में लड़ाई रुक गई।

बाजीराव—बाला जी विश्वनाथ के प्रथम पुत्र विसा जी का जन्म सं० १७५५ में हुआ था। यही बाजीराव के नाम से प्रसिद्ध हुए। दूसरे पुत्र चिमना जी आप्पा इनसे दस वर्ष छोटे थे। सं० १७७७ वि० में पिता की मृत्यु पर यह द्वितीय पेशवा हुए। सं० १७८४ वि० में यह ससैन्य निज़ाम के राज्य में से होते गुजरात तक लूटते चले गए और लौट कर पालखेड़ के पास उसे परास्त किया। इसके बाद सं० १७८८ में त्र्यंबकराव धाबड़े को परास्त किया। दो वर्ष बाद छत्रसाल की सहायता करते हुए मुहम्मद खाँ बंगश को परास्त किया। सं० १७९४ वि० में यह दिल्ली गए और उसे लूटा। सं० १७९७ वि० में इन्होंने हैदराबाद के निज़ाम नासिरजंग को फिर से पराजित किया, पर इसी वर्ष इनकी मृत्यु हो गई।

बादर खाँ—मेरे विचार से यह बहादुर खाँ का बिगड़ा रूप है।

जब ज़रूर से ज़ोर बन सकता है तो ऐसा हो जाना बिलकुल संभव है। बहादुर खाँ देखिए।

बांधव—रीवाँ राज्य में एक प्राचीन दुर्ग है। राजा विक्रमाजीत के रीवाँ को राजधानी बनाने के पहिले यहाँ के राजा बांधव-नरेश ही कहलाते थे।

बीर—या बीड, अहमदनगर से ६८ मील ठीक पूर्व है। वर्तमान समय में यह हैदराबाद राज्य के अंतर्गत है।

बावनीगिरि—यह दक्षिणी कर्णाटक में एक स्थान है।

बिद्नोर—यह तुंगभद्रा नदी के उद्गम स्थान के पास है। यह पहाड़ी राज्य है और कनाड़ी भाषा में इसे मालनद कहते हैं, जिससे फारसी इतिहासों में यहाँ का राजा मालनंद के राजा के नाम से लिखा गया है। अली आदिलशाह ने इस राज्य को विजय कर करद बनाया था। इस पराजय के एक वर्ष बाद यहाँ का राजा शिवप्पा मर गया और उसका पुत्र ब्राह्मणों द्वारा मारा गया। इसकी रानी चेनम्मा थी। तथा पुत्र सोमशेखर राजा हुआ। यह रानी तथा तिमैय्या राज्य का प्रबन्ध करते थे। अली ने फिर चढ़ाई की। सं० १७३२ वि० में शिवाजी को कर देना स्वीकार किया।

बिलायत—अर्थ देश है पर साधारणतः अन्य देशीय राजाओं के स्वदेश को कहते हैं। जैसे, मुसलमानों के राज्य के समय अफग़ानिस्तान, फारस आदि और वर्तमान समय में ईंगलैंड।

बीजापुर—यह कृष्णा तथा भीमा के बीच में एक प्रसिद्ध नगर है। यह बीजापुर राज्य की राजधानी थी। वर्तमान समय में यह बम्बई प्रांत के अंतर्गत है।

बीदर—यह नगर गोदावरी की सहायक नदी मानजेरा के किनारे पर कल्याण के ठीक पूर्व अठारह बीस कोस पर है। यहाँ दुर्ग भी है और यह बारीदशाही राज्य की राजधानी थी।

बीरबर—यह सम्राट् अकबर के अंतरंग मित्रों में से थे। इनका जन्म सं० १५८५ वि० में हुआ था। इनका नाम महेशदास था और यह ब्राह्मण थे। सन् १५७४ ई० में इन्हें राजा की पदवी मिली। सन् १५८६ ई० में अफ़ग़ानिस्तान के युद्ध में यह मारे गए।

बुद्धसिंह—राव राजा, यह अनिरुद्धसिंह के पुत्र थे, जिनकी मृत्यु पर यह बूँदी के राजा हुए। जाजऊ के युद्ध में इन्होंने बहादुरशाह का साथ दिया था, जिसकी मृत्यु पर जहाँदारशाह बादशाह हुआ। सं० १७६९ वि० में इसके मरने के बाद फर्रुखसियर की रक्षा में इन्होंने दिल्ली ही में युद्ध किया था, पर उस बादशाह का इन पर विशेष विश्वास नहीं था, इससे यह अपने राज्य को चले गए। सवाई जयसिंह के यहाँ कुछ दिन यह अतिथि रहे, पर इन्होंने राज्यलिप्सा में पड़कर इन्हें अपना करद बनाने का प्रस्ताव किया और इनके अस्वीकार करने पर इन्हें क़ैद करना चाहा जिससे लड़भिड़ कर यह निकल गए, पर राज्य खो बैठे। इनके पुत्र उम्मेदसिंह ने इनकी मृत्यु पर अपना राज्य कोटानरेश की सहायता से पुनः प्राप्त किया था।

बुँदेलखंड—वह प्रांत जिसकी उत्तरी सीमा यमुना, पश्चिमी चंबल तथा दक्षिण पूर्वीय सीमा नर्मदा नदी है। बुँदेलों के निवास के कारण इसका यह नामकरण हुआ।

बेतवा—बुँदेलखंड की एक नदी है जो यमुना में गिरती है। इसी के किनारे ओड़छा नगर बसा है।

बंग—बंगाल प्रांत।

भगवंतसिंह—यह जयपुर-नरेश भारामल के पुत्र थे। इनकी सन् १५८९ ई० में मृत्यु हुई। मानसिंह इनके भाई के पुत्र थे। इनका दूसरा नाम भगवानदास भी था।

भड़ोच—यह नर्मदा नदी के उत्तर के तट पर स्थित है। यह सूरत से प्रायः चालीस मील उत्तर है।

भाऊसिंह—राव छत्रसाल के पुत्र थे। सन् १६५७ ई० में गद्दी पर बैठे। इसके तीसरे वर्ष यह दक्षिण में नियुक्त हुए और ३० अप्रेल सन् १६६० ई० को मराठों को परास्त कर चाकण दुर्ग विजय किया। सिंहगढ़ घेरते समय यह भी जसवंतसिंह के साथ थे, पर उसमें ये लोग असफल रहे। सन् १६६७ ई० में यह औरंगाबाद के फौजदार नियुक्त हो कर वहीं सन् १६८७ ई० तक रहे जब उनकी मृत्यु हो गई।

भागनगर—गोलकुंडा का प्राचीन नाम जिसे वहाँ के सुलतान ने अपनी एक प्रेयसी भागमती के नाम पर बसाया था।

भिलसा—मालवा प्रांत में भूपाल के पूर्व तथा उत्तर बेतवा नदी पर स्थित एक नगर है।

भूषण—देखो भूमिका।

मक्का—अरब प्रायःद्वीप के हेजाज़ प्रांत में एक नगर है, जो मुहम्मद का जन्म स्थान होने के कारण मुसलमानों का तीर्थ-स्थान है।

मधुरा—यह वैगाई नदी पर कर्णाटक के दक्षिणी भाग में एक नगर है।

महावत खाँ—इसका पिता ज़माना बेग बिन ग़ोरबेग काबुली था, जिसे महावत खाँ की पदवी मिली थी। इसीने जहाँगीर को क़ैद किया था। इसकी मृत्यु के ८ वर्ष बाद इसके द्वितीय पुत्र लहरास्प को सन् १६३४ ई० में महावत खाँ की पदवी मिली। दो बार काबुल का सूबेदार हुआ। सन् १६७० ई० के अंत में यह दक्षिण का प्रधान सेनापति नियुक्त हुआ। सन् १६७२ ई० के मध्य में आज्ञानुसार यह उत्तर लौट गया। सन् १६७४ ई० में इसकी मृत्यु हो गई।

महासिंह—महाराज मानसिंह के पुत्र जगतसिंह का यह पुत्र था। सन् १६१७ ई० में दो वर्ष राज्य करने पर अत्यंत मदिरा पान करने के कारण इसकी मृत्यु हुई। इसी के पुत्र मिर्ज़ा राजा जयसिंह थे।

महेवा—बुंदेल खंड के छत्रपुर राज्यांतर्गत एक स्थान है, जो मऊ महेवा के नाम से प्रसिद्ध है। यह नौ गाँव छावनी से चार मील पूर्व है। यह पन्नानरेश छत्रसाल के पूर्वजों की राजधानी थी।

मारवाड़—जोधपुर राज्य। यह राजपुताने में अरावली पर्वत माला के पश्चिम में है। यहाँ के राजे राठौड़ हैं। शिवाजी के समकालीन यहाँ के राजा यशवंतसिंह थे।

माल मकरंद—शिवाजी के पितामह मालो जी, देखिए भूमिका।

मालवा—मध्यदेश तथा राजपुताने के बीच में स्थित एक प्रांत जिसकी राजधानी उज्जैन थी। वर्तमान काल में इंदौर, ग्वालियर आदि कई राज्यों में यह प्रांत बँटा हुआ है।

मीर सहवाल—इस नाम का ठीक पता नहीं मिला और न यह शुद्ध नाम ही ज्ञात होता है। फारसी शहवाला शब्द हो सकता है, जिसका अर्थ ऊपरी बादशाह या बड़ा शाह है।

मुराद—शाहजहाँ का सब से छोटा पुत्र था। पिता के विरुद्ध युद्ध करने में उसने औरंगज़ेब का साथ दिया था। पर अंत में उसने इसे क़ैद कर दिया जहाँ इसकी कुछ दिन बाद विष से मृत्यु हो गई।

मुलतान—यह पंजाब प्रांत में चिनाब नदी के किनारे एक नगर तथा ज़िला है।

मेवाड़—राजस्थान में अरावली पर्वत के पूर्व में एक राज्य है, जिसकी राजधानी उदयपुर है। यहाँ का सिसोदिया राजवंश

बहुत प्राचीन है। शिवाजी के समय महाराणा राजसिंह यहाँ के नरेश थे।

मोहकमसिंह—रामपुरा के जागीरदार अमरसिंह चंद्रावत का पुत्र था। सन् १६७२ ई० के आरंभ में सल्हेर युद्ध में इसके पिता मारे गये और यह क़ैद हुआ। कुछ दिन बाद छूटने पर अहमदनगर लौट गया और बहादुर खाँ कोका की सहायता से इसे राव की पदवी मिली। सन् १६९० ई० के लगभग इसकी मृत्यु हुई। इसके पुत्र का नाम गोपालसिंह था।

मोरंग—कूच विहार के पश्चिम तथा पुर्णिया के उत्तर का एक राज्य। इस नाम की एक प्राचीन जाति के बसने से इस स्थान का यह नामकरण हुआ था। यहाँ एक जाली शुजाअ पैदा हुआ था, यह राज्य सन् १६६४ ई० में तथा सन् १६७६ ई० में दो बार विजय किया गया था।

रतनाकर—भूषण के पिता का नाम।

रनदूलह खाँ—देखो रुस्तमजमाँ।

राजगढ़—सन् १६४६ ई० में शिवाजी ने तोरण दुर्ग से छ मील हट कर मोरबद पहाड़ी पर एक दुर्ग बनवाया। इसको बनाने वाले का नाम मोरो पिंगले था। इसी दुर्ग का नाम राजगढ़ हुआ। यह नीरा नदी के तट पर है और रायगढ़ के पास ही है।

रामगिरि—निज़ाम हैदराबाद के राज्य के यलगंदल प्रांत में गोदावरी नदी के पास है। यह १८·३५ उ० ७६·३५ पू० अक्षांश पर है। मराठों ने सन् १६७२ ई० में इसे लूटा था।

रामनगर—यह सूरत से केवल साठ मील दक्षिण है। यह भी कोली राज्य था। इस राज्य की नई राजधानी अब धर्मपुर है, जो रामनगर से १३ कोस दक्षिण-पश्चिम है। सन् १६७२ ई० के जुलाई में इस पर मराठों का अधिकार हो गया।

रामसिंह—मिर्ज़ा राजा जयसिंह के पुत्र थे। मिर्ज़ा राजा के दक्षिण में नियुक्त होने पर यह इनके प्रतिनिधि स्वरूप दरबार में रहे। सन् १६६७ ई० में पिता की मृत्यु पर राजा हुए। उसी वर्ष यह आसाम में नियुक्त हुए, जहाँ से नौ वर्ष के अनन्तर लौटने पर इनकी सन् १६७६ ई० में मृत्यु हुई।

रायगढ़—पश्चिमी घाट के एक शृंग पर बना हुआ दुर्ग, जिसे पहले रैरी कहते थे। शाह जी की सम्मति से सन् १६६२ ई० में शिवाजी की आज्ञा से अंबा जी सोनदेव ने यह दुर्ग बनाया। इसके बाद यह राजधानी हुई। यह महाबालेश्वर से दक्षिण कुछ हट कर है।

रुद्रसाह—देखो भूमिका।

रुस्तमज़माँ—इसकी पहिले रणदुल्लह ख़ाँ उपाधि थी। यह बीजापुर की ओर से उस राज्य के दक्षिण-पश्चिम भाग का सूबेदार था। मीराज में रहता था। सं० १७१७ में इसने अफ़ज़ल ख़ाँ के लड़के फ़ज़्ल के साथ शिवाजी से युद्ध किया था। इसने शिवाजी से मित्रता कर ली थी। इसीकी सहायता से सं० १७२० में नेता जी पालकर बच कर निकल गए थे। इस मित्रता के कारण उसी वर्ष इसकी सूबेदारी छिन गई, पर दूसरे वर्ष फिर उसी पद पर बहाल हो गया। सं० १७२३ ई० में पन्हाला के पास समय पर डंका बजा कर इसने शिवाजी को शत्रु-सेना के आने की सूचना दी थी। इसके अनन्तर इसने अपने स्वामी को प्रसन्न करने के लिए पोंडा के सामने पड़ी हुई मराठी सेना को धोखा देकर नष्ट करा डाला, जिससे यह मित्रता टूट गई। इसके अनन्तर इसने अपने सुलतान के विरुद्ध बलवा किया, जिसमें इसकी सब जागीर छिन गई। इसीके आस पास इसकी मृत्यु हुई और

इसका पुत्र रुस्तमज़माँ द्वितीय के नाम से प्रसिद्ध हुआ। इसने शिवाजी से मैत्री नहीं रखी।

रुहिलान—अफ़ग़ानिस्तान के रुह प्रांत से आए हुए पठान गण, जिनके बसने से रुहेल खंड कमिश्नरी का नामकरण हुआ है।

रूम—एशियाई तुर्की को रूम कहते हैं। इटली की राजधानी का नाम भी रोम है।

रूसियान—यूरोप के उत्तर पश्चिम के बड़े राज्य रूस के निवासी-गण। इसी राज्य का एशिया के उत्तर के विशाल प्रांत साईबीरिया पर अधिकार है।

रेवा—नर्मदा नदी ही को रेवा कहते हैं।

लोहगढ़—जुनेर के दक्षिण में इन्द्रायणी की घाटी के पश्चिम ओर पहाड़ पर यह दुर्ग है। इसी के पास तिकोना दुर्ग भी है।

शाइस्ता ख़ाँ—इसका असली नाम अबूतालिब मिर्ज़ा मुराद था। यह शाहजहाँ के प्रधान मंत्री आसफ ख़ाँ का पुत्र तथा मुमताज महल बेगम का भाई था। यह दारा आदि भाइयों का मामा था। सन् १६४१ ई० में वजीर नियत हुआ। सन् १६५९ ई० में यह दक्षिण का सूबेदार नियुक्त हुआ। सन् १६६० ई० में पूना तथा चाकन दुर्ग विजय हुआ। सन् १६६३ ई० में शिवाजी रात्रि में थोड़े आदमी लेकर पूना गए और जहाँ शायस्ता ख़ाँ सोया हुआ था वहाँ पहुँच कर उसके पुत्र तथा कई साथियों को मारते हुए निकल गए। शायस्ता ख़ाँ ऐसा डर गया कि वह तुरंत औरंगाबाद चला गया और वहाँ से बंगाल की सूबेदारी पर भेज दिया गया। सन् १६९४ ई० की ३१ मई को ९३ वर्ष की अवस्था में इसकी मृत्यु हुई।

शाहजहाँ—अकबर का पौत्र तथा जहाँगीर का पुत्र था। सन् १६२७ ई० में गद्दी पर बैठा। अपनी शाहज़ादगी में इसने कई बार दक्षिण के सुलतानों को परास्त किया था। पिता के

विरुद्ध विद्रोह किया। सन् १६५८ ई० में इसके पुत्रों ने इसके अधिक रोगग्रस्त होने पर राज्य के लिए युद्ध किया, जिसमें औरंगज़ेब विजयी होकर बादशाह हुआ। सन् १६६६ ई० में यह मरा।

शाह जी—यह शिवाजी के पिता और अहमदनगर के जागीरदार थे, जिस राज्य का अंत होने पर यह बीजापुर राज्य के एक सर्दार बन गए। विशेष भूमिका देखिए।

शिवाजी—देखिए भूमिका।

शुजाअ—शाहजहाँ का द्वितीय पुत्र था। यह बंगाल का प्रांताध्यक्ष था, यह शाहजहाँ की बीमारी का वृतांत सुन कर ससैन्य राज्य के लिए युद्ध करने आया। औरंगज़ेब से परास्त होने पर यह अराकान भाग गया, जिसके बाद का उसका कुछ सत्य वृत्तांत नहीं मिला।

शंभा जी—देखो भूमिका।

सक्खर—सिंध प्रांत में सिंध नदी के किनारे एक नगर है जो शिकारपुर के पास पूर्व की ओर है। इसी के दूसरी ओर भक्कर है।

सफजंग—(फा० सैफ जंग = युद्ध की तलवार) यह उपाधि हो सकती है जैसे सैफ खाँ, सैफुद्दौला आदि हैं। इस उपाधि के कई मंसबदार दक्षिण के युद्ध में औरंगज़ेब द्वारा भेजे गए थे।

समद खाँ—पूरा नाम सैफुद्दौला नवाब अब्दुस्समद खाँ दिलेर जंग था। इसने सिक्खों के युद्ध में बड़ी योग्यता दिखलाई थी। कसूर के एक विद्रोही अफगान हुसेन खाँ को परास्त कर मार डाला था। इसने बुंदेलखंड पर भी चढ़ाई की थी, पर वहाँ सफल-प्रयत्न नहीं हो सका। छत्रप्रकाश में इस चढ़ाई का वर्णन है।

सलहेरि—बगलाना प्रांत में एक दुर्ग तथा कसूबा है। यह पश्चिमी घाट पहाड़ के नीचे है। समुद्र तट तथा धूलिया नामक प्रसिद्ध नगर के बीच में है।

साम—अंग्रेजी में इसे सीरिया प्रांत कहते हैं। मध्यसागर के पूर्वीय तट तथा अरब के बीच में है।

साहि—देखो शाह जी।

साहू—देखो भूमिका।

सितारा—कृष्णा नदी के तट पर पश्चिमी घाट के नीचे बसा है। सन् १८४६ ई० में यह राज्य वृटिश भारत में मिला लिया गया। यह शिवाजी के वंशधरों का राज्य था।

सिरीनगर—काश्मीर की राजधानी। मध्य प्रदेश में भी एक नगर इस नाम का है। भूषण का इसी दूसरे ही से तात्पर्य ज्ञात होता है क्योंकि उनके समय में काश्मीर साम्राज्य का एक प्रांत मात्र था।

सिलहट—आसाम प्रांत की सरमा घाटी में एक नगर है। इस प्रांत का यह सब से बड़ा शहर है।

सिंगारपुर—यह नीरा नदी के दक्षिण सितारा से लगभग पच्चीस कोस पूर्व है। सितारा तथा शोलापुर के बीच में पड़ता है।

सिंहगढ़—इसका प्राचीन नाम कोंदाना था। यह पूना के पास उसके दक्षिण में है। शिवाजी ने इस दुर्ग को ठीक कर सिंहगढ़ नाम रखा था।

सिंहल—हिंदुस्तान के दक्षिण का सिंहल टापू जिसे सीलोन भी कहते हैं।

सुजानसिंह बुन्देला—राजा, सन् १६५४ ई० में पिता पहाड़सिंह की मृत्यु पर ओड़छा का राजा हुआ। सन् १६६४ ई० में जयसिंह के साथ नियत हुआ। पुरंधर दुर्ग के घेरे में अच्छी वीरता दिखलाई। अंतर में मराठी सेना को हराया। सन् १६६३

ई० में चाँदा पर दिलेर खाँ के साथ नियत हुआ। सन् १६७१ ई० इसकी मृत्यु हुई।

सूरत—ताप्ती नदी के बाएँ तट पर बसा हुआ व्यापारी नगर जो समुद्र के पास ही है। मुग़लों के समय विशेषतः यहीं से अरब आदि स्थानों को यात्रीगण जाते थे।

सैद अफगन—एक मुग़ल सर्दार, जो बुन्देलखंड में ससैन्य महाराज छत्रसाल को दमन करने भेजा गया था। छत्रप्रकाश में इसका उल्लेख है।

हबसान—हबशियों का निवास-स्थान, हबश देश जो अफ्रीका महाद्वीप में है। आज कल के नक्शों में वह ऐबिसीनिया नाम से लिखा जाता है।

हुमायूँ—मुग़ल सम्राट् अकबर के पिता थे। बाबर की मृत्यु पर उसके संस्थापित राज्य के यही अधिकारी हुए, पर कुछ ही दिनों में उसे खोकर फारस भागे। वहाँ से लौट कर यह फिर भारत आए और दिल्ली पर अधिकार कर लिया। यह सन् १५५६ ई० में मर गए।

हृदयराम—भूषण के आश्रयदाता रुद्रराम के पिता का नाम था। देखिए रुद्रराम।

Printed by Ramzan Ali Shah at the National Press, Allahabad.